बी.ए. प्रथम वर्ष

संस्कृत, प्रथम प्रश्नपत्र

वेद व्याकरण एवं भाषा नैपुण्य

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr Hariram Raidas
   Professor
   Govt Hamidia College, Bhopal

2. Dr H.P.Dikxit
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College, Lalghati, Bhopal

3. Dr .S.Jamra
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College, Lalghati, Bhopal

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

3. Dr Anjali Singh
   Director
   Department of Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

4. Dr Hariram Raidas
   Professor
   Govt Hamidia College, Bhopal

5. Dr H.P. Dikxit
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College, Lalghati, Bhopal

4. Dr .S.Jamra
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College, Lalghati, Bhopal

COURSE WRITERS

Dr Shruti Kant Pandey, Assistant Professor (Grade-III), Amity Institute for Sanskrit Studies and Research Noida
(**Units:** 4.0-4.1, 4.2-4.4, 4.5-4.9)

Dr. Leena Chauhan, Lecturer, Shri Varshney College, Aligarh
(**Units:** 1.0-1.1, 1.2-1.7, 1.8-1.12, 2.3.2)

Dr Kamini Taneja, Assistant Professor (Adhoc), Vivekananda College, University of Delhi
(**Units:** 2.0-2.1, 2.2-2.3.1, 2.4-2.9, 3.0-3.1, 3.2-3.3, 3.4-3.8, 5

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

वेद व्याकरण एवं भाषा नैपुण्य

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 : वैदिक संहिताओं का परिचय	**इकाई 1** : वैदिक संहिताओं का परिचय **(पृष्ठ 3–39)**
इकाई–2 : वेद (क) ऋग्वेद – अग्निसूक्त (ख) यजुर्वेद – शिवसंकल्पसूक्त (ग) अथर्ववेद – विजयसूक्त	**इकाई 2** : ऋग्वेदीय अग्निसूक्त, यजुर्वेदीय शिवसंकल्पसूक्त व अथर्ववेदीय विजयसूक्त **(पृष्ठ 41–56)**
इकाई–3 : शब्द रूप एवं धातु रूप शब्द रूप – राम, कवि, भानु, पितृ, लता, नदी, वधू, मातृ, फल, वारि, आत्मन्, वाक्, सर्व, तत्, एतत्, यत्, इदम्, अस्मत् तथा युष्मत्। धातु रूप – पठ्, भू, कृ, अस्, रुध, क्री, चुर्, तथा सेव्। केवल पांच लकार – लट्, लोट्, विधिलिङ्, लङ् एवं लृट्।	**इकाई 3** : शब्द रूप एवं धातु रूप **(पृष्ठ 57–76)**
इकाई–4 : लघुसिद्धान्तकौमुदी – प्रत्याहार, संज्ञा व सन्धि	**इकाई 4** : लघुसिद्धान्तकौमुदी (प्रत्याहार, संज्ञा एवं सन्धि) **(पृष्ठ 77–102)**
इकाई–5 : विभक्त्यर्थ एवं अनुवाद संस्कृत से हिन्दी एवं हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद	**इकाई 5** : विभक्त्यर्थ एवं अनुवाद **(पृष्ठ 103–196)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 वैदिक संहिताओं का परिचय **3–39**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 वेद शब्द की व्युत्पत्ति
  1.2.1 वेद के विभाग
  1.2.2 वेदों का द्रष्टा ऋषि
1.3 ऋग्वेद संहिता
  1.3.1 ऋग्वेद का स्वरूप
  1.3.2 ऋग्वेद के सूक्तों का परिमाण
  1.3.3 ऋग्वेद के वर्ण्य विषय
1.4 यजुर्वेद संहिता
  1.4.1 यजुर्वेद का स्वरूप व भेद
  1.4.2 यजुर्वेद की शाखाएं
  1.4.3 यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता
  1.4.4 यजुर्वेद का वर्ण्य विषय
1.5 सामवेद संहिता
  1.5.1 सामवेद का स्वरूप एवं महत्त्व
  1.5.2 सामवेद की उपलब्ध संहिताएं
  1.5.3 सामवेद : पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक भेद
1.6 अथर्ववेद
  1.6.1 अथर्ववेद का नामकरण व अर्थ
  1.6.2 अथर्ववेद के मंत्रों का द्विविध विभाजन व विभागों का आकार
  1.6.3 अथर्ववेद के प्रसंग
  1.6.4 अथर्ववेद के विभिन्न सूक्त
  1.6.5 इतर सूक्त
  1.6.6 अथर्ववेद में अभिचार प्रयोग
  1.6.7 अथर्ववेद में यज्ञ का महत्व
1.7 वेद का काल निर्णय
1.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.9 सारांश
1.10 मुख्य शब्दावली
1.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.12 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 ऋग्वेदीय अग्निसूक्त, यजुर्वेदीय शिवसंकल्पसूक्त व अथर्ववेदीय विजयसूक्त **41–56**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 ऋग्वेदीय अग्निसूक्तम्
  2.2.1 अग्निसूक्तम् का परिचय
  2.2.2 मन्त्र भाग (अर्थ सहित)
2.3 यजुर्वेदीय शिवसंकल्पसूक्तम् मन्त्र व अर्थ
  2.3.1 शिवसंकल्पसूक्तम् का परिचय
  2.3.2 मन्त्र एवं अर्थ

2.4 विजयसूक्तम् मन्त्र व अर्थ
2.4.1 विजयसूक्तम् का परिचय
2.4.2 मन्त्र एवं अर्थ
2.5 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 शब्द रूप एवं धातु रूप **57–76**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 संस्कृत शब्द रूपावली
3.3 धातु रूप
3.4 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 लघुसिद्धान्तकौमुदी (प्रत्याहार, संज्ञा एवं सन्धि) **77–102**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 प्रत्याहार–प्रकरणम्
4.3 संज्ञा–प्रकरणम्
4.4 सन्धि–प्रकरणम्
4.4.1 अच्सन्धि / स्वरसन्धि
4.4.2 हल्सन्धि / व्यंजन सन्धि
4.4.3 विसर्ग सन्धि
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 विभक्त्यर्थ एवं अनुवाद **103–196**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 विभक्त्यर्थ
5.3 हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद
5.4 संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद कौशल
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक बी.ए. प्रथम वर्ष के संस्कृत छात्रगण के 'वेद व्याकरण एवं भाषा नैपुण्य' पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है। संस्कृत वाङ्मय का प्रारंभ वैदिक साहित्य से ही होता है। अतः वाङ्मय की अजस्रधारा में प्रवेशार्थ वैदिक संहिता भाग का अनुशीलन परमावश्यक है। तथापि संस्कृत में भाषा नैपुण्य भी नितान्त आवश्यक है। इस दृष्टिकोण से वैदिक संहिता के परिचय एवं कतिपय महत्वपूर्ण सूक्तों में प्रवेश के पश्चात् लघुसिद्धांतकौमुदी के संज्ञा, प्रत्याहार आदि का अवबोध विशेष उपयोगी है। तदनुरूप शब्दरूपों व धातुरूपों के अभ्यास सहित विभक्त्यर्थों को जानते हुए जब छात्रगण अनुवाद के अभ्यास से निपुणता के पथ पर अग्रसर होंगे तब निश्चित ही संस्कृत में न केवल उनकी रुचि में वृद्धि होगी, अपितु संस्कृत में उनकी निपुणता भी उत्कर्ष को प्राप्त होगी।

संस्कृत वाङ्मय में रीतिबद्ध शैली में प्रवेश पाने के लिए क्रमशः वैदिक साहित्य से प्रारंभ करते हुए व्याकरण के आधारभूत तथ्यों का भी ज्ञान प्राप्त करते विभक्त्यर्थों का बोध व अनुवाद अभ्यास अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित होगा, इसलिए इस पुस्तक की विभिन्न इकाइयों में क्रम से इन विषयों को सारगर्भित रूप में समाहित किया गया है। प्रत्येक इकाई में पदे–पदे अपनी प्रगति जांचिए के स्तंभों के माध्यम से विद्यार्थी अपने अध्ययन की सार्थकता को भी अनुभूत कर पाएंगे।

पुस्तक की प्रथम इकाई में प्रथम वेद ऋग्वेद से लेकर चारों वेदों का सम्यक् परिचय दिया गया है।

दूसरी इकाई में ऋग्वेदीय अग्निसूक्त, यजुर्वेदीय शिवसंकल्प सूक्त तथा अथर्ववेदीय विजयसूक्त के मंत्र व मंत्रार्थ स्पष्ट किए गए हैं।

तीसरी इकाई में विभिन्न शब्द रूप व धातु रूपों को प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न लिंगों व विभक्तियों के शब्द रूपों का तथा विभिन्न लकारों में धातु रूपों का अभ्यास छात्रों के लिए विशेष लाभप्रद रहेगा।

चतुर्थ इकाई में व्याकरण के सूत्रात्मक भाग में प्रवेशार्थ 'लघुसिद्धान्त कौमुदी' के प्रत्याहार व संज्ञा प्रकरण का परिचय देते हुए तीनों प्रकार की सन्धियों के सूत्र सोदाहरण उपस्थापित हैं।

अंतिम व पंचम इकाई 'विभक्त्यर्थ व अनुवाद' विषय पर आधारित है। इससे विभिन्न कारक व उपपद विभक्तियों का ज्ञान प्राप्त करके छात्र अनुवाद अभ्यास से लाभान्वित होंगे।

सम्पूर्ण पुस्तक को सरल व बोधगम्य भाषा शैली में निबद्ध किया गया है। अतः सविश्वास आशा है कि यह छात्रों के हितार्थ विशेष उपयोगिनी प्रमाणित होगी।

इकाई 1 वैदिक संहिताओं का परिचय

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 वेद शब्द की व्युत्पत्ति
  1.2.1 वेद के विभाग
  1.2.2 वेदों का द्रष्टा ऋषि
1.3 ऋग्वेद संहिता
  1.3.1 ऋग्वेद का स्वरूप
  1.3.2 ऋग्वेद के सूक्तों का परिमाण
  1.3.3 ऋग्वेद के वर्ण्य विषय
1.4 यजुर्वेद संहिता
  1.4.1 यजुर्वेद का स्वरूप व भेद
  1.4.2 यजुर्वेद की शाखाएं
  1.4.3 यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता
  1.4.4 यजुर्वेद का वर्ण्य विषय
1.5 सामवेद संहिता
  1.5.1 सामवेद का स्वरूप एवं महत्त्व
  1.5.2 सामवेद की उपलब्ध संहिताएं
  1.5.3 सामवेद : पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक भेद
1.6 अथर्ववेद
  1.6.1 अथर्ववेद का नामकरण व अर्थ
  1.6.2 अथर्ववेद के मंत्रों का द्विविध विभाजन व विभागों का आकार
  1.6.3 अथर्ववेद के प्रसंग
  1.6.4 अथर्ववेद के विभिन्न सूक्त
  1.6.5 इतर सूक्त
  1.6.6 अथर्ववेद में अभिचार प्रयोग
  1.6.7 अथर्ववेद में यज्ञ का महत्व
1.7 वेद का काल निर्णय
1.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.9 सारांश
1.10 मुख्य शब्दावली
1.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

वैदिक वाङ्मय के ज्ञान भण्डार ने विश्व को प्रभावित कर रखा है। 'वेद' शब्द वैदिक युग में वाङ्मय के पर्यायवाची शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'वेद' शब्द का प्रयोग प्राचीन समय में सामान्य रूप से सभी विषयों के लिए किया जाता था। जैसे ब्राह्मणयुगीन सम्पूर्ण साहित्य, ब्राह्मण ग्रंथों के नाम से अभिहित हुआ। जिस प्रकार सूत्र युग में श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, व्याकरण और यहां तक कि दर्शन की प्रतिपादन

टिप्पणी

शैली का नाम भी सूत्र ही कहा गया उसी प्रकार वैदिक युग में वेद शब्द के अन्तर्गत ब्राह्मण–ग्रंथों का समावेश किया गया। 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' अर्थात् मंत्र और ब्राह्मण दोनों का नाम वेद है। वैदिक युग में '**ताभ्यः पंचवेदान्निरमीयत सर्ववेदपिशाच–वेदमसुरवेदमिति पुराणवेदमिति**' अर्थात् उन वेदों से पंचम वेद नाट्यशास्त्र, सर्ववेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद और पुराणवेद निर्मित हुए।

कालक्रम के अनुसार वेद शब्द केवल ऋक्, यजु, साम और अथर्व इन चार वेदों का ही सूचक रह गया है। वेद के परिप्रेक्ष्य में मनीषियों ने '**विश्वतोमुखत्वम्**' तथा '**सर्ववेदात् प्रसिध्यति**' जैसी उक्तियां कही हैं। मनु ने वेदों को सर्वज्ञानमय कहा है। यही कारण है कि मैक्समूलर तथा आधुनिक युग के वेदज्ञ विद्वान् दयानन्द सरस्वती ने वेद को सम्पूर्ण विद्याओं का कल्याण करने वाला तथा वास्तविकता पर आधारित विद्याओं का ग्रंथ स्वीकार किया है। इसी वेद शब्द से अनेक दर्शन, विभिन्न मत एवं राजनीतिक विचारधाराएं तथा साहित्य निष्पन्न हुए हैं। अतः यह कहना सर्वथा सत्य है कि वेद दिव्य–ज्ञान का भंडार है। परवर्ती भाष्यकारों, व्याख्याकारों और अध्येताओं ने वेद शब्द से केवल चार मंत्र संहिताओं का संकेत किया है– ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता और अथर्ववेद संहिता। ब्राह्मणग्रंथों, आरण्यकों और उपनिषदों को वेदों के व्याख्यान रूप में स्वीकार किया गया है।

अतः इस इकाई में वैदिक संहिताओं का सारभूत परिचय उपस्थापित किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- प्रथम वेद 'ऋग्वेद' तथा इतर वेदों के स्वरूप, परिमाण व वर्ण्य विषय का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे;
- अथर्ववेद में ऋग्वेद का पूरकत्व किस प्रकार विद्यमान है, इससे अवगत हो पाएंगे;
- वेद के काल निर्णय तक पहुंचने की प्रक्रिया के इतिहास को समझ पाएंगे;
- वेदों का अपौरुषेयत्व किस प्रकार प्रमाणित किया जा सकता है, इसे जान पाएंगे और
- वेद के महत्व के स्वरूप की विवेचना कर पाएंगे।

1.2 वेद शब्द की व्युत्पत्ति

'वेद' शब्द की व्युत्पत्ति संहिताओं, उपनिषद्, आयुर्वेद, नाट्यशास्त्र, कोश, कल्प और मनुस्मृति आदि ग्रंथों में दी गई है। 'वेद' शब्द चार धातुओं से निष्पन्न होता है–विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विदलृ–लाभे और विद् विचारणे। 'वेद' शब्द का सर्वाधिक स्वीकृत शास्त्रीय अर्थ है 'ज्ञान'(विद् ज्ञान)। 'ज्ञान' शब्द व्यापक अर्थ का प्रतिपादक है। तथापि

टिप्पणी

वेद शब्द अनेकार्थक है। असुन् प्रत्ययान्त वेद शब्द का अर्थ 'धन' है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य की वर्गद्वयवृत्ति की प्रस्तावना में आचार्य विष्णुमित्र ने वेद शब्द की व्युत्पत्ति **'विद्यते ज्ञायते लभते एभिर्धर्मादिपुरुषार्थाः इति वेदः'** अर्थात् जिसके द्वारा धर्मादि चारों पुरुषार्थ प्राप्त किए जाते हैं, वह ज्ञान ही वेदशब्दवाच्य है। आचार्य सायण ने तैत्तिरीय भाष्यभूमिका में लिखा है, **'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकम् उपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।'** अर्थात् जो ग्रन्थ इष्ट वस्तु की प्राप्ति तथा अनिष्ट वस्तु के परिहार के कारणभूत अलौकिक उपाय को बताता है वह वेद है। मनुस्मृतिकार वेद की सत्ता को सर्वोपरि स्वीकार करते हैं–

''धर्मजिज्ञासामानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।''

तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है–**''वेदेन वै देवाः असुराणां वित्तं वेद्यमविन्दन्त तद् वेदस्य वेदत्वम्।''** वेद के द्वारा ही देवताओं ने असुरों की सम्पत्ति को प्राप्त कर लिया था, यही वेद का वेदत्व है। अन्तोदात्त वेद शब्द का अर्थ 'दर्भमुष्टि' तथा आद्युदात्त वेद शब्द का अर्थ 'ज्ञान' है। वेद शब्द ज्ञान का पर्याय होते हुए भी आध्यात्मिक या पारलौकिक ज्ञान का साधन माना गया है। सायणाचार्य के अनुसार जो ज्ञान प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणों से नहीं प्राप्त हो सकता वह वेद से सहज ही प्राप्त हो जाता है–

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विन्दन्ति वेदेन तस्मात् वेदस्य वेदता।।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद शब्द का अर्थ ज्ञान, सत्ता, लाभ तथा विचार के अर्थ में स्वीकार किया है। विद्' धातु से करण तथा अधिकरण अर्थ में घञ् प्रत्यय लगने पर 'वेद शब्द ' निष्पन्न होता है। इस प्रकार जिस ज्ञान से सभी मनुष्य सभी सत्य विद्याओं को जानते हैं, जिससे सम्पूर्ण चराचर जगत् स्थित है, जिससे लौकिक तथा पारलौकिक सुख प्राप्त होते हैं और जिससे ग्राह्य एवं त्याज्य का विचार किया जाता है, वह वेद है। यह निर्विवाद सत्य है कि वेद शब्द का अभिधेयार्थ 'ज्ञान' है और सम्पूर्ण विश्व के ज्ञानालोक में वैदिक वाङ्मय सर्वप्रथम है।

वेद शब्द श्रुति, आम्नाय, त्रयी, छन्दस्, स्वाध्याय, आगम और निगम से भी अभिहित है। 'श्रुति' शब्द का अर्थ है श्रवण किया हुआ। यह शब्द 'श्रु' धातु से क्तिन् प्रत्यय से बना है। वेदों को प्राचीन काल में गुरुपरम्परा द्वारा शिष्यगण सुनकर याद करते थे, इसीलिए 'वेद' को 'श्रुति' कहा गया है। 'श्रुति' शब्द का प्रयोग निरुक्त में मिलता है। केवल मन्त्रभाग को ही वेद मानने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार–'वेद को श्रुति इसीलिए कहा जाता है कि लोग इससे सभी प्रकार के ज्ञान–विज्ञान को सुनते हैं।'

वेद को 'आम्नाय' भी कहा गया है। 'आम्नाय' पद आ उपसर्ग पूर्वक 'म्ना' अभ्यासे धातु से निष्पन्न है। इसका अर्थ है – जो ग्रन्थ अभ्यास के द्वारा कथित हो, वह 'आम्नाय' कहलाता है। गुरुमुख द्वारा बार–बार अभ्यास कराए जाने के कारण वेदों को

टिप्पणी

आम्नाय कहा जाता है। यास्क ने मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद के लिए आम्नाय शब्द का प्रयोग किया है। 'त्रयी' शब्द वेद का समानार्थक है। 'ऋक्', 'यजुस्' और 'साम' को त्रयी कहा जाता है। कतिपय विद्वान् चतुर्थ वेद 'अथर्व' को मानते हैं। इस चतुर्थ अथर्ववेद के मंत्र मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण आदि विषयों से सम्बद्ध होने के कारण इसको त्रयी की श्रेणी में समाविष्ट नहीं किया है तथापि त्रयी की अपेक्षा उसकी प्राचीनता और महत्ता किसी भी प्रकार कम नहीं है। इस तथ्य का प्रमाण त्रयी में ही प्राप्त हो जाता है। यजुर्वेद (मं० 10 सू० 90) की एक ऋचा में कहा गया है कि उस परमेश्वर से ऋक्, यजु, साम और अथर्व उत्पन्न हुए (तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तमादजायत)। इसी प्रकार अथर्ववेद के (10/23/4/20) मंत्र में चारों वेदों का निरूपण करते हुए लिखा है– विद्वान् तू उस जगदाधार परमपिता परमेश्वर का वर्णन कर, जिससे ऋषियों ने ऋक् और यजु को प्राप्त किया, जिसके लोमसदृश सर्वव्यापक साम और मुखसदृश ज्ञानोपदेशक अथर्व हैं, वह कौन सा है हमें बता (यस्मादृचो आपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकसन्। सामानि यस्य लोमान्यथवाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः)।

उक्त आधारों को दृष्टि में रखकर वेदों के विभाजन का तथ्य स्पष्ट हो जाता है। जो विद्वान् यह मानते हैं कि 'अथर्ववेद 'शतपथ ब्राह्मण' के बाद की रचना है क्योंकि उसका नामकरण ईरानी–भाषा के 'अथर्वन्' शब्द से हुआ', उनका यह कथन केवल कल्पना मात्र है। इसमें कदापि सत्यता नहीं है। सत्यता वेदों के चतुर्धा वर्गीकरण में ही है। अथर्ववेद में सामान्य लोक जीवन के भौतिक पक्ष से सम्बद्ध तथ्यों का निरूपण किया गया है, इसलिए इसकी ऐतिहासिक प्राचीनता में सन्देह किया जाता है। किन्तु यह तर्कयुक्ति संगत नहीं है क्योंकि अथर्ववेद में ब्रह्मविद्या, दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक, ज्योतिष आदि विषयों के कारण त्रयी के समान इसका प्रत्येक दृष्टि से अस्तित्व एवं महत्त्व है।

वेद के पर्याय के रूप में अनेक ग्रन्थों में 'छन्दस् या छन्द' शब्द का प्रयोग भी प्राप्त होता है। अष्टाध्यायी में 'बहुलं छन्दसि' सूत्र अनेक बार आया है। निरुक्त के रचयिता यास्काचार्य ने 'छन्द् आच्छादने' धातु से इस शब्द को निष्पन्न माना है। शतपथ ब्राह्मण में छन्दस् शब्द का निर्वचन 'छन्द प्रीणने' धातु से किया गया है। छन्द का अर्थ है बन्धन। निश्चित नियम में बंधे हुए शब्द–समूह को छन्द कहते हैं। कुछ विद्वान् पूजा अर्थ में पठित 'छन्द' या 'छद्' धातु से छन्दस् शब्द को निष्पन्न मानते हैं। इनके अनुसार वेद–मन्त्रों को 'छन्दस्' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन्हीं के द्वारा देवताओं की पूजा होती है अथवा हमारे द्वारा पूजनीय होने के कारण भी वेद छन्दस् हैं। वेद के स्वरूप के विषय में जब से ''मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'' की धारणा प्रबल हुई तब से छन्दस् के द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थों को भी ग्रहण किया जाने लगा। पाणिनि ने मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लिए छन्दस् शब्द का प्रयोग किया है। परवर्ती आचार्यों ने कल्पसूत्र आदि ग्रन्थों में भी छन्दत्व स्वीकार किया है।

टिप्पणी

'स्वाध्याय' से तात्पर्य वेद ही है। ''स्वाध्यायोऽध्येतव्यः (तैत्तिरीय आरण्यक 2/15), 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' (तै. उ. 1/11/1)। मनुस्मृति में भी स्पष्टतः कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन द्विजातियों के लिए वेद का स्वाध्याय अपरिहार्य है। आगम शब्द वेद के पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त हुआ है। सांख्य–कारिका में ईश्वरकृष्ण ने ''तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तामगात्'' के द्वारा भी मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद के लिए आगम शब्द का प्रयोग किया है। कालान्तर में एक विशेष प्रकार के धार्मिक सम्प्रदाय के साहित्य के लिए भी 'आगम' शब्द का प्रयोग होने लगा, जैसे शैवागम, वैष्णवागम, जैनागम एवं बौद्धागम आदि। वेद के लिए 'निगम' शब्द का प्रयोग भी प्रायः किया जाता है। यास्क ने निरुक्त में जितने उदाहरण वेदों से दिये हैं, उनमें प्रायः सर्वत्र निगम शब्द का प्रयोग किया है। 'निगम' शब्द उन स्थलों पर वेद का ही वाचक है। आगम एवं निगम दोनों ही पद रचना एवं अर्थ की दृष्टि से लगभग समान ही हैं। अन्तर मात्र 'आ' और 'नि' उपसर्गों का है। 'आ' का अर्थ है 'मर्यादा', 'सीमा' और 'नि' का अर्थ है निश्चित रूप से। इस प्रकार जो ग्रन्थ सब ओर से ऐहिक तथा आमुष्मिक सुख को प्राप्त कराए वह आगम तथा जो ग्रन्थ निश्चित रूप से ऐहिक तथा आमुष्मिक सुख की प्राप्ति के साधनभूत उपायों का ज्ञान कराए उसे निगम कहते हैं।

1.2.1 वेद के विभाग

प्रत्येक वेद के मुख्य चार विभाग हैं – 1. संहिता 2. ब्राह्मण 3. आरण्यक 4. उपनिषद्।

1. **संहिता**–यहां संहिता का अर्थ वह संकलन है, जिसमें वेद स्तुति वर्णित है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद ही संहिता के नाम से कहे जाते हैं। ऋग्वेद–प्रातिशाख्य के अनुसार 'पद है प्रकृति जिसकी वह संहिता है', अथवा 'पदों की प्रकृति संहिता है।' इन दोनों व्याख्याओं के अनुसार इतना तो निश्चित कहा जा सकता है कि पदों की 'संहति' को ही संहिता कहते हैं। वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के अनुसार वर्णों का एक श्वास में उच्चारण ही संहिता कहलाता है। पाणिनि के अनुसार वर्णों की आत्यन्तिक सन्निकटता की संज्ञा संहिता है। ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 एवं अथर्ववेद की 9 शाखाएं थीं। अतः कुल मिलाकर संहिताओं की संख्या भी 1131 हुई, परन्तु आजकल ऋग्वेद की एक शाकल शाखा की संहिता, कृष्णयजुर्वेद की 4–तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक या कठ एवं कपिष्ठल शाखा की संहिताएं, शुक्लयजुर्वेद की 2–माध्यन्दिन एवं काण्व शाखा की संहिताएं सामवेद की केवल 3–कौथुम, राणायणीय एवं जैमिनीय शाखाओं की तथा अथर्ववेद की 2 संहिताएं ही उपलब्ध हैं – शौनक और पिप्पलाद।
2. **ब्राह्मण**–संहितागत मन्त्रों के व्याख्यापरक ग्रन्थ ब्राह्मण कहलाते हैं। इन ग्रन्थों में संहितागत मन्त्रों की व्याख्या के साथ ही उनका विविध याज्ञिक कर्मों में विनियोग भी बताया गया है। 'ब्रह्म' शब्द के अनेक अर्थ हैं, जिनमें 'मंत्र' और

टिप्पणी

'यज्ञ' अर्थ अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। ब्राह्मण–ग्रन्थों में मन्त्रों की व्याख्या के साथ ही साथ यज्ञीय कर्मकाण्ड की व्याख्या तथा उनका सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करना मुख्य उद्देश्य है। इस प्रकार ब्राह्मण–ग्रन्थों में यज्ञों की वैज्ञानिक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत की गई है।

ऋग्वेद के ऐतरेय और कौषीतकि दो ब्राह्मण हैं। शुक्ल यजुर्वेद के ब्राह्मण का नाम शतपथब्राह्मण है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस ब्राह्मण ग्रंथ का बड़ा महत्त्व है। सामवेद के ब्राह्मण ग्रंथों में पंचविंश ही प्रमुख हैं। अथर्ववेद का केवल एक गोपथ ब्राह्मण है।

सभी ब्राह्मण–ग्रन्थ गद्यमय हैं। ब्राह्मण–ग्रन्थों में यज्ञ का विधान कब व कैसे किया जाए? कौन–कौन से साधन आवश्यक हैं? यज्ञों के अधिकारी कौन हैं– इत्यादि विषयों पर विचार किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रधान विवेच्य विषय है– विधि। स्थान–स्थान पर अनेक आख्यान प्रस्तुत करके यजमानों के अन्तः करण में यज्ञ के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना भी ब्राह्मण–ग्रन्थों का एक प्रयोजन है। यत्र–तत्र कतिपय शब्दों का निर्वचन करके ये ब्राह्मण ग्रन्थ अपनी उद्देश्य–सिद्धि में सफल हुए हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में जगत सम्बन्धी विचार भी वर्णित हैं। सभी संहिताओं के अलग–अलग ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

3. **आरण्यक**–जिन ग्रन्थों का प्रणयन विशेष रूप से अरण्य में पढ़ने के लिए किया गया था वे आरण्यक कहलाए। आरण्यक ग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ न होकर उनके अन्तर्गत विद्यमान आध्यात्मिक तथा दार्शनिक तत्त्वों की मीमांसा है। प्राणविद्या की भी महत्ता इन आरण्यक ग्रन्थों में प्रतिपादित की गई है।

4. **उपनिषद्**–उपनिषद् ग्रन्थों का दूसरा नाम वेदान्त है। उपनिषद् ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक ग्रंथ हैं। भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान–धारा को सरल प्रवाहमयी भाषा में प्रस्तुत करने का गौरव उपनिषद् साहित्य को ही प्राप्त हुआ है। उपनिषदों की गणना (ब्रह्मसूत्र व गीता सहित) प्रस्थानत्रयी में की जाती है। उपनिषद् वाङ्मय भारतीय–संस्कृति के आध्यात्मिक चिन्तन का चरम निदर्शन है।

उपनिषद्' शब्द् 'उप' एवं 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'नाश होना', 'जाना' या 'जानना' तथा शिथिल होना अर्थों वाली 'षद्लृ' धातु से निष्पन्न है। इस प्रकार उपनिषद् वह विद्या है जिसके अनुशीलन से मोक्षार्थीजनों के सांसारिक आवागमन की कारण भूत अविद्या का नाश हो जाता है। मुमुक्षुजन ब्रह्म के समीप पहुंच जाते हैं तथा उनके जन्म–मरण के बन्धन सदा–सदा के लिए शिथिल हो जाते हैं। इस शब्द की एक प्रकार की व्युत्पत्ति और की जाती है। उसके अनुसार 'उप' का अर्थ समीप, 'नि' का अर्थ निःशेष भाव एवं 'सद्' धातु का अर्थ बैठना है। इस

टिप्पणी

प्रकार उपनिषद् का अर्थ हुआ–'वह ज्ञान जिसे गुरु के समीप बैठकर निःशेष रूप से अर्थात् साकल्येन प्राप्त किया जाना चाहिए।'

उपनिषदों की भाषा में गद्य तथा पद्य दोनों ही हैं। इनमें ब्राह्मण–ग्रन्थों की भांति स्वरों (Accents) के चिह्न भी दृष्टिगोचर होते हैं।

1.2.2 वेदों का द्रष्टा ऋषि

वेदों की रचना किसने की, इस विषय में अत्यन्त विवाद होता आया है। भारतीय आस्तिक परम्परा वेद को अपौरुषेय अर्थात् ईश्वर–कृत मानती है। इसके अनुसार वेदों की रचना किसी मनुष्य ने नहीं की। वेद ईश्वर द्वारा रचे गए हैं। वेदों के अपौरुषेयत्व को लौकिक दृष्टि से नहीं स्वीकार किया जा सकता क्योंकि प्राकृतिक पदार्थों के अतिरिक्त अन्य जितने भी पदार्थ हैं, वे मानवकृत ही हैं। वेद भी प्राकृतिक पदार्थ नहीं हैं, अतः ये भी मानवकृत कहे जा सकते हैं।

वेदों के अपौरुषेयत्व को लाक्षणिक अर्थ में ग्रहण करने से समस्या का कुछ हद तक समाधान हो जाता है। 'पुरुषसूक्त' की ऋचाओं में 'सर्वहुत्' यज्ञ रूप पुरुष से ऋचाओं, सामों, यजुषों एवं छन्दों के उत्पन्न होने की जो बात कही गई है उस तथ्य से यही प्रतीत होता है कि 'ऋक्', 'साम', 'यजुष्' आदि मन्त्रों की उत्पत्ति परमेश्वर से होती है। मन्त्र तो ध्वनि का ही रूप हैं। ध्वनि आकाश का गुण है। आकाश नित्य है। अतः उसका गुण शब्द भी नित्य ही हुआ। उच्चारण के पूर्व शब्द अव्यक्तावस्था में रहता है। उच्चारण–प्रक्रिया से वह व्यक्त हो जाता है। यदि हम शब्दात्मक ज्ञान को नित्य मानते हैं, तो वेद भी शब्दात्मक होने से नित्य हुआ।

आधुनिक तर्क प्रधान युग में कोई भी तथ्य तार्किक ढंग से प्रमाणित होने पर ही विश्वास–योग्य माना जाता है। इस प्रकार उपर्युक्त तर्क के प्रत्युत्तर में यह भी कहा जा सकता है कि वेदों की भांति अन्य लौकिक काव्य आदि को भी अपौरुषेय अथवा ईश्वरकृत मानना चाहिए। अतः उपर्युक्त तर्क में अतिव्याप्ति दोष है। दूसरी बात यह है कि वेदों में ही इस बात के प्रमाण भी अनेकत्र प्राप्त हो जाते हैं कि वेदों की रचना ऋषियों ने ही की है–हे इन्द्र! जिन प्राचीन एवं अर्वाचीन मेधावी ऋषियों ने मन्त्रों को उत्पन्न किया था (ऋ० 7/22/9)।

इसी प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण संहिता–ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वेदों की रचना किसी एक ऋषि ने नहीं की। एक ऋषि से सम्बन्धित न होने के कारण भी इन्हें अपौरुषेय कहा जाता है। पंच तो परमेश्वर होता है अर्थात् समष्टि को परमेश्वर का रूप माना जाता है। वेदों की रचना व्यक्ति द्वारा न होकर समष्टि द्वारा हुई है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि वेदों के उद्भवकाल से ही मानव सभ्यता का भी उद्भव हुआ है। अतः उस आदिम युग में इतना परिष्कृत विचार अवश्य ही ईश्वर की प्रेरणा से उद्भूत हुआ होगा। इसलिए भी वेद अपौरुषेय कहे जा सकते हैं। लौकिक काव्य तो किसी न किसी पुरुष को आधार बनाकर रचे गए हैं, परन्तु वेद प्राकृतिक शक्तियों को आधार बनाकर रचे गए हैं।

टिप्पणी

प्राकृतिक शक्तियां मानवकृत न होकर शुद्ध ईश्वरकृत हैं, इसलिए भी वेद अपौरुषेय कहे जा सकते हैं।

वस्तुतः तपस्यारत ऋषियों ने प्रकृति के सुरम्य वातावरण में कुछ अलौकिक घटनाओं का अनुभव किया। उन्होंने उन सभी घटनाओं के पीछे किसी न किसी शक्ति का आभास पाकर उन्हीं शक्तियों को विविध नाम देकर उनसे अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए एवं अनिष्ट के निवारण के लिए प्रार्थनाएं कीं। ये प्रार्थनाएं ही मन्त्र हैं। ऋषियों के मन में उन प्रार्थनाओं का स्फुरण किसी–न–किसी दैवी शक्ति के माध्यम से हुआ, अतः वेद ऋषिदृष्ट हुए। उन दैवी शक्तियों की प्रेरणा से ऋषियों के अन्तःकरण में भावोद्गम हुआ, जिसे ऋषिजनों ने शब्दों के माध्यम से प्रकट किया। अतः इसे ''ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः, न तु कर्तारः'' कहा जाता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. वेद किसके परिहार का लौकिक उपाय बताता है?
   (क) इष्ट (ख) अनिष्ट
   (ग) नीति (घ) अनीति
2. वेद शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार विद् धातु में किस प्रत्यय का प्रयोग हुआ है?
   (क) घञ् (ख) क
   (ग) क्त (घ) कत्वा
3. ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वरूप कैसा है?
   (क) पद्यमय (ख) समास प्रधान
   (ग) गद्य–पद्यमय (घ) गद्यमय

1.3 ऋग्वेद संहिता

ऋग्वेद संहिता के विस्तृत कलेवर को समझने के लिए आवश्यक है कि हम इसके स्वरूप पर एक विहंगम दृष्टि डालें।

1.3.1 ऋग्वेद का स्वरूप

वैदिक साहित्य का सर्वप्रथम ग्रंथ ऋग्वेद है। छन्दोबद्ध या पद्यात्मक मन्त्रों को 'ऋक्' या 'ऋचा' कहते हैं–'ऋक्पादबद्धो भवतीह मन्त्रः' ऋचाओं का विशाल संग्रह ही ऋग्वेद संहिता है।

महाभाष्य में पतंजलि ने वेद की इक्कीस शाखाओं का निर्देश किया है–''एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्''। किन्तु परवर्ती ग्रन्थों में केवल 5 शाखाओं का ही उल्लेख प्राप्त होता है। ये शाखाएं हैं–शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकायन। वर्तमान में 'शाकल' शाखा ही उपलब्ध है। इस शाखा की संहिता में कुल मिलाकर 1028 सूक्त हैं। इस ग्रन्थ में लगभग 10600 ऋचाएं हैं। शाकल–संहिता का विभाजन दो प्रकार से किया गया है।

टिप्पणी

1. **मण्डल क्रम**—मण्डल, अनुवाक और सूक्त। इसके अनुसार 10 मण्डल, 85 अनुवाक और 1028 सूक्त हैं।
2. **अष्टक क्रम**—अष्टक, अध्याय तथा वर्ग। इसके अनुसार 8 अष्टक, 64 अध्याय तथा 2006 वर्ग हैं। बाष्कल शाखा भी जीर्ण—शीर्ण रूप में प्राप्त हुई है, परन्तु वह भी शाकल शाखा के समान ही है। शाखा शब्द का अर्थ सम्पूर्ण ग्रन्थ का अंग नहीं, अपितु एक प्रकार का पाठ एवं क्रम है। विभिन्न ब्राह्मणवंशों में संहिता ग्रन्थों का पाठ किंचित् भिन्न रूप में होता था तथा मन्त्रों का क्रम भी कुछ भिन्न होता था। यही विभिन्नता शाखा नाम से अभिहित हुई।

ऋग्वेद की भाषा तथा विषय के गम्भीर विवेचन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि ऋग्वेद के दूसरे मण्डल से सातवें मण्डल तक के सूक्त अपेक्षाकृत प्राचीन हैं। पाश्चात्य विद्वान् इस अंश को 'वंश—मण्डल' के नाम से अभिहित करते हैं। इनमें से प्रत्येक मण्डल का सम्बन्ध एक—एक ऋषि के साथ है। द्वितीय मण्डल के ऋषि गृत्समद्, तृतीय के विश्वामित्र, चतुर्थ के वामदेव, पंचम के अत्रि, षष्ठ के भारद्वाज और सप्तम मण्डल के ऋषि वसिष्ठ हैं। नवम मण्डल के ऋषि इन्हीं ऋषियों में से हैं। प्रथम एवं अष्टम मण्डल समकालीन प्रतीत होते हैं। दशम मण्डल सर्वाधिक अर्वाचीन है क्योंकि इस मण्डल के सूक्तों में स्थान—स्थान पर पूर्ववर्ती मण्डलों के सूक्तों का उल्लेख प्राप्त होता है। भाषा की दृष्टि से भी इस मण्डल को अन्य मण्डलों से अर्वाचीन सिद्ध किया जाता है।

1.3.2 ऋग्वेद के सूक्तों का परिमाण

डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने ऋग्वेद—संहिता के सूक्तों एवं मन्त्रों की मण्डलानुसार संख्या इस प्रकार निर्दिष्ट की है —

मण्डल	सूक्तसंख्या	ऋक्संख्या
प्रथम	191	2006
द्वितीय	43	429
तृतीय	62	617
चतुर्थ	58	589
पंचम	87	727
षष्ठ	75	765
सप्तम	104	841
अष्टम	92	1636
नवम	114	1108
दशम	191	1754
	1017	**10472**

टिप्पणी

1.3.3 ऋग्वेद के वर्ण्य विषय

इनमें से प्रत्येक सूक्त का प्रधान विषय किसी दिव्य शक्ति की स्तुति करना है किन्तु अन्य अर्थों में सृष्टि विषयक गूढ़तम रहस्य भी प्रकट होते हैं।

ऋग्वेद में देवस्तुति के साथ ही साथ ब्रह्मविद्या, धार्मिक विचार, व्यवहार एवं मान्यताओं के उद्घाटन भी प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशाओं पर भी पर्याप्त प्रकाश ऋग्वेद के अध्ययन से पड़ता है। ऋग्वेद में सृष्टि रचना, दार्शनिक विचार, वैवाहिक रीति–रिवाज, पशु–पक्षी तथा वृक्षों आदि से सम्बद्ध कतिपय मन्त्र भी मिलते हैं। ऋग्वेद में कुछ संवाद सूक्त भी उपलब्ध होते हैं। परन्तु सम्पूर्ण ऋग्वेद में मात्र 40 सूक्त इस प्रकार के प्राप्त होते हैं, जिनमें उपरिकथित विषय अनुस्यूत हैं। प्रसिद्ध विद्वान् ओल्डेनबर्ग का कथन है कि यज्ञशाला में मन्त्रों के द्वारा पुरोहित घृत, मांस आदि हव्य ग्रहण करने के लिए और सोमपान करने के लिए आते थे। इसीलिए ओल्डेनबर्ग ने वेद को "Oldest document of Indian Literature and religion" कहा है। विन्टरनित्ज महोदय भी वेदों को क्रमिक संकलन का परिणाम मानते हुए कहते हैं कि कुछ मन्त्रों का निर्माण हुआ है।

भारतीय कला एवं विज्ञान के उदय का संकेत भी यहीं पर प्राप्त होता है। विश्व के मूल में रहकर विश्व को नियंत्रित करने वाली मूल सत्ता के व्यक्त तथा अव्यक्त रूप में विश्वास, मन्त्र, यज्ञ आदि से उसके पूजन और यजन आदि मौलिक धार्मिक तत्त्व ऋग्वेद में पाए जाते हैं। दर्शन की मूल समस्याओं–ब्रह्म, आत्मा, माया, कर्म, पुनर्जन्म आदि के ज्ञान के स्रोत भी ऋग्वेद में प्राप्त हो जाते हैं। देववाद, एकेश्वरवाद, सर्वेश्वरवाद, अद्वैतवाद आदि दार्शनिक वादों का बीज भी ऋग्वेद में ही दिखाई पड़ता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

4. वेद अभ्यास द्वारा कथित होता है। अतः इसे कहा जाता है–
   (क) आम्नाय (ख) आगम
   (ग) निगम (घ) श्रुति
5. 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' ऐसा ..... में कहा गया है।
   (क) मनुस्मृति (ख) तैत्तिरीयोपनिषद्
   (ग) पुरुषसूक्त (घ) इनमें से कोई नहीं
6. चारों वेदों की इस समय कुल कितनी संहिताएं उपलब्ध हैं?
   (क) 10 (ख) 9
   (ग) 11 (घ) 12
7. ऋग्वेद के तृतीय मंडल के ऋषि कौन हैं?
   (क) गृत्समद (ख) विश्वामित्र
   (ग) वामदेव (घ) वसिष्ठ

8. ऋग्वेद में कुल ..... सूक्त हैं।

(क) 10472 (ख) 1017

(ग) 191 (घ) इनमें से कोई नहीं

टिप्पणी

1.4 यजुर्वेद संहिता

यजुर्वेद संहिता में प्रवेशार्थ सर्वप्रथम उसका स्वरूप और उसके भेदों को जानना नितांत आवश्यक है।

1.4.1 यजुर्वेद का स्वरूप व भेद

जिस वेद में यजुषों का संकलन है, उसे यजुर्वेद कहा जाता है। वेदक्रम में यह दूसरा वेद है। 'यजुष्' का अर्थ है पूजा एवं यज्ञ। यह वेद गद्यात्मक मन्त्रों से युक्त है। यद्यपि इस वेद में भी ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों का संकलन है परन्तु वे मन्त्र कहीं–कहीं किंचित् परिवर्तन के साथ भी ग्रहण किए गए हैं। यह ग्रन्थ 'पद्धतिग्रन्थ' है जो पौरोहित्य प्रणाली में यज्ञक्रिया को सम्पन्न करने के लिए संगृहीत हुआ है। जिस प्रकार ऋग्वेद के मंत्रों का विषय देवताओं का आह्वान करना है उसी प्रकार यजुर्वेद के मंत्रों का विषय यज्ञ विधियों को सम्पन्न करना है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड प्रधान है। इसमें देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञों का अनेक प्रकार से विधि–विधान है। यज्ञ से कलाओं की भी उत्पत्ति होती है। किस यज्ञ में किन–किन मंत्रों का विधान किया जाना चाहिए इसकी विधियां यजुर्वेद में वर्णित हैं। ऐसे मंत्रों के संग्रह का नाम ही यजुर्वेद संहिता है। महाभाष्यकार पतंजलि ने 'एकशतमध्वर्युशाखा' कहकर इसकी 101 शाखाओं की ओर संकेत किया है। यजुर्वेद में मानवमात्र को प्रशस्ततम कार्यों में प्रवृत्त कराने वाले मन्त्र संकलित हैं।

1.4.2 यजुर्वेद की शाखाएं

यजुर्वेद के शुक्ल यजुर्वेद एवं कृष्ण यजुर्वेद नामक दो भेद हैं। कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित इन 4 शाखाओं के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है–कठ, कपिष्ठल, मैत्रायणी एवं तैत्तिरीय। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन और काण्व दो शाखाएं उपलब्ध हैं। माध्यन्दिन शाखा को वाजसनेयी भी कहा जाता है। यजुर्वेद का ऋत्विक् अध्वर्यु कहलाता है।

काण्व, माध्यन्दिन, जाबाल, बुधेय, भाकेय, तापनीय, काणीस, पौंड्रवहा, आवर्त्तिक, परमावर्त्तिक, पाराशरीय, वैनेय, बौधेय, यौधेय और गालव– इन 15 शाखाओं को वाजसनेय नाम से अभिहित किया जाता है। 'चरणव्यूह' के उल्लेखानुसार इसमें 1900 मंत्र हैं– 'द्वे सहस्र' शतं न्यूनं मंत्रा वाजसनेयके।' याज्ञवल्क्य के 15 शिष्यों द्वारा इन शाखाओं का आविर्भाव हुआ। वाजसेनी–पुत्र याज्ञवल्क्य द्वारा दृष्ट होने के कारण शुक्ल–यजुषों की इस संहिता का नाम 'वाजसनेयी संहिता' पड़ा।

टिप्पणी

वाजी (घोड़े) का रूप धारण कर जो उपदेश वर रूप में याज्ञवल्क्य को उपलब्ध हुआ, उसी का नाम 'वाजसनेयी संहिता' पड़ा, एक ऐसी भी श्रुति है। संहिता के रूप में प्राप्त ज्ञान का उपदेश याज्ञवल्क्य ने जाबाल आदि पंद्रह शिष्यों को दिया। इन शिष्यों में माध्यन्दिन प्रमुख थे। 'वाजसनेयी संहिता' की माध्यन्दिन शाखा ही संप्रति प्रचलित है। इस प्रकार यजुर्वेद की तैत्तिरीय और वाजसनेय, इन दोनों शाखाओं का निर्माण हुआ। वाजसनेयी संहिता में राष्ट्र की उन्नति और उसकी सुख–शांति के लिए बड़ी सुन्दर भावनाएं अभिव्यक्त हैं।

1.4.3 यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता

कृष्ण यजुर्वेद की 'तैत्तिरीय संहिता' से संबंधित 'विष्णुपुराण' में एक कथा है कि वैशम्पायन ने एक बार क्रुद्ध होकर अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से कहा, "मैंने तुम्हें जो वेद पढ़ाया है उसे वापस करो।" शिष्य ने उस अधीत वेद–विद्या का वमन कर दिया। गुरु की आज्ञा से दूसरे शिष्यों ने तित्तिर(तीतर) बनकर उस वमन की हुई विद्या को चुग लिया। इसीलिए इसका नाम 'तैत्तिरीय संहिता' पड़ा। कृष्ण यजुर्वेद की संहिताएं गद्य और पद्य दोनों में है। शुक्ल यजुर्वेद की संहिता का उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक सर्वाधिक प्रचार है। 'तैत्तिरीय संहिता' पर सायणाचार्य का प्रामाणिक भाष्य है। बालकृष्ण दीक्षित और भास्कर मिश्र ने भी उस पर लघु भाष्य लिखे हैं।

कृष्ण यजुर्वेद की 86 शाखाओं का उल्लेख हुआ है, किन्तु बाह्याभ्यन्तर प्रमाणों के आधार पर उनकी संख्या केवल 41 तक ही उपलब्ध हुई है। कृष्ण यजुर्वेद की मंत्र संख्या 18000 है। कृष्ण यजुर्वेद में सात काण्ड हैं और प्रत्येक काण्ड कई प्रपाठकों में विभक्त है। कृष्ण यजुर्वेद की शाखाओं में अकेले चरक संप्रदाय की बारह उपशाखाएं थीं, जिनके नाम थे : चरक, आह्वरक, कठ, प्राच्य–कठ, कपिष्ठ–कठ, आष्ठल–कठ, चारायणीय, वारायणीय, वार्तान्तरेय, श्वेताश्वतर, औपमन्यु और मैत्राणयी। इनमें भी मैत्राणयी की सात शाखाएं हुईं– मानव, दुन्दुभ, आत्रेय, वाराह, हारिद्रवेय, श्याम और शामानयीय।

महीधर–भाष्य में यजुर्वेद की शाखाओं के नामकरण के बारे में कहा गया है कि बुद्धि की मलिनता से यजुषों का रंग काला पड़ जाने के कारण यजुर्वेद की एक शाखा का नाम कृष्ण पड़ा। उधर सूर्य की तपस्या के वरदानस्वरूप योगिराज याज्ञवल्क्य ने शुक्ल–यजुषों को प्राप्त किया, जिससे यजुर्वेद की दूसरी शाखा का नामकरण शुक्ल हुआ।

1.4.4 यजुर्वेद का वर्ण्य विषय

वेद का वह भाग जिसका सम्बन्ध यज्ञ, पूजा आदि से है 'यजुष्' कहलाता है। यज्ञ में इस वेद के मन्त्रों का पाठ 'अध्वर्यु' संज्ञक पुरोहित–वर्ग करता है। इसकी वाजसनेयी–संहिता में चालीस अध्याय हैं। प्रारम्भिक 25 अध्याय विषयवस्तु की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम एवं द्वितीय अध्याय में 'दर्श' एवं 'पौर्णमास' यज्ञ के मन्त्र संकलित हैं। तृतीय अध्याय में दैनिक 'अग्निहोत्र' तथा 'चातुर्मास्य' यज्ञ के

टिप्पणी

मन्त्रों का संग्रह है। चतुर्थ से अष्टम् अध्याय पर्यन्त 'अग्निष्टोमादि' सोमयज्ञों एवं पशुबलि से सम्बन्धित मन्त्र प्राप्त होते हैं। एक दिन में समाप्त होने वाले कतिपय यज्ञ भी सोमयज्ञों की परम्परा में प्राप्त हैं। इनमें 'वाजपेय' सर्वप्रधान है। इस यज्ञ का सम्पादन राजा अथवा योद्धा लोग करते थे। सोमयज्ञों की ही परम्परा में राजाओं द्वारा सम्पाद्य 'राजसूय यज्ञ' भी है। उपर्युक्त दो प्रकार के यज्ञों की प्रार्थनाएं वाजसनेयि–संहिता के नवम तथा दशम अध्याय में वर्णित हैं। एकादश से अष्टादश अध्याय तक अग्निचयन के लिए की जाने वाली प्रार्थनाओं तथा विविध याज्ञिक नियमों का संग्रह है। 'अग्निचयन' के निमित्त निर्मित होने वाली 'अग्निवेदिका' का भी वर्णन इसमें प्राप्त होता है। उन्नीसवें तथा बीसवें अध्याय में 'सौत्रामणि उत्सव' के प्रयोग से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन है। इक्कीसवें से पच्चीसवें अध्याय तक 'अश्वमेध' यज्ञ की प्रार्थनाओं का संग्रह किया गया है। इसमें छब्बीस से पैंतीस अध्याय तक 'खिल–सूक्त' है। 'खिल' का अर्थ 'परिशिष्ट' है। 30वें अध्याय में पुरुषमेध यज्ञ का वर्णन है। 31वां अध्याय भी इसी प्रकार का है। इसी में ऋग्वेद का प्रसिद्ध पुरुषसूक्त संकलित है। 32वें अध्याय से 34वें अध्याय में अन्त्येष्टि क्रिया से सम्बद्ध ऋचाएं हैं। 36वें से 39वें अध्याय तक 'प्रवर्ग्य यज्ञोत्सव' की प्रार्थनाएं संकलित हैं। 40वां अध्याय प्रसिद्ध उपनिषद् 'ईशावास्योपनिषद्/ ईशोपनिषद्' के नाम से विख्यात है।

'कृष्ण यजुर्वेद' की विषयवस्तु शुक्ल यजुर्वेद से मिलती–जुलती है। मन्त्रब्राह्मणात्मक कृष्ण यजुर्वेद में कुल 18000 मन्त्र मिलते हैं। तैत्तिरीय संहिता ही इसकी प्रधान संहिता है जिसमें 7 अष्टक हैं। प्रत्येक अष्टक में 7, 8 अध्याय हैं। अध्याय का दूसरा नाम 'प्रश्न' तथा अष्टक का दूसरा नाम 'प्रपाठक' भी है। प्रत्येक अध्याय में अनेक अनुवाक हैं तथा अनुवाकों की संख्या लगभग 700 है। कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण को 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' तथा आरण्यक को 'तैत्तिरीय आरण्यक' कहते हैं। इसके उपनिषद् हैं–तैत्तिरीय उपनिषद्, कठोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्, नारायणोपनिषद् आदि। शुक्ल यजुर्वेद के ब्राह्मण–ग्रन्थों में 'शतपथब्राह्मण' का अद्वितीय महत्त्व है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. वेदक्रम में यजुर्वेद कौन–से क्रम पर आता है?
   (क) पहले (ख) दूसरे
   (ग) तीसरे (घ) चौथे
10. शुक्ल यजुर्वेद से संबंधित कितनी शाखाओं का नामोल्लेख प्राप्त है?
   (क) एक (ख) दो
   (ग) तीन (घ) चार
11. कृष्ण यजुर्वेद के मंत्रों की संख्या कितनी है?
   (क) 15 हजार (ख) 17 हजार
   (ग) 18 हजार (घ) 20 हजार

टिप्पणी

1.5 सामवेद संहिता

सामवेद की महिमा सर्वाधिक कही जाती है। ऐसा क्यों है, यह जानने के लिए इसके स्वरूप एवं महत्त्व को जानना होगा।

1.5.1 सामवेद का स्वरूप एवं महत्त्व

यद्यपि ऋग्वेद, यजुर्वेद संहिता के बाद सामवेद संहिता का क्रम है तथापि सभी वेदों में सामवेद का महत्त्व सर्वोपरि स्वीकार किया गया है। भगवद्गीता के दशम अध्याय में श्रीकृष्ण ने 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' कह कर इसी महत्त्व को रेखांकित किया है। साम का अर्थ है सुन्दर सुखकारी वचन। संगीत विद्या को सर्वाधिक सुखकर एवं आनंदायक विद्या माना गया है। साम का अर्थ गान भी है। सामवेद का आचार्य उद्गाता होता है। वह उद्गाता सामवेदी मंत्रों से संगीतमय वाणी द्वारा देवताओं को प्रसन्न करता है। वेदों में ऋचाएं, यजुष् और सामगीति ये तीन प्रकार के मंत्र हैं। ऋचाएं गेय और अगेय दो प्रकार की हैं। सामवेद में गेय ऋचाएं और गेय यजुष, दोनों हैं। सामवेद के ऋचा–समूह को 'आर्चिक' और यजुष–समूह को 'स्तोक' कहते हैं। 'आर्चिक' और 'स्तोक' ही साम कहलाते हैं। इस प्रकार गेय मंत्रों का विशिष्ट प्रकार से संकलन सामवेद कहा गया है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है – सा च अमश्चेति तत्साम्नः सामत्वम्। सा ऋक्। तया सह सम्बन्धः अमो नाम स्वरो यत्र वर्तते तत्साम।।'' अर्थात्–'सा' और 'अम' से मिलकर 'साम' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। 'सा' का अर्थ 'ऋचा' और 'अम' का अर्थ षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि सप्त स्वर है। अतः ऋग्वेद की ऋचाएं जब स्वरों से मिलती हैं, तब 'साम' बनता है। शतपथ ब्राह्मण में साम के महत्त्व को दर्शाया है 'नासामा यज्ञो भवति।' अर्थात्–साम के बिना यज्ञ नहीं होता है। बृहद्देवता में भी कहा गया है कि जो पुरुष साम को जानता है वही वेद के रहस्य को जानता है–'सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम्।'

1.5.2 सामवेद की उपलब्ध संहिताएं

सामवेद की अनेक संहिताएं थीं, जिनमें वर्तमान में केवल तीन ही प्राप्त हैं– कौथुमीय संहिता, जैमिनीय संहिता और राणायणीय संहिता। कौथुम का गुजरात में, जैमिनीय का कर्नाटक में और राणायणीय का महाराष्ट्र में विशेष रूप से प्रचार है। देशकाल, पाठ और गुरु क्रमानुसार इनके अनेक भेद हैं। सामवेद की गुरु परम्परा के सम्बन्ध में विद्वानों का कथन है कि महर्षि जैमिनी सामवेद के प्रथम द्रष्टा थे उसके बाद उन्होंने सामवेद की शिक्षा अपने पुत्र या शिष्य सुमन्तु को, सुमन्तु ने सुत्वा को और सुत्वा ने सुकर्मा को दी। सुकर्मा ने अपने शिष्य सूर्यवर्चासहस्र को ज्ञान दिया। अनध्याय के दिन दीक्षा ग्रहण करने के अपराध में सूर्यवर्चासहस्र का वह ज्ञान देवराज इन्द्र ने नष्ट कर दिया। पुनः देवराज इन्द्र ने सुकर्मा के कोप भय से दूसरे शिष्य धीमान पौष्यंजी को वेदाध्ययन का वरदान देकर संतुष्ट किया। इसके बाद इस परम्परा में आगे हिरण्यनाभ–लौगाक्षि, कुथुमी, कुशीति और लांगली आदि हुए। लौगाक्षि की शिष्य

टिप्पणी

परम्परा में ताण्ड्य पुत्र राणायण, सुविद्वान् मूलचारी, साकेति–पुत्र और सहसात्य पुत्र हुए। कौथुमी के तीन शिष्य कौथुम नाम से प्रसिद्ध हुए। इस परम्परा ने ही सामवेद संहिता को अनेक शाखा प्रशाखाओं में आगे बढ़ाया। एक उपमन्यु नामक ऋषि भी साम शाखाकार हुए, जिन्होंने सामवेद की एक औपमन्यव शाखा का प्रवर्तन किया। सामवेद की राणायणीय संहिता अधिक विश्रुत है। विषय की दृष्टि से उसके दो भाग हैं पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। इनमें प्राप्त होने वाली ऋचाएं ऋग्वेद से ली गई हैं। दोनों भागों की सम्पूर्ण ऋक्संख्या 1910 है, जिसमें कुछ ऋचाओं की बार–बार पुनरुक्ति भी हुई है। इन ऋचाओं को पृथक् करने पर ऋचाओं की वास्तविक संख्या 1549 है। 75 को छोड़कर शेष सभी ऋचाएं ऋग्वेद–संहिता के अष्टम एवं नवम मण्डल से ली गई हैं।

1.5.3 सामवेद : पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक भेद

सामवेदसंहिता के पूर्वार्चिक भाग में 650 ऋचाएं हैं। इसमें 6 प्रपाठक हैं। प्रथम प्रपाठक में अग्नि–विषयक ऋचाओं का संग्रह है। अतः इसे 'आग्नेयकाण्ड' कहते हैं। द्वितीय से चतुर्थ प्रपाठक तक 'ऐन्द्रपर्व' कहा जाता है। यहां पर इन्द्र से सम्बन्धित ऋचाएं हैं। पंचम प्रपाठक आरण्यकपर्व के नाम से प्रसिद्ध है।

उत्तरार्चिक में 400 गीत हैं। एक–एक गीत में प्रायः तीन–तीन ऋचाएं हैं। कहीं–कहीं दो या चार ऋचाएं भी प्राप्त होती हैं। उत्तरार्चिक में प्रपाठकों की संख्या 9 है। पूर्वार्चिक में ऋचाओं का क्रम छन्द एवं देवताओं के आधार पर निश्चित हुआ है, परन्तु उत्तरार्चिक में यज्ञों के आधार पर उनका क्रम निर्धारित है। उत्तरार्चिक के प्रारम्भिक 5 प्रपाठकों में दो–दो 'अर्ध' या अध्याय हैं। अन्तिम 4 प्रपाठकों में तीन–तीन अध्याय हैं। इन अध्यायों में छोटे–छोटे मन्त्रसमूह पाए जाते हैं। उत्तरार्चिक में अनेक मन्त्र ऐसे हैं जो पूर्वार्चिक में भी प्राप्त होते हैं। पूर्वार्चिक में अनेक योनि (ऋचाएं), ताल तथा लय हैं जो उत्तरार्चिक में नहीं हैं। इस प्रकार उत्तरार्चिक को पूर्वार्चिक का परिष्कृत रूप भी कह सकते हैं। उत्तरार्चिक की समस्त ऋचाओं की संख्या 1225 है।

उत्तरार्चिक की रचना निश्चित रूप से पूर्वार्चिक के बाद हुई है। पूर्वार्चिक की अनेक योनियों तथा स्वरों की उपलब्धि उत्तरार्चिक में नहीं होती। विन्टरनित्ज तो उत्तरार्चिक को आर्चिक का पूरक मात्र मानते हैं – "Uttararchika is essential completion of the archika".

आचार्य जैमिनी गीत (गेयता) को ही साम मानते हैं। गीति के प्राण हैं–स्वर। ऋचाओं को साम गान की मूलाधार की योनि कहा गया है। 'ऋचाएं' पदों के समान हैं तथा 'साम' रागों के तुल्य हैं। सामवेदीय ऋचाओं को संगीतमय करने के लिए कतिपय शब्दों को जोड़ा जाता है, इन्हें 'स्तोभ' कहा गया है। कतिपय 'स्तोभ' शब्द इस प्रकार है–हाऊ, होई, औ, हो, होई। ये स्तोभ उसी प्रकार कार्य करते हैं जैसे संगीतज्ञ आलाप के लिए कुछ शब्दों का उच्चारण करता है। इन्हें सामविकार भी कहा गया है। ये 6 प्रकार के हैं– विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम तथा स्तोभ।

टिप्पणी

पूर्वार्चिक में प्रारम्भिक पांच अध्याय तक 'ग्राम–गान', छठे में अरण्यगान हैं। इनके अतिरिक्त ऊहगान एवं ऊह्यगान नामक दो अन्य प्रकार के गीत भी उपलब्ध होते हैं। चरणव्यूह के अनुसार समग्र सामों की संख्या (8,000) तथा गानों की संख्या (14,820) थी।

सामवेद की अधिकांशतः ऋचाएं गायत्री एवं जगती छन्द में हैं। इन दोनों छन्दों की व्युत्पत्ति यज्ञ में 'गा' अर्थात् गान से हुई है।

1.6 अथर्ववेद

अथर्ववेद में अथर्व शब्द से क्या अभिप्राय है? यह एक स्वाभाविक जिज्ञासा है।

1.6.1 अथर्ववेद का नामकरण व अर्थ

वेद क्रम में अथर्ववेद चतुर्थ वेद हैं। यह एक मौलिक ग्रंथ है। 'अथर्वा' नामक ऋषि के नाम से इसका 'अथर्व' नामकरण हुआ। 'गोपथ ब्राह्मण' (1/4, 1/9, 3/4) की एक कथा में कहा गया है कि पुराकाल में स्वयं ब्रह्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति के लिए कठिन तप किया और उस अति कठोर तप के द्वारा अन्त में तपः पूर्ण शरीर से तेजस्वरूपा दो जल धाराएं प्रकट हुईं। उनमें एक धारा से अथर्वन् और दूसरी से अङ्गिरा की उत्पत्ति हुई और उन्हीं से अथर्वाङ्गिरसों की सृष्टि हुई। भृगु अथवा अथर्वन् और अङ्गिरा के वंशजों को जो मंत्र दृष्ट हुए उन्हीं को अथर्ववेद भृग्वाङ्गिरस या अथर्वाङ्गिरस नाम से कहा गया। इसको ब्रह्मवेद भी कहा जाता है।

ग्रिफिथ ने इसका नाम ब्रह्मवेद पड़ने के तीन कारण बताए हैं– 1. ब्रह्मा पुरोहित द्वारा संकलित होने के कारण यह ब्रह्मवेद कहलाता है। 2. इस वेद में मन्त्र, टोटके, आशीर्वाद और प्रार्थनाएं हैं, जिनसे देवताओं को प्रसन्न किया जाता है, उनका संरक्षण प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्य, भूत–प्रेत पिशाच आदि को शाप दिया जा सकता है और नष्ट किया जा सकता है। इन प्रार्थनात्मक स्तुतियों को 'ब्राह्मणि' कहा जाता है एवं इनका समुच्चय होने से इसे 'ब्रह्मवेद' कहा गया है। 3. इसे ब्रह्मवेद कहे जाने के लिए तृतीय युक्ति ग्रिफिथ यह देते हैं कि जहां प्रथम तीनों वेद इस लोक और परलोक में प्राप्तव्य सुखों का उपाय बताते हैं, वहीं अथर्ववेद ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देता है तथा मोक्ष के उपाय बताता है।

अथर्वन् शब्द का अर्थ 'रोगनाशक' है तथा अङ्गिरस शब्द का अर्थ–शत्रुओं, प्रतिद्वंद्वियों एवं दुष्ट मायावियों के प्रति अभिशाप मन्त्र है। अथर्ववेद में दोनों प्रकार की अभिचारविधियां प्राप्त होने के कारण इसे अथर्वांगिरस भी कहा जाता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अथर्ववेद का अर्थ– "The knowledge of magic formulas" किया जाता है। अथर्वन् शब्द को कतिपय विद्वान 'अग्नि–पुरोहित' के अर्थ में ग्रहण करते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पुरोहित यजमान की समग्र बाधाओं को भस्मीभूत कर डालने के लिए जिन मन्त्रों का पाठ करते थे, उन मन्त्रों के संकलन का नाम अथर्ववेद पड़ गया।

टिप्पणी

यह भी कहा जाता है कि इस वेद में सभी वेदों का 'सार' निहित है, अतः यह सबसे श्रेष्ठ वेद है। गोपथ ब्राह्मण में लिखा है –

''श्रेष्ठो हि वेदस्तपसोऽभिजातो ब्रह्मज्ञानं हृदये संबभूव।''¯1/9

एतद् वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वाङ्गिरसः।

यो अङ्गिरस स रसः।

यो अथर्वाणस्तद् भेषजम्।

यद् भेषजम् तदमृतम्। यद् अमृतं तद् ब्रह्म।।¯3/4

1.6.2 अथर्ववेद के मंत्रों का द्विविध विभाजन व विभागों का आकार

विषय की दृष्टि से अथर्ववेद के मंत्रों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। मंत्र–तंत्र, टोना, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण और औषधियों आदि से सम्बद्ध जितने भी मंत्र हैं, उन्हें अङ्गिरस के अन्तर्गत माना जाता है। इनके अतिरिक्त अथर्ववेद में यज्ञ–याग–सम्बद्ध ब्रह्मविद्या विषयक आदि मंत्रों के कारण अथर्ववेद को ब्रह्मवेद भी कहा जाता है। अथर्ववेद में 20 काण्ड हैं।

इस आधार पर एक परम्परागत श्रुति है कि महर्षि भृगु के शिष्य अथर्वा के बीस पुत्रों द्वारा अथर्ववेद परम्परा से दृष्ट होता आया है। इसलिए अथर्ववेद के बीस काण्ड हैं। ये बीस काण्ड 48 प्रपाठकों में विभक्त हैं। इन प्रपाठकों में 730 सूक्त तथा 6000 मंत्र संकलित हैं। महाभाष्य के अनुसार अथर्ववेद की नौ शाखाएं थीं : पैप्पलाद, शौनकीय, मोद, स्तोद, जाजल, ब्रह्मपालास, कुनरवा, देवदर्शी और चरणविद्या। इनमें संप्रति केवल दो शाखाएं ही उपलब्ध हैं, जिनके नाम हैं शौनक और पिप्पलाद। इनमें से शौनक शाखा अधिक प्रचलित है।

1.6.3 अथर्ववेद के प्रसंग

जहां अन्य वेदों का श्रौतकर्मों से अधिक सम्बन्ध है, वहीं अथर्ववेद का सम्बन्ध लौकिक जीवन से अधिक है। उसमें आश्रमधर्म और विशेष रूप से गृहस्थाश्रम के लिए विशेष व्यवस्था है। अथर्ववेद के विषय वैविध्य के कारण ही कौशिक (गृह्य) सूत्र में 'ब्रह्मचारिसाम्पदानि, राजकर्माणि, पापक्षयार्थानि, निर्ऋतिकर्माणि, पुष्टचर्यमणिबन्धनानि, गृहसम्पत्कराणि, भैषज्यानि, भूतप्रेत–पिशाचापस्मारब्रह्मराक्षसबालग्रहादिवारणानि, स्त्रीकर्माणि, अभिचारकर्माणि, आयुष्याणि, कृत्याप्रहरणानि तथा प्रायश्चित्तानि' आदि अनेक वर्गों में अथर्ववेद के मंत्रों का विभाजन किया गया है। इसी आधार पर ब्लूमफील्ड ने अथर्ववेद के मन्त्रों का विषय विभाजन 14 वर्गों में किया है। गोपथ ब्राह्मण ने अन्य वेदों की अपेक्षा ब्रह्म प्राप्ति कराने के कारण इस अथर्ववेद की श्रेष्ठता को ध्वनित करते हुए कहा है कि वेदत्रयी तो स्वर्गादि की प्राप्ति कराती है लेकिन अथर्ववेद श्रेष्ठ ब्रह्मलोकों की प्राप्ति कराता है।

त्रिविष्टपम् त्रिदिवन्नाकमुत्तमं तमेतया त्रय्या विद्ययेति।

अत उत्तरे ब्रह्मलोका महान्तोऽथर्वणामङ्गिरसाच्च सा गतिः।।' गो.ब्रा. पूर्वभाग

टिप्पणी

मनुष्य को परमाधिगन्तव्य तत्त्व ब्रह्मकी प्राप्ति कराने के कारण इस वेद की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध हो जाती है। धर्म अर्थात् यज्ञादि की दृष्टि से भी अन्य वेदों की अपेक्षा इसका महत्त्व कुछ कम नहीं है। अथर्ववेद का प्रमुख ऋत्विक् ब्रह्मा है। यह त्रयी में निष्णात होता है (अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति त्रय्या विद्ययेति ब्रूयात् ऐ.ब्रा. 25.33)। गोपथ ब्राह्मण में इसे 'एष ह वै विद्वांन्सर्वविद् ब्रह्मा यद्भृग्वङ्गिरोवित्' कहा गया है (पूर्वभाग 2/1/8, 5/1/9)।

1.6.4 अथर्ववेद के विभिन्न सूक्त

इस वेद को ऋत्विक, ब्रह्मा, राष्ट्रसंवर्ग औषधि तथा गुरु की महत्ता आदि विशेषताओं के कारण अथर्ववेद, अङ्गिरोवेद, भृग्वङ्गिरोवेद, अथर्वाङ्गिरोवेद, ब्रह्मवेद, क्षत्रवेद, भिषग्वेद आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। इस सब की अपेक्षा काव्य की दृष्टि से इसकी विशेषता अधिक है क्योंकि ऋग्वेद के पश्चात् यही वह वेद है जिसमें काव्य की दृष्टि से प्रचुर सामग्री विद्यमान है और जो ऋग्वेद तथा लौकिक साहित्य के बीच में होने से अथर्ववेदीय साहित्यिक परम्पराओं को आगे बढ़ाता है। संक्षिप्त रूप से अथर्ववेदीय प्रतिपादित विषय अधोलिखित हैं–

1 **भेषज्यानि सूक्तानि**– भैषज्य सूक्तों के अन्तर्गत रोगों की चिकित्सा से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्र तथा विधि–विशेषों का अन्तर्भाव शामिल है। रोगों की उत्पत्ति अनेक प्रकार के पीड़ा पहुंचाने वाले राक्षसों तथा भूत–प्रेतों के कारण होती है, इसलिए अनेक मन्त्रों में इन्हें दूर करने के उपाय वर्णित हैं। कौशिकसूत्र में इन मन्त्रों की सहायता से किये जाने वाले जादू टोनों का भी विशेष वर्णन है। रोगों के लक्षण तथा उनके कारण उत्पन्न शारीरिक विकारों का विशद वर्णन आयुर्वेद की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है।

अथर्ववेद में तक्मन् ज्वर का उल्लेख है। इसके विषय में अथर्ववेद का कथन है कि ज्वर मनुष्यों को पीला बना देता है तथा आग के समान तीव्र गर्मी से लोगों को जला डालता है। इसलिए उससे प्रार्थना की जाती है कि या तो वह गायब हो जाए अथवा महावृष नामक सुदूर प्रान्तों में भाग जाए (5/25/7/8)। बलास रोग (क्षय) (6/14), गण्डमाला (6/63), यक्ष्मा (6/85) जिसे दूर करने के लिए वरुण नामक औषधि के सेवन का उपयोग; खांसी (6/105), दन्त–पीड़ा (6/140) आदि रोगों तथा उनकी औषधि का वर्णन बड़ी ही सुन्दरता से अथर्ववेद में किया गया है।

सर्प–विष को दूर करने के भी अनेक उपाय वर्णित हैं। सूक्त 4/13 में असित तैमात, आलिगी, विलिगी, उरूगूला आदि सांपों के नाम उल्लिखित हैं, जिन्हें लोकमान्य तिलक ने विदेशी प्रभावों का सूचक बताया है। अनेक औषधियों तथा वृक्षों की प्रशंसा में भी अनेक मन्त्र मिलते हैं। डॉक्टर विन्टरनित्ज ने अथर्ववेद में उल्लिखित अप्सरा तथा गन्धर्व–विषयक भावनाओं की जर्मनदेशीय भावनाओं से तुलना की है।

टिप्पणी

2. **आयुष्याणि सूक्तानि**—दीर्घ आयु के लिए प्रार्थना करने वाले मन्त्रों का सम्बन्ध इस विभाग से हैं। इन सूक्तों का विशेष प्रयोग पारिवारिक उत्सवों के अवसर पर होता था, जैसे बालक का मुण्डन, युवक का गोदान (प्रथम क्षौरकर्म) तथा उपनयन संस्कार। इन सूक्तों में एकशत शरद् तथा एक हेमन्त तक जीवित रहने के लिए, सौ प्रकार की मृत्युओं से बचने के लिए, प्रत्येक प्रकार के रोग से रक्षा के निमित्त प्रार्थनाएं उपलब्ध होती हैं। अथर्ववेद में आयु की दीर्घता के लिए हाथ में 'रक्षासूत्र' धारण करने का विशेष विधान मिलता है। इस रक्षासूत्र के धारण करने से प्राणी को पूर्ण स्वास्थ्य तथा चिरजीवन की सद्यः प्राप्ति होती है। 17वें कांड का एकमात्र सूक्त इसी के अन्तर्गत आता है।

3. **पौष्टिकानि**—इस विभाग के अन्तर्गत घर बनाने के लिए, हल जोतने के लिए, बीज बोने के लिए, अनाज उत्पन्न करने के लिए, पुष्टि के लिए, विदेश में व्यापार हेतु जाने वाले वणिक् के लिए नाना प्रकार के आशीर्वादों की प्रार्थना की गई है। इस विषय में सबसे सुन्दर वृष्टि सूक्त (4/15) है, जिसमें वृष्टि का बड़ा ही रमणीय, साहित्यिक तथा उज्ज्वल वर्णन उपलब्ध होता है।

4. **प्रायश्चित्तानि**—इन सूक्तों में प्रायश्चित्त का विधान पाया जाता है। प्रायश्चित्त का विषय है चारित्रिक त्रुटि या धार्मिक विरोध तथा अन्य विधिहीन आचरण—जैसे ज्ञात और अज्ञात अपराध हेतु धर्मशास्त्र द्वारा वर्जित विवाह के कारण, ऋण का प्रतिशोध न करने के कारण, बड़े भाई के पूर्व छोटे भाई के विवाह करने के कारण जो अपराध मानवों से होता है, आदि से मुक्त होने के लिए यहां प्रायश्चित्तों का विधान है। इनसे सम्बन्ध रखने वाले ऐसे उत्सव, गीत तथा मन्त्र पाए जाते हैं, जिनके द्वारा शारीरिक दुर्बलता, मानसिक त्रुटि, दुःस्वप्न, अपशकुन आदि वस्तुएं निराकृत तथा दूरीकृत की जाती हैं। इस युग में शुभ—अशुभ शकुनों में भी विश्वास था। पक्षियों के उड़ने का स्वप्न, युग्म बालक के जन्म का स्वप्न, बालक का अशुभ नक्षत्र में जन्म आदि के प्रभावों और उपायों का यहां उल्लेख है। आज की भांति उस युग में भी इन अपशकुनों के द्वारा मानव अपने कल्याण की भावना से भयभीत तथा त्रस्त होता था और उन्हें दूर करने के लिए अनेक उपायों को करता था, जिनका यहां बहुत विवरण मिलता है।

5. **स्त्रीकर्माणि**—विवाह तथा प्रेम से सम्बन्ध रखने वाले बहुत से सूक्त तत्कालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करने के लिए विशेष सहायक हैं। इन सूक्तों में पुत्रोत्पत्ति के लिए तथा सद्योजात शिशु की रक्षा करने के लिए भावप्रवण प्रार्थनाएं की गई हैं। 14वां काण्ड विशेषतः इसी प्रसंग से सम्बद्ध है। दूसरे प्रकार के मन्त्रों में अपनी सुपत्नी को वश में करने के लिए तथा अपने पति के स्नेह का सम्पादन करने के लिए अनेक जादू—टोनों का वर्णन है। स्नेह का सम्पादन करने के लिए अनेक जादू—टोनों के वर्णन का कौशिक—सूत्र से पता लगता है। कौशिक—सूत्र से यह भी पता लगता है कि किसी स्त्री के प्रेम सम्पादन के लिए किस प्रकार

टिप्पणी

उसकी मिट्टी की मूर्ति बनाई जाती है तथा बाण के द्वारा उसके हृदय को विद्ध किया जाता है तथा उस समय अथर्व (3/25) के मन्त्रों का पाठ भी किया जाता है। इसी प्रकार पति के वशीकरण के निमित्त स्त्री उसकी मूर्ति बनाकर गरम बाणों के सिरे से उसके मस्तक को बेधती है। साथ ही अथर्ववेद के 6/130, 6/138 सूक्त के मन्त्रों का पाठ भी करती है। इन सूक्तों में देवताओं से पति को अपने प्रेम में पागल बनाने की प्रार्थना है जिससे वह दिन–रात उसी के ध्यान में आसक्त रहे–''हे मरुत्! मेरे पति को उन्मत्त बना दो, हे अन्तरिक्ष! तथा हे अग्नि! उसे पागल बना दो जिससे वह मेरा ही चिन्तन किया करे'' (6/130/4)। यदि वह भागकर तीन या पांच योजन भी अन्यत्र चला गया हो तो वह लौट आए (अथर्व 6/131/4)। सबसे भयानक तो वह प्रार्थना है जिसमें एक स्त्री अपनी प्रतिस्पर्धिनी स्त्री को ध्वस्त तथा परास्त करने के लिए आग्रह करती है (अथर्व 1/14)। इन मन्त्रों तथा क्रियाओं को 'आभिचारिक' नाम से पुकारते हैं, क्योंकि विशेषतः मारण, मोहन (वशीकरण) तथा उच्चाटन आदि फलों की सिद्धि के निमित्त ही इनका बहुत प्रयोग होता है।

6. **राजकर्माणि**–राजाओं से सम्बद्ध बहुत से सूक्त अथर्ववेद में पाये जाते हैं जिनके अध्ययन से तत्कालीन राजनीतिक दशा का विशद चित्र उपलब्ध होता है। शत्रुओं को परास्त करने की प्रार्थना के साथ–साथ संग्राम तथा तदुपयोगी साधनों, जैसे – रथ, दुन्दुभि तथा शंख आदि का विशेष विवरण सांग्रामिक दृष्टि से भी अथर्व की महत्ता घोषित कर रहा है। अथर्व के 'क्षत्रवेद' नाम का यही कारण प्रतीत होता है। उस युग में प्रजा ही राजा का संवरण (चुनाव) करती थी। अथर्व 3/4 सूक्त में मनुष्यों के साथ ही साथ अश्विन, मित्रावरुण, मरुत् तथा वरुण के द्वारा भी राजा के संवरण करने का वर्णन किया गया है। अन्ध सूक्त (अथर्व 3/3) से पता चलता है कि देश से निष्कासित राजा पुनः राज्य में बुलाया जाता था तथा सम्मानपूर्वक प्रतिष्ठा पाता था। संग्राम के लिए वीरों के हृदय में उत्साह फूंकने वाले नगाड़े (दुन्दुभि) का वर्णन नितान्त साहित्यिक तथा वीर रस से पूर्ण है। पांचवें काण्ड का दशमसूक्त कवित्व तथा मनोहर भावों के प्रदर्शन के कारण बहुत रोचक, सरस तथा अभिव्यंजनात्मक है। दुन्दुभि की गड़गड़ाहट सुनकर शत्रु की नारी को भयानक अस्त्रों के संघर्ष के बीच में अपने पुत्र को छाती से चिपका कर भाग जाने की प्रार्थना संग्राम के प्रांगण में अत्यंत करुणाजनक दृश्य उपस्थित करती है – (अथर्व 5/20/5)।

7. **दुन्दुभिसूक्त**–दुन्दुभिसूक्त (5/21) में सुन्दर उपमा तथा भाव–सौष्ठव का योग उसके वीर रस के आदि काव्य होने की स्पष्ट घोषणा कर रहा है। अधोलिखित मंत्र में दुन्दुभि से शत्रुओं के त्रासन तथा मोहन की प्रार्थना करते समय मालोपमा का सौन्दर्य नितान्त अभिराम तथा श्लाघनीय है (अथर्व, 5/21/6)–

यथा श्येनात् पतत्त्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनयोर्यथा।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभिक्रन्द प्रत्रासयाथो चित्तानि मोहय।।

टिप्पणी

मन्त्र का आशय है कि जिस प्रकार बाजपक्षी से अन्य पक्षी उद्विग्न हो जाते हैं और जिस प्रकार सिंह की गर्जना सुनकर प्राणी भयभीत हो उठते हैं, उसी प्रकार हे दुन्दुभि! तुम हमारे शत्रुओं के प्रति अपनी गड़गड़ाहट करो, उन्हें खूब डरा दो और उनके चित्त को मोहित कर दो, जिससे युद्ध में उनकी शक्ति का ह्रास हो तथा वे शीघ्र ध्वस्त हो जायें।

8. **पृथ्वी सूक्त**—यह सूक्त भाषा तथा भाव की दृष्टि से नितान्त उदात्त, भावप्रवण तथा सरस है। पृथ्वी की महिमा का यह वर्णन स्वातन्त्र्य के प्रेमी तथा स्वच्छन्दता के रसिक अथर्वण ऋषि का हृदयोद्गार है। इस शैली के प्रौढ़ काव्य की उच्च कल्पना तथा भव्य भावुकता वैदिक साहित्य में भी अन्यत्र दुर्लभ है। इस सूक्त में अथर्वण ने 63 मन्त्रों में, मातृरूपिणी भूमि की समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी तथा पोषिका के रूप में महिमा उद्घोषित की है तथा प्रजा को समस्त बुराइयों, क्लेशों तथा अनर्थों से बचाने तथा सुख—सम्पत्ति की वृष्टि के लिए प्रार्थना की है।

इस सूक्त में 'मातृभूमि' की बड़ी ही मनोरम कल्पना की गई है। 'मातृभूमि' का यह रुचिर वर्णन देशभक्ति की प्रेरणा का मधुर विलास है। 'मातृभूमि' यहां एक सजीव रूप में प्रस्तुत होती है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' (12/1/12)—अर्थात् 'मेरी माता भूमि है और मैं मातृभूमि का पुत्र हूं' बड़ी ही उदात्त भावना का प्रेरक मन्त्र है। इस भूमि के निर्माण तथा संरक्षण में देवताओं का सहयोग रहा है। 'अश्विनीकुमारों ने जिसे मापा, विष्णु ने जिस पर अपने तीन पादप्रक्षेपों को रखा, शक्ति के स्वामी (शचीपति) इन्द्र ने जिसे अपने लाभ के लिए शत्रुओं से विरहित बनाया, वह भूमि मुझे उसी प्रकार दूध दे जिस प्रकार माता अपने पुत्र को स्वतः अनुराग से दूध देती है' (मन्त्र 70)।

'सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः' इस वाक्य में कितनी ममता भरी हुई है। पृथ्वी के ऊपर नाचने, कूदने, फांदने तथा लड़ने—भिड़ने का स्वाभाविक वर्णन यहां किया गया है। पृथ्वी का एकांगी रूप प्रस्तुत न होकर उसका सर्वांगीण रूप इस सूक्त में उपस्थित किया गया है। पृथ्वी के ऊपर नदी तथा पर्वत सदा लाभदायक बनें, छहों ऋतुओं का आगमन प्रजा के कल्याण के निमित्त हो, आदि कहते हुए समग्र प्रजा एक समष्टि के रूप में कल्याण की भाजन बनायी गयी है। पृथ्वी से प्रार्थना है कि जितने सर्प, वृश्चिक, हिंसक तथा रोगवर्धक कृमि प्रावृट्काल में (क्योंकि ये वर्षा के आगमन पर उत्पन्न होते हैं तथा प्रजा को महती हानि पहुंचाते हैं) तुम पर चलते हैं, वे हमसे दूर भाग जाएं तथा शिव (कल्याणकारी) हमारे पास आएं' (मन्त्र 45)।

इस प्रकार यह 'भूमि सूक्त' युग की महनीय राष्ट्रीयता का सन्देशवाहक बनकर आज भी हमारे लिए उत्साह का सद्यः प्रेरक है (12/2)।

9. **ब्रह्मण्यानि**—ब्रह्मण्य सूक्तों में जगत् के परमतत्त्वभूत परमात्मा तथा परब्रह्म के स्वरूप और कार्य का विवेचन है। इन आमुष्मिक ब्रह्मण्य सूक्तों के कारण ही

टिप्पणी

अथर्ववेद 'ब्रह्मवेद' को महनीय अभिधान से पुकारा जाता है। इन सूक्तों में दर्शन के गम्भीरतम तथ्यों की विशद समीक्षा प्रस्तुत की गई है। इन सूक्तों में अन्तर्दृष्टि से संवलित प्रातिमचक्षु ऋषियों के स्वानुभूत तत्त्वों का विशद विवेचन, इन्हें बहुमूल्य तथा दार्शनिक दृष्टि से विशेष उपादेय सिद्ध करता है।

परमतत्त्व जहां नाना अभिधानों तथा संज्ञाओं के द्वारा अभिहित किया गया है, वहीं 'काल' नाम से जगत्, पृथ्वी तथा दिव् का उत्पादक और नियन्ता है। काल समस्त प्रपंच का अधिष्ठान है। उसमें केवल मन, प्राण तथा नाम ही समाहित नहीं है; प्रत्युत वह सबका ईश्वर तथा प्रजापति का भी पिता है। उसी के संकल्प करने पर यह जगत् उत्पन्न हुआ और उसी में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार काल ही जगत् का परमतत्त्व स्वीकृत किया गया है (19/53/8)–

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः।।

त्रयोदश काण्ड के अनेक सूक्तों में जिस 'रोहित' का वर्णन है वह भी सूर्य या सूर्यस्थ वीर्य का प्रतीक होने से जगत् के सृष्टि आदि समस्त व्यापारों का निर्वाहक है। सूर्य के घोड़े उसी रोहित को रथ पर चढ़ाकर चारों ओर ले जाते हैं। वही यज्ञ को उत्पन्न करने वाला है और सम्पूर्ण विश्व का निर्माता है। उसी के अधिष्ठान के ऊपर यह विश्व खड़ा है तथा अपना जीवन यापन करता है। इस वर्णन से स्पष्टतः प्रतीत होता है कि रोहित ब्रह्म का ही प्रतीक है।

10. **विजय सूक्त**– अथर्ववेद में विजय सूक्त के महत्त्व को भी कम करके नहीं आंका जा सकता। सामान्य दृष्ट्या इसमें द्यूतक्रीड़ा में रत लोगों पर विजय प्राप्ति को विषय–वस्तु के रूप में देखा जा सकता है। द्यूत क्रीड़ा में प्रतिपक्षी को हराकर विजय प्राप्ति से मिलने वाला ऐश्वर्य निश्चित ही द्यूत में रुचि रखने वाले के लिए आनंददायक हो सकता है। आध्यात्मिक दृष्टि से विषय भोगों के आकर्षण के कारण परिश्रम से भागने वाला व्यक्ति भी अपने जीवन को दांव पर लगाता हुआ समझा जा सकता है। श्रेष्ठ कर्मों का संपादन करके अपने सात्त्विक बल से मनुष्य उन विषयों पर विजय प्राप्त करता है।

विजय सूक्त के मंत्र युद्धक्षेत्र में विजय प्राप्ति के लिए आवश्यक उत्साह प्राप्ति की ओर भी संकेत करते हैं। पौराणिक दृष्टि से सूक्त के आठवें मंत्र ''कृतं में ..... हिरण्यजित् के अन्तर्गत सव्यसाची धनंजय/अर्जुन के द्वारा विराट् नगर में कौरव सेना के आक्रमण में विजय प्राप्ति के संकेत को भी देखा जाता है। इस युद्ध में अर्जुन ने बृहन्नला रूप में न केवल समूची कौरव सेना को परास्त किया था अपितु कौरवों द्वारा अपहृत गौओं को भी छुड़ाकर वे 'गोजिद्' भी बने थे। इसी मंत्र की प्रथम पंक्ति एक विशिष्ट 'सूक्ति' कही जाती है। इस सूक्ति से मनुष्य मात्र को परिश्रमवान् बनने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

1.6.5 इतर सूक्त

टिप्पणी

अन्य सूक्तों में गौ का वर्णन बड़ी मार्मिकता के साथ किया गया है (10/10)। गौ जगत् के समस्त पदार्थों की जननी के रूप में चित्रित की गई है। ब्राह्मणों के लिए दक्षिणास्वरूप होने मात्र से ही गौ का महत्त्व केवल वैदिक युग में ही नहीं था; प्रत्युत कृषक–समाज के लिए सर्वस्व होने के कारण भी गौ का गौरव अतीव महान् था। इस सूक्त में वशा(वश में रहने वाली) गौ जगत् में सर्वश्रेष्ठ तत्त्व के रूप में चित्रित की गयी है। कोई वशा की अमृतरूप से और कोई मृत्युरूप से उपासना करते हैं। संसार में देव, मनुष्य, असुर, पितर तथा ऋषिगण सब कुछ वशा (में समाहित) हैं।

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या असुराः पितर ऋषयः।।(अथर्व 10/10/26)

गौ के इस आध्यात्मिक महत्त्व को समझने वाले व्यक्ति को ही यज्ञ में दान देने से वह सफल तथा कल्याणप्रद होता है (म0 27)।

'स्तम्भ' (10/7,8) तथा 'उच्छिष्ट' (11/9) प्रकारान्तर से परब्रह्म के ही नवीन अभिधान एवं स्वरूप प्रतीत होते हैं। जगत् के समस्त पदार्थों का आश्रय तथा अधिष्ठाता होने का कारण ही वह परमतत्त्व स्तम्भ (आधार) की संज्ञा से मण्डित है। वह केवल विश्व का ही कारण नहीं; प्रत्युत ब्रह्म का भी कारण है और इसीलिए वह 'ज्येष्ठ ब्रह्म' कहलाता है। जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष तथा आकाश समाहित हैं–अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य तथा वायु जिसमें अर्पित होकर रहते हैं–वही स्तम्भ है (10/7/12)। वही आत्मा के साथ ऐक्य धारण करने वाला तत्त्व है। 'उच्छिष्ट' शब्द का अर्थ होता है–बचा हुआ, शेष पदार्थ। दृश्य प्रपंच का निषेध करने पर जो वस्तु अवशिष्ट रहती है वही 'उच्छिष्ट' है। अर्थात् 'नेति नेति' से ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि। जगत् के समस्त पदार्थों की उत्पत्ति– वेद तथा पुराण की उत्पत्ति (मन्त्र 24), प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र आदि की उत्पत्ति (मन्त्र 25) उच्छिष्ट से ही हुई है–

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः।। (11/7/23)

● व्रात्यकाण्ड

15वां काण्ड 'व्रात्यकाण्ड' के नाम से पुकारा जाता है, क्योंकि इसमें व्रात्य का ही समग्रतया विवरण है। इस काण्ड में दो अनुवाक हैं। प्रथम अनुवाक में 7 सूक्त तथा दूसरे में 11 सूक्त हैं। प्रत्येक सूक्त में अनेक गद्यात्मक मन्त्र हैं। पैप्पलाद शाखा की उपलब्ध अपूर्ण संहिता में 18वें काण्ड के 27वें सूक्त में व्रात्य–विषयक केवल 1 मन्त्र ही उपलब्ध है, शेष मन्त्र लुप्त हो गये हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि 'व्रात्य' कौन है? साधारणतया व्रात्य उस मनुष्य को कहते हैं जिसका जन्म तो द्विजकुल में हुआ हो, पर जिसका उपनयनादि संस्कार न हुआ हो। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन काल में आर्यों की कुछ अर्धसभ्य शाखाएं थीं, जो बस्तियों के बाहर रहती थीं और

टिप्पणी

धीरे–धीरे वे आर्य–समूह में मिल गईं, परन्तु उस आदिम काल में उनका रहन–सहन अन्य लोगों से भिन्न था। सम्भवतः वे वैदिक संस्कारों को नहीं मानती थीं। ताण्ड्य–ब्राह्मण (17/1) में इनकी वेशभूषा का बड़ा ही विस्तृत तथा सजीव वर्णन मिलता है, जिससे इनकी जाति–गत विशिष्टता, आचार–व्यवहार और रहन–सहन का रोचक चित्र हमारे नेत्रों के सामने झलक उठता है। अथर्ववेदीय 'व्रात्यकाण्ड' में निर्दिष्ट व्रात्य का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो आचार–विचार से रहित है तथा नियमों की शृंखला में बद्ध नहीं है।

ब्रह्म के स्वरूप का तथा उससे उत्पन्न सृष्टिक्रम का व्यवस्थित वर्णन भी इस काण्ड में विस्तार से किया गया है। 'व्रात्यो वा इदम् अग्र आसीत्'–पैप्पलाद शाखा के इस वाक्य से स्पष्ट है कि जगत् के आदि में 'व्रात्य' ही केवल विद्यमान था। फलतः 'व्रात्य' शब्द से वहां 'ब्रह्म' का ही संकेत है। यह व्रात्य गतिमान् होकर प्रजापति को प्रेरित करता है। यहां प्रजापति से तात्पर्य हिरण्यगर्भ से है–''स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्यपश्यत् तत्प्राजनयत्।'' यहां जीवों के शुभाशुभ कर्मों के संस्कार को सुवर्ण कहा गया है। जिस प्रकार सोने से नाना आकार वाले आभूषणों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार जीवों के संस्कारसमूह से नाना रूप वाला जगत् बनता है। इन्हीं के आधार होने के कारण प्रजापति हिरण्यगर्भ के नाम से भी प्रख्यात है। हिरण्यगर्भ के द्वारा सृष्टि के क्रम का वर्णन यहां किया गया है। इसके अनन्तर वह व्रात्य नाना दिशाओं में जाता है, तत्सम्बद्ध जीवों के संस्कारसमूह से नाना रूप वाला जगत् बनता है। इसका विशद विवरण इस काण्ड में है। इस प्रकार यह व्रात्यकाण्ड भी उच्छिष्ट सूक्त के समान आध्यात्मिक तथ्यों का प्रतिपादक है जिसका विपुल वर्णन उपनिषदों में किया गया है।

अथर्ववेद के दार्शनिक सूक्तों में निर्दिष्ट तत्त्व उपनिषदों की पूर्वपीठिका माने जा सकते हैं। इन्हीं सूक्तों की महती व्याख्या उपनिषदों में उपलब्ध होती है। इस प्रकार अथर्ववेद के विषयों की यह समालोचना उसके ऐहिक तथा आमुष्मिक रूप से परिचय देने के लिए पर्याप्त मानी जा सकती है।

काव्य की दृष्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पूरक माना जा सकता है। ऋग्वेद को प्राचीनतम काव्य का निदर्शन मानना एक स्वतःसिद्ध सिद्धान्त है, परन्तु अथर्ववेद को भी यह मान्यता प्रदान की जानी चाहिए, क्योंकि यदि ऋग्वेद में अधिकांशतः आधिदैविक तथा अध्यात्म–विषयक मनोरम मन्त्रों का एक सुन्दर समुच्चय है, तो अथर्ववेद आधिभौतिक विषयों पर रचित मन्त्रों का एक प्रशंसनीय संग्रह है। काव्य की दृष्टि से दोनों में उदात्त भावना से मण्डित तथा मानव–हृदय को स्पर्श करने वाले सुचारु गीतिकाव्यों का बृहत् संग्रह है। दोनों मिलकर आर्यों के प्राचीनतम काव्यकला के रुचिर दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है।

टिप्पणी

1.6.6 अथर्ववेद में अभिचार प्रयोग

किसी देश या समाज में दो स्तरों के मनुष्य पाए जाते हैं– एक निम्नस्तर के, जिनके आचार–विचार एक विचित्र धारा में प्रवाहित होते रहते हैं। ये 'साधारण जनता' के नाम से ही पुकारे जाते हैं। दूसरे हैं उच्च स्तर के, जिनकी विशेष शिक्षा–दीक्षा होती है। दोनों की रुचि भिन्न होती है और दोनों के लिए कविता भी भिन्न प्रकार की होती है। कविता के ये विभिन्न प्रकार निःसन्देह एक–दूसरे के पूरक होते हैं। अथर्व तथा ऋग्वेद की कविता का पार्थक्य इसी कारण सिद्ध होता है। अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जनजीवन है, तो ऋग्वेद का विशिष्ट जनजीवन है।

साधारण जनता के अनेक विश्वास विचित्र तथा विलक्षण हुआ करते हैं। किसी रोग का निदान करते समय वे आधिदैविक कारणों की उपेक्षा नहीं करते। उनके जीवन पर भूत–दूत, प्रेत–पिशाच, डाकिनी–शाकिनी जैसे अदृश्य अर्धदैविक प्राणियों की सत्ता उसी प्रकार प्रभाव डालती है, जिस प्रकार भूतल के दृश्य प्राणियों के अस्तित्व पर। उनकी दृष्टि में ये पदार्थ अदृश्य जगत् के निवासी न होकर इस ठोस धरातल पर उसी प्रकार रहते हैं जिस प्रकार मनुष्य तथा पशु।

फलतः उनके विचार में इन प्राणियों का अस्तित्व उनके जीवन की घटनाओं को प्रभावित करने में सर्वथा समर्थ होता है। कोई कुमारी अपने लिए योग्य पति पाने में यदि असमर्थ है, तो इसका कारण वह न तो अपने सौन्दर्य के अभाव को मानती है और न अपने माता–पिता के प्रयत्नों के शैथिल्य को प्रत्युत वह किसी अदृश्य जीव को अपने ऊपर प्रभावशाली मानकर उसके प्रभाव को ध्वस्त करने का प्रयत्न करती है। साधारण जीव अपने शत्रु को परास्त करने के लिए टोने–टोटकों की शरण में जाता है। ऐसे प्राकृत विश्वासों तथा आचारों की जानकारी के लिए अथर्ववेद सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है।

इस वेद के अध्ययन से पता चलता है कि अभिचार दो प्रकार का होता था–एक तो मंगलसाधक, जिसमें साधक अपने कल्याण की कामना करता था; दूसरा होता था अमंगलसाधक जिसमें शत्रुओं को परास्त तथा ध्वस्त करने की भावना प्रबल होती थी। पवित्र अभिचार (अथर्व) में हमें रोग की चिकित्सा के हेतु मन्त्र मिलते हैं तो अमांगलिक अभिचार (आंगिरस) में शत्रुओं तथा विद्रोहियों के प्रति अभिशाप युक्त मन्त्र मिलते हैं। इन दोनों प्रकार के अभिचार मन्त्रों का संग्रह होने के कारण ही तो यह समग्र वेद 'अथर्वाङ्गिरस' के नाम से प्रसिद्ध है।

यदि कोई व्यक्ति किसी सुन्दरी का प्रेम प्राप्त करना चाहता है, तो उसे अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिये अथर्व में अनेक विधान मिलते हैं। 'कौशिकसूत्र' में एक विधान का प्रकार इस प्रकार है–प्रेमी अपनी सुन्दरी की मिट्टी की मूर्ति बनाता है। अपने हाथ में वह सन की डोरी वाले धनुष को लेता है, जिसके बाण का अग्रभाग तीक्ष्ण कंटक से बिंधा रहता है। इसी बाण से वह अपनी प्रेयसी के हृदय को बेधता है और साथ में अथर्व के मन्त्रों का (3/25/1–5 और 6) उच्चारण करता है। इससे उसका मनोरथ पूर्ण हो जाता है। कभी–कभी बड़े बर्बर अभिचारों का प्रयोग

टिप्पणी

भी बताया गया है, जैसे– किसी स्त्री को वन्ध्या अथवा किसी पुरुष को पुंस्त्वशक्ति से विहीन बनाकर नपुंसक बनाने के लिए बताए गए अभिचार। दुःस्वप्नों को दूर हटाने के लिए कहीं भूतापसरणविधि दी गई है, तो कहीं संग्राम में शत्रु की प्रबल सेना को ध्वस्त करने के लिए तथा राजा को विजयी बनाने के लिए भी अनेक अभिचार मन्त्र हैं।

रोगों को दूर करने के लिए नाना प्रकार की औषधियों का प्रयोग मन्त्रों के साथ दिया गया है। साधारण ज्वर (तक्मन्), किलास (श्वेत कुष्ठ), क्षेत्रिय रोग (कुलक्रमागत रोग), यक्ष्मा (क्षय रोग), विष (शरीर में किसी भी प्रकार से प्रविष्ट विष) आदि के निवारण के लिए औषधियों के प्रयोग नाना विधान के साथ यहां उपलब्ध होते हैं, जिससे मानव के कल्याण की भावना सर्वतोमुखी प्रतीत होती है। तात्पर्य यह है कि अथर्ववेद प्राकृतजन के विश्वासों का, भूतप्रेत आदि अदृश्य जीवों में पूर्ण आस्था का एक विराट् विश्वसनीय कोश है, जिसकी सहायता से हम उस प्राचीन युग की एक भव्य झांकी देख सकते हैं। इसके मन्त्रों की भाषा भी अपेक्षाकृत सरल तथा सुबोध है।

तथापि यह समस्त वर्णन मन्त्रों के स्थूलार्थ पर आधारित है। गहन विवेचना करने पर ही इनके आध्यात्मिक व लाक्षणिक अर्थों तक पहुँचा जा सकता है। उदाहरण के लिए प्रेयसी के हृदय को बींधने का अभिधार्थ कोई वज्रमूर्ख ही ले सकता है। यहाँ पुष्पधन्वा कामदेव की ओर संकेत स्पष्ट है।

उधर ऋग्वेद संस्कृतजन के विचारों की झांकी प्रस्तुत करता है। उसके आचार–विचारों का धरातल नितान्त उच्चस्तरीय, सुसंस्कृत तथा शिष्ट है। समाज के उच्चस्तर के विचारों की विचार–धारा मन्त्रों के माध्यम से यहां प्रवाहित होती है। जीवन को सुखमय बनाने वाले तथा प्राकृत दृश्यों के प्रतीकरूप देव हमारे जीवन में सर्वथा प्रभविष्णु तथा महत्त्वपूर्ण शक्तियां हैं। इसीलिए पुरोहितवर्ग अपने लिए, अपने यजमान के लिए, अपने आश्रयदाताओं के लिए बड़ी सुश्लिष्ट स्तुतियां सुनाकर उन्हें कृपाशील बनाने के लिए प्रार्थना करता है। वे सर्वदा अपने पुत्र–पौत्रों के सुख–समृद्धि आदि के निमित्त देवों से प्रार्थना करने में कभी नहीं चूकते। देवों का साक्षात्कार करने तथा श्रद्धामयी पूजा देने का प्रधान उपकरण यज्ञ माना गया है। इन्हीं को लक्ष्य करके ऋग्वेद के अधिकांश मन्त्र प्रतीत होते हैं। इनमें कोई याज्ञिक उद्देश्य अवश्यमेव विद्यमान रहता है। यज्ञीय उपकरण नितान्त उदात्त तथा विशुद्ध होते हैं।

घृत, यव, तिल तथा सोमरस–ये देवता के उद्देश्य से अर्पित किये जाने वाले प्रधान पदार्थ हैं। इनमें भी सोमरस का प्रामुख्य है। सोमयाग में सोमरस तीन बार पत्थरों से कूटकर बनाया जाता था, जिसे 'सवन' कहते थे। तदनन्तर उसे छानकर द्रोण–कलश में रखते थे तथा उसमें दूध मिलाने की भी विधि थी, इसी का नाम था 'पवमान सोम', जिसके विशिष्ट मन्त्रों के लिए ऋग्वेद का एक विशिष्ट मण्डल ही पृथक् कर दिया गया है। फलतः यज्ञ के अवसर पर इन्द्र, वरुण, अग्नि, सूर्य, सविता, अश्विन आदि देवताओं के लिए सोमरस का समर्पण ऋग्वेदीय युग का

टिप्पणी

आवश्यक धार्मिक कृत्य था। इसी के लिए यजुः तथा साम का भी प्रयोग होता था। फलतः ये तीनों–ऋक्, यजुः तथा साम–एक ही यज्ञ को ध्यान में लक्ष्य कर प्रवृत्त होने वाले मन्त्रपुंज हैं। समाज का उच्चस्तरीय भाग इस पूजा–विधान का अधिकारी था। इसके लिए प्रयुक्त होने वाली संस्कृत भाषा अपने विशुद्ध उदात्त रूप में हमारे सामने आती है। फलतः ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के मन्त्र दोनों मिलकर वैदिक युग के धार्मिक विधि–विधान का स्वरूप प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। प्राकृतजन तथा संस्कृतजन दोनों प्रकार के लोगों के विचारों में धरातलीय स्तर पर इन ग्रन्थों में स्पष्टतः साम्य दृष्टिगोचर होता है। अतएव ये दोनों एक–दूसरे के परस्पर पूरक माने जा सकते हैं।

1.6.7 अथर्ववेद में यज्ञ का महत्व

ऐसा नहीं है कि अथर्व में यज्ञ के विधान का स्थान नगण्य और उपेक्षणीय है। ऋग्वेदीय यज्ञ–याग का विधान यहां भी किया गया था, परन्तु इसमें यज्ञ का सम्बन्ध अभिचार के साथ विशेष रूप से प्रतिष्ठित किया गया था। इसका उद्देश्य स्वर्ग की प्राप्ति के साथ सांसारिक अभ्युदय तथा शत्रुओं की पराजय भी था। यज्ञ एक प्रकार से माया शक्ति का आश्रय माना जाने लगा और इस माया शक्ति से सम्पन्न होने के कारण यज्ञ का नाम ही 'ब्रह्मन्' पड़ गया।

इस प्रकार अथर्व में हम यज्ञ की भावना में भी एक विकास का परिचय पाते हैं। यह विकास भौतिक रूप से मानस स्तर तक पहुंचने का सूचक है। यह प्रतीकात्मक रूप से होकर मानस विधान की कोटि में आता है, अर्थात् यहां यज्ञ के वास्तविक विधान से आगे उठ कर यजमान केवल मानसिक क्रिया के द्वारा यज्ञ का निष्पादन करता है। इस प्रकार यज्ञ की यह आध्यात्मिक भावना हमें उपनिषद् कल्पना के पास पहुंचा देती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

12. किस ब्राह्मण ग्रन्थ में अथर्ववेद की महिमा बताई गई है?

(क) शतपथ (ख) गोपथ

(ग) ऐतरेय (घ) इनमें से कोई नहीं

13. अथर्ववेद के ..... में दर्शन के गंभीर तत्व वर्णित हैं।

(क) पृथ्वी सूक्त (ख) दुन्दुभि सूक्त

(ग) ब्रह्मण्य सूक्त (घ) इनमें से कोई नहीं

1.7 वेद का काल निर्णय

कुछ इतिहासकारों की दृष्टि में, वेद स्वयंभूत और अपौरुषेय होने पर भी अनादि नहीं हैं। उनके निर्माण का भी एक निश्चित समय है। वेदों की रचना कब हुई और मन्त्र–संहिताओं का ऐतिहासिक क्रम क्या है, इस संबंध में विद्वान् एकमत नहीं हैं।

टिप्पणी

मंत्र–संहिताओं की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करने पर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला कि उनमें समानता नहीं है। ऋग्वेद की मंत्र–संहिता और अथर्ववेद के कुछ मंत्रों में एक जैसी भाषा का सर्वथा अभाव है। इतना ही नहीं, चारों मंत्र–संहिताओं में भाव और शैली की दृष्टि से भी एकता नहीं है।

होना तो यह चाहिए था कि अनादि, स्वयंभूत और अपौरुषेय होने के कारण मंत्र–संहिताओं की भाषा, शैली और भाव में भी एकरूपता रहती; किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। इस अनेकरूपता के कारण निश्चय ही मंत्र–संहिताओं का निर्माण एक समय में नहीं हुआ और इस आधार पर कहा जा सकता है कि उनके निर्माता भी अलग–अलग थे। देशी–विदेशी विद्वानों ने वेद–निर्माण की जो सीमाएं निर्धारित की हैं उन सीमाओं की अतिशय दूरी को देखकर भी विस्मय होता है। विद्वानों ने आज से बारह सौ वर्ष पूर्व से लेकर बत्तीस हजार वर्ष पूर्व तक विभिन्न तिथियों के अंतर्गत वेदों का निर्माणकाल बताया है।

● भारतीय मान्यता

वेदों के निर्माणकाल के संबंध में विद्वानों का मतभेद आज भी पूर्ववत् है। भारतीय विचारकों के विश्वासों के अनुसार अनादि और ईश्वरकृत होने के कारण वेदों को समय की सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। कुछ भारतीय विद्वानों ने इस संबंध में जो विचार व्यक्त किए हैं उनसे वेदों की तिथि लाखों वर्ष पूर्व बैठती है, जो लगभग अनादि सिद्धान्त के ही समान है।

इधर पश्चिमी विद्वानों ने वेदों को ऋषि–निर्मित पौरुषेय मानकर उनकी समय सीमा का जो निर्धारण किया है, यद्यपि उसको अन्तिम तो नहीं कहा जा सकता, तथापि उनकी मान्यताएं और विचार–पद्धति दोषपूर्ण होने पर भी सर्वथा निर्मूल एवं उपेक्षणीय नहीं हैं।

● पश्चिमी मत

मैक्समूलर पहला विदेशी था, जिसने वेदों पर विशेषतः ऋग्वेद पर और उसके निर्माणकाल को खोज निकालने के लिए जीवनपर्यंत श्रम किया। उसका निष्कर्ष है कि ई.पू. 477 में बुद्ध को निर्वाण प्राप्त हुआ। उससे पूर्व ई.पू. 600 के पहले, अर्थात् बौद्ध धर्म के उदय से पूर्व वैदिक ग्रन्थों की रचना पूर्ण हो चुकी थी। इस दृष्टि से मैक्समूलर ने संपूर्ण वैदिक साहित्य को छंदकाल, मंत्रकाल, ब्राह्मणकाल और सूत्रकाल नामक चार युगों में विभाजित किया है। उसने प्रत्येक युग के विकास के लिए दो–दो सौ वर्ष का समय दिया है। वैदिक साहित्य के सबसे अन्तिम भाग सूत्र–ग्रन्थों का निर्माणकाल मैक्समूलर ने 600–200 ई.पू. के बीच निर्धारित किया है। मैक्समूलर ने ब्राह्मणग्रंथों की कालसीमा 800–600 ई.पू. मानी। मंत्रभाग की 1000–800 ई.पू. और ऋग्वेद की प्राचीनतम ऋचाएं उसके मत से 1200–1000 ई. पूर्व के बीच रची गईं।

अपने उक्त दृष्टिकोण को मैक्समूलर ने अनुमान पर आधारित बताया है। उसका कथन है कि वेदों के निर्माण की ठीक तिथि का पता लगाना कठिन ही नहीं, अति दुष्कर

टिप्पणी

भी है। वेदों के संबंध में निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि वे विश्व–साहित्य के आदिग्रन्थ हैं और संसार में ज्ञान का अभ्युदय, वेदग्रंथों के अभ्युदय के साथ हुआ।

मैक्समूलर का यह अभिमत इतिहास एवं भाषाशास्त्र पर आधारित है और यद्यपि कोलब्रुक, विल्सन, कीथ और मैक्डॉनल प्रभृति यूरोपीय विद्वानों ने पहले–पहल इस मत को वैज्ञानिक कहकर स्वीकार किया है; किन्तु यह निर्णय उपयुक्त प्रमाणों पर आधारित नहीं है। काल–विभाजन का उसका आधार नितान्त ही त्रुटिपूर्ण है और प्रत्येक काल के विकास के लिए जो उसने दो–दो सौ वर्ष का समय दिया है, वह सर्वथा कल्पित है।

तुर्की देशों में प्राप्त हुए कुछ प्राचीन आलेखों से जो 1400 ई. पूर्व के थे, वैदिक संस्कृति और विशेषतः वैदिक देवताओं के नामों का पता लगने पर पौर्वात्य और पाश्चात्य, सभी विद्वानों ने मैक्समूलर का मत स्वीकार नहीं किया।

● के.टी. तैलंग द्वारा पश्चिमी मत का खंडन

विद्वान् न्यायाधीश स्व. श्री के.टी. तैलंग ने मैक्समूलर और प्रो. ब्लूमफील्ड प्रभृति यूरोपीय विद्वानों के मतों का खंडन किया है। उन्होंने यूरोपीय विद्वानों की इस प्रवृत्ति को, जिसके अनुसार भारतीय साहित्य की रचना एकदम आधुनिक है, नितांत ही पक्षपातपूर्ण और अवैज्ञानिक बताया है। तैलंग का कथन है कि उक्त विद्वानों ने निर्बल एवं संभावित घटनाओं के ऊपर केवल कल्पनाएं ही नहीं गढ़ीं वरन्, उन कल्पनाओं के ऊपर विचारों की एक विशाल इमारत भी खड़ी की है।

● विण्टरनित्ज़ का मत

सुप्रसिद्ध प्राच्यविद्याविशारद दूसरे जर्मन विद्वान् विंटरनित्ज ने वैदिक साहित्य के निर्माण की सीमा 2500–2000 ई. पूर्व के बीच निर्धारित की है; किन्तु उन्होंने अपने इस अभिमत के प्रति सन्देह प्रकट करते हुए कहा कि वेदों का निर्माणकाल 2500–2000 ई. पूर्व में मानने पर एक बड़ी आपत्ति सामने यह उपस्थित होती है कि उनकी भाषा उन पुराने फारसी शिलालेखों से मिलती–जुलती है, जो शिलालेख लगभग छठी शताब्दी ई. पूर्व के हैं।

● याकोबी का मत

तीसरे इतिहासज्ञ और ज्योतिर्विद जर्मन विद्वान् याकोबी ने अपने नये अनुसंधानों के आधार पर वेदों की निर्माण–तिथि के सम्बन्ध में अपना नया दृष्टिकोण प्रकट किया है। उन्होंने कल्पसूत्र के विवाह प्रकरण में उल्लिखित 'ध्रुव इव स्थिरा भव' वाक्य के 'ध्रुव' शब्द की ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर गणना करके पता लगाया कि ध्रुवतारे की, तेजस्वी स्थिति लगभग 2700 ई. पूर्व की है और इस आधार पर याकोबी ने कल्पसूत्रों का आरंभ आज से लगभग 470 वर्ष पूर्व निर्धारित किया है। कल्पसूत्रों के सम्यक् शोध और ग्रह–मंडल के अध्ययन द्वारा याकोबी ने वेदों का निर्माण आज से 6500 वर्ष पूर्व निर्धारित किया है।

टिप्पणी

• लोकमान्य तिलक का निर्णय

भारतीय विद्वानों में लोकमान्य तिलक प्रथम विद्वान् हैं, जिन्होंने वैदिक साहित्य पर वर्षों खोज करके भारतीय दृष्टि से उनका गंभीरता से विश्लेषण किया। वेदों की निर्माण–तिथि को खोज निकालने के लिए लोकमान्य तिलक का आधार याकोबी के आधार की भांति ज्योतिर्विज्ञान ही है। लोकमान्य ने नक्षत्र–गति के अध्ययन से स्थित किया कि ब्राह्मण–ग्रंथों का निर्माण आज से लगभग 4500 वर्ष पूर्व संपन्न हो चुका था। उन्होंने प्रामाणिक आधारों पर सिद्ध किया कि जिस समय कृत्तिका नक्षत्र सब नक्षत्रों में प्रमुख था और इसके आधार पर दूसरे नक्षत्रों की गति–विधि एवं दिन–रात की गणना का पता लगाया जाता था, वह समय खगोलविद्या तथा ज्योतिष के आधार पर आज से लगभग 4500 वर्ष प्राचीन बैठता है।

लोकमान्य तिलक के मतानुसार कृत्तिका नक्षत्र के आधार पर जिस प्रकार ब्राह्मण–ग्रंथों का निर्माणयुग निश्चित है, उसी प्रकार मंत्र–संहिताओं के रचना–काल को उन्होंने मृग–शिरा नक्षत्र के आधार पर निर्धारित किया है। तिलक के अनुसार मंत्र–संहिताओं के युग में मृगशिरा नक्षत्र से रात–दिन का समानान्तर समय स्थिर किया जाता था। खगोल और ज्योतिष की गणना के हिसाब से मृगशिरा नक्षत्र की उक्त स्थिति का योग आज से लगभग 6500 वर्ष पूर्व बैठता है। तिलक के मतानुसार आज से 6500 वर्ष पूर्व का समय ही मंत्र–संहिताओं का निर्माणकाल था। मंत्र–संहिताओं के निर्माण से पूर्व यदि 2000 वर्ष की अवधि को संपूर्ण वेदमंत्रों की रचना के लिए रखा जाए तब भी लोकमान्य तिलक के मतानुसार कुछ वैदिक मंत्रों का निर्माण आज से 8500 वर्ष पूर्व अवश्य हो चुका था। जिन प्राचीन ऋचाओं, कवियों या देवताओं का नाम ऋग्वेद में उल्लिखित है, उन्हें अतीतकालीन समझना चाहिए अर्थात् वे पुरातन काल से परंपरापूर्वक अब तक हस्तांतरित होते आए हैं। उन्हें पूर्व–हिमयुग का ही समझना चाहिए।

वैदिक काल की पूर्व मर्यादा के सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक ने जो सीमा बांधी थी, पश्चिमीय विद्वानों ने भी पीछे चलकर उसी पर विश्वास किया और लोकमान्य के मत को मान्यता प्रदान की

• बालकृष्ण दीक्षित का अन्वेषण

गणित द्वारा निश्चित वैदिक काल की मर्यादा के संबंध में एक सुविचारित मत स्व. श्री बालकृष्ण दीक्षित का है। दीक्षित जी इस शती के महान् पण्डित थे और उनके तर्कों एवं उनके निष्कर्षों को लोकमान्य ने बड़े सम्मान के साथ याद किया है। दीक्षित जी के मतानुसार वेदकाल की मर्यादा के संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि यह शकपूर्व 6000 वर्ष से नवीनतर नहीं है। शकपूर्व 6000 वर्ष–पूर्व वेदमन्त्र किस समय प्रकट हुए, यह कोई नहीं बता सकता। इस प्रकार वह काल अनादि है। वैदिक काल की उत्तर अवधि शकपूर्व लगभग 1500 वर्ष है। इसके बाद वेदांग काल का आरम्भ होता है। कुछ उपनिषद् वेदांगकाल में भी बने होंगे; पर वैदिक काल की उत्तर सीमा उपर्युक्त

टिप्पणी

ही है। ऋक् संहिता के कुछ भाग का रचनाकाल शकपूर्व 4000 वर्ष है। तैत्तिरीय संहिता के कुछ भाग का रचनाकाल शकपूर्व 3000 वर्ष है। ब्राह्मणग्रंथ शकपूर्व 3000 से 1500 पर्यन्त बने हैं। उनके जिन भागों में चैत्रादि संज्ञाएं हैं, वे शकपूर्व 2000 के बाद की और शेष उससे पहले की हैं। उपनिषदों के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता, परन्तु बहुत–से उपनिषद् ग्रन्थ शकपूर्व 2000 और 1500 के मध्य के हैं। संहिताओं और ब्राह्मणों के सब मंत्र एकत्र होकर आज जिस रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उनकी वैसी पूर्ण रचना उपर्युक्त काल में नहीं हुई होगी, तथापि उनका यह स्वरूप शकपूर्व 1500 से प्राचीन है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार ने पश्चिमीय विद्वान् विन्सेंट स्मिथ के 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' और रैप्सन महोदय के 'ऐंश्यिऐंट इण्डिया' नामक दो इतिहास–ग्रन्थों का परिशीलन करके प्राचीन भारत का युगविभाजन दो प्रकार से किया है– राजनीतिक दृष्टि से और साहित्यिक दृष्टि से।

राजनीतिक दृष्टि से उन्होंने भारत का काल–विभाजन कृत–युग, त्रेता और द्वापर के आधार पर किया है। उन्होंने इक्ष्वाकु से पाण्डवों के समय तक 14 पीढ़ियों की गणना की है और पार्जिस्टर महोदय की 15 पीढ़ियों की गणना का भी समर्थन किया है। अनुश्रुति को प्रामाणिक मानकर उन्होंने 1 से 40 पीढ़ी तक कृत–युग की सीमा, 41 से 65 पीढ़ी तक त्रेता–युग की सीमा और 66 से 15 पीढ़ी तक द्वापर–युग की सीमा रखी है। उन्होंने राजा सगर के साथ कृतयुग की समाप्ति, राजा रामचन्द्र के साथ त्रेता युग का अंत और महाभारत युद्ध के बाद कृष्ण के देहावसान के साथ द्वापर समाप्ति मानी है। उन्होंने प्रत्येक पीढ़ी की आयु–सीमा सोलह सौ वर्ष अनुमानित की है और इस प्रकार कृत–युग की पूरी आयु साढ़े छः सौ वर्ष, त्रेता युग की चार–सौ वर्ष और द्वापर युग की पौने पांच–सौ वर्ष के हिसाब से तीनों युगों की अनुमानित सम्मिलित अवधि 1520 वर्ष निश्चित की है। 1420 ई. पूर्व महाभारत युद्ध का निर्धारण करते हुए भारतीय इतिहास का अभ्युदय उन्होंने 2944 या 2950 ई. पूर्व में बैठाया है। उनका कथन है कि 'मेरे अन्दाज़ से 2940 से 2300 ई पूर्व तक कृतयुग, 2300 से 1900 ई. पूर्व तक त्रेता और 1900 से 1425 ई. पूर्व तक द्वापर रहा।'

साहित्यिक दृष्टि से उन्होंने भारतीय इतिहास को प्राग्वैदिक–युग, ऋचा–युग और संहिता–युग में विभाजित किया है। साहित्यिक विकास की तिथियों को उक्त राजनीतिक युग के हिसाब से स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि 'इस प्रकार जिन 95 पीढ़ियों का वृत्तान्त हमने बताया है, उनमें से पहली उन्तीस पीढ़ियों का समय लगभग 2950–2775 ई. पूर्व प्राग्वैदिक–युग; 30वीं से 73वीं पीढ़ी तक का समय लगभग 2495–2775 ई. पूर्व प्रथम वैदिक या ऋचा–युग और 74वीं से 95वीं पीढ़ी तक का समय लगभग 1775–1455 ई. पूर्व, अपर वैदिक या संहिता–युग है। प्राग्वैदिक–युग पौने पांच सौ वर्ष रहा है, ऋचा–युग सात सौ और संहिता–युग साढ़े तीन सौ वर्ष। पूरा वैदिक–युग एक हज़ार वर्ष जारी रहा।'

वेदों की रचना किसने की, यह प्रश्न आज भी अधूरा है। देशी–विदेशी विद्वानों के द्वारा बहुत खोज–बीन रखने पर भी अंतिम निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकला। संप्रति इस

टिप्पणी

संबंध में दो मत हैं। एक मत वेदों को ईश्वरकृत, अनादि और अपौरुषेय बताता है, ऋषियों ने उनका दर्शन भर किया, रचा नहीं। दूसरा मत वेदों को ऋषिकृत कहता है। ऋषि और मुनि में भेद है। मंत्रद्रष्टा या मंत्रकर्ता ऋषि कहलाते हैं। मुनिजन मंत्रद्रष्टा मंत्रकर्ता नहीं थे, किन्तु उच्चकोटि के विद्वान्, विचारवान् और प्रतिभावान् थे।

वेदों के बाद रचे गए ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, कल्पसूत्र, दर्शन और धर्मशास्त्र सभी ने एकमत से दुहराया है कि वेद नित्य हैं अर्थात् सृष्टि से पूर्व भी वे विद्यमान थे। वेद अनादि हैं, अर्थात् उनकी कोई जन्मतिथि नहीं है। वेद अपौरुषेय है, अर्थात् उनका रचने वाला कोई पुरुष नहीं है। इस दृष्टि से विदित होता है कि वेद स्वयंभूत, स्वयंप्रकाश और स्वयंप्रमाण हैं।

वेदों की नित्यता और अपौरुषेयता के संबंध में 'मनुस्मृति' के प्रामाणिक टीकाकार कुल्क भट्ट का कथन है कि प्रलयकाल में वेद विनष्ट नहीं हुए थे। वे परमात्मा में अवस्थित थे– **'प्रलयकालेऽपि परमात्मनि वेदराशिः स्थितः।'** वेदों की अनादि–अनंत सत्ता के समर्थन में आचार्य शंकर ने अपने भाष्य–ग्रन्थों में अनेक शास्त्रीय प्रमाण उपस्थित किए हैं।

परमात्मा की सत्ता में अविश्वास करने वाले सांख्य दर्शनकारों ने भी वेदों के अस्तित्व को स्वीकार किया है। वेदों को उन्होंने भी स्वयंभूत, स्वयंप्रमाण और अपौरुषेय, अनादि एवं नित्य कहकर अभिहित किया है।

ब्राह्मण–ग्रन्थों से लेकर उपनिषद्–ग्रन्थों तक जितना भी वैदिक साहित्य है, सभी में वेदों को नित्य, अनादि और अपौरुषेय कहा गया है। ऋषियों को वेदमंत्रों का प्रथम द्रष्टा कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण की एक ऋचा 'तान् होवाच कादृक्यः' का भाष्य करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है – 'अतींद्रिय अर्थ को देखने वाले ऋषि को मंत्रकृत कहते हैं। वहां 'करोति' 'धातु' का अर्थ देखना है, न कि करना।

वैदिक संहिताओं में वेद शब्द दो प्रकार के पाए जाते हैं–अन्तोदात्त एवं आद्युदात्त। अन्तोदात्त 'वेद' शब्द 'विद्लृ' लाभे' धातु से निष्पन्न है। इसका अर्थ 'धन' है। आद्युदात्त वेद शब्द 'विद्' ज्ञाने' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ ज्ञान है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में प्राचीनतम ग्रंथ के रूप में वेदों की प्रतिष्ठा विश्वविदित है। वेद सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत है। इसे ही आधार बनाकर परवर्ती काल में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। सम्पूर्ण विश्व में ज्ञानालोक प्रसारित करके वेद विश्व के प्रत्येक देश को ज्ञान से आलोकित कर रहे हैं। वेदों के गम्भीर अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्व के सभी प्रकार के ज्ञान का मूलस्रोत वेदों में निहित है।

भारतीय परम्परानुसार 'वेद' शब्द किसी एक ग्रन्थ का वाचक न होकर सम्पूर्ण अलौकिक ज्ञान का वाचक है। आनन्दतीर्थ ने अपने 'विष्णुतत्त्वनिर्णय' में 'वेद' शब्द की व्युत्पत्ति प्रदर्शित करने वाला अधोलिखित सन्दर्भ उद्धृत किया है –

नेन्द्रियाणि नानुमानं वेदा ह्येवैनं वेदयन्ति।
तस्मादाहुर्वेदा इति पिप्पलादश्रुतिः।।

टिप्पणी

अर्थात् जिस तथ्य को इन्द्रियों से तथा अनुमान प्रमाण से नहीं जाना जा सकता, उसे वेद ही बता सकते हैं। इसीलिए इसे वेद कहते हैं। ऐसा पिप्पलादश्रुति भी कहती है। क्षीरस्वामी ने अमरकोश की टीका में कहा है – **'विदन्त्वनेन धर्मं वेदः'** अर्थात् जिसके द्वारा धर्म को जानते हैं, वह वेद है। 'सत्याषाढ श्रौतसूत्र' तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र' में कहा गया है–**'शब्दार्थारम्भमाणानां तु कर्मणां समाम्नायसमाप्तैः वेदशब्दः'**, अर्थात् शब्दार्थ (शब्दप्रमाण) के द्वारा प्रारम्भ किये जाने वाले कर्मों का तथा उनकी समाप्ति का जिसके द्वारा उपदेश होता है, उसके लिए वेद शब्द प्रयुक्त किया जाता है।

वेद की प्रशंसा करते हुए मनु ने कहा है कि –

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थात् वेद एवं शास्त्रों के तत्त्व को जानने वाला व्यक्ति जिस किसी भी आश्रम में निवास करता हुआ अपने धर्म का पालन करता है, वह इसी लोक में रहता हुआ भी ब्रह्मसाक्षात्कार का भागी बनता है। वेदों के अध्ययन को जब हमारे महर्षियों ने इतना अधिक महत्त्व प्रदान किया है, तब वेदाध्ययन ब्राह्मण का आवश्यक एवं अनिवार्य कर्म होना चाहिए। इसीलिए महाभाष्यकार पतंजलि ने '**ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मो षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च**' लिखकर ब्राह्मण के लिए वेदाध्ययन की अनिवार्यता प्रतिपादित की है। मनु ने तो स्पष्ट शब्दों में उद्घोषणा की है कि जो द्विज वेदों का अध्ययन न करके अन्यत्र श्रम करता है, वह जीवित रहता हुआ भी अपने सम्पूर्ण वंशजों सहित शूद्र हो जाता है –

योऽनधीत्य द्विजो वेदान् अन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।। **(मनु०–2/168)**

धार्मिकता की दृष्टि से वेदों का सर्वाधिक महत्त्व है। वेदों के अध्ययन से ही हम अपने पूर्वजों की जीवनप्रणाली के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हमारे पूर्वज किन देवताओं की उपासना करते थे, किस प्रकार परमसत्ता को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ–यागादि किया करते थे, इन सभी तथ्यों का सम्यक् ज्ञान वेदों के अनुशीलन से ही हो सकता है। सभी भारतीय दर्शनों का मूलस्रोत वेदों में उपनिबद्ध है। उपनिषद्–साहित्य का प्राण है; जो सदैव परब्रह्म के विवेचन को ही अपना विवेच्य बनाकर संसार का उपकार कर रहा है। शंकर का अद्वैत, रामानुज का विशिष्टाद्वैत, निम्बार्क का द्वैताद्वैत, मध्वाचार्य का द्वैत, वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत एवं चैतन्य महाप्रभु का अचिन्त्यभेदाभेद आदि मतमतान्तरों के मूलस्रोत हमारे उपनिषद् ग्रन्थ ही हैं।

भाषा–विज्ञान की दृष्टि से वेदों का अध्ययन अपना अप्रतिम महत्त्व रखता है। उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल से भाषा–विज्ञान की प्रतिष्ठा के मूल में वैदिकभाषा का ही विशेष योगदान सर्वोपरि स्वीकार किया जा चुका है। उसके पूर्व यूरोपीय भाषाशास्त्रियों ने अज्ञानवश ग्रीक एवं लैटिन भाषा को मूल भाषा के रूप में स्वीकार

टिप्पणी

करने के कारण आपसी मतभेद को जन्म दे दिया था। ईसाइयों ने दुराग्रहपूर्वक हिब्रू (यहूदी) भाषा को ही मूलभाषा के रूप में स्वीकार किया था, किन्तु जब यूरोपीय विद्वानों का परिचय भारत से, विशेषकर संस्कृत भाषा से हुआ, तब उन सबका आपसी मतभेद समाप्त हो गया। सभी विद्वानों ने एकमत से संस्कृत (वैदिक) को सभी भारोपीय भाषाओं के मूलरूप में स्वीकार किया। इस प्रकार भाषा–विज्ञान के सफल एवं क्रमबद्ध अध्ययन के लिए वैदिक साहित्य का अनुशीलन नितान्त आवश्यक है।

इस प्रकार यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि वेद विश्वज्ञान के भण्डार हैं, मानव सभ्यता के दर्पण हैं एवं भारतीयों के परमपूज्य ग्रन्थरत्न हैं। इसीलिए इन्हें 'वेद भगवान्' की संज्ञा प्राप्त हुई है। इनके महत्व का जितना वर्णन किया जाए उतना ही कम है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

14. वेदों को 6500 पूर्व निर्मित किस विदेशी विद्वान् ने माना?

    (क) विंटरनित्ज़ (ख) याकोबी

    (ग) व्हिटनी (घ) कैलेंड

15. मैक्समूलर ने ऋग्वेदादि चारों वेद का समय ..... ई. पूर्व माना है।

    (क) 477 (ख) 600

    (ग) 1000 (घ) इनमें से कोई नहीं

1.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (घ)
4. (क)
5. (ख)
6. (ग)
7. (ख)
8. (ख)
9. (ख)
10. (घ)
11. (ग)
12. (ख)

13. (ग)
14. (ख)
15. (ख)

टिप्पणी

1.9 सारांश

'वेद' शब्द वैदिक युगीन ऋक्, यजुर्वेद, साम तथा अथर्व इन चार संहिताओं से ही जाना जाता है। जबकि वेद शब्द का अर्थ 'ज्ञान' है और ज्ञान प्रत्येक विषय तथा शास्त्र से अभिहित है। परंतु कालक्रम के अनुसार वेद शब्द समस्त शास्त्रों का प्रथम उन्मेष होने पर भी ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ही सूचक रह गया है। वेद शब्द विद् धातु से घञ् प्रत्यय लगने से निष्पन्न होता है। वेद शब्द श्रुति, आम्नाय, त्रयी, छन्दस् स्वाध्याय, आगम तथा निगम इन छः शब्दों से भी अभिहित है। वेद शब्द के मुख्यतः चार विभाग हैं– 1. संहिता, 2. ब्राह्मण, 3. आरण्यक, 4. उपनिषद्। वर्णों की आत्यन्तिक सन्निकटता की संज्ञा संहिता कहलाती है। संहितागत मंत्रों के व्याख्यापरक ग्रंथ ब्राह्मण कहलाते हैं। जिन ग्रंथों का प्रणयन विशेष रूप से अरण्य में पढ़ने जाने के लिए किया गया था वे आरण्यक कहलाये। उपनिषद् ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक ग्रंथ हैं। उपनिषद्–साहित्य भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक चिन्तन का चरम निदर्शन है।

वेदों की रचना किसी एक ऋषि ने नहीं की, इसलिए इनको अपौरुषेय कहा जाता है। वेदों का दर्शन करने वाले ऋषि ही मंत्रद्रष्टा हैं। ऋषियों के मन में अभीष्ट की सिद्धि के लिए एवं अनिष्ट के निवारण के लिए प्रार्थनाओं की स्फुरणा किसी न किसी दैवी शक्ति के रूप से हुई, अतः वे प्रार्थनाएं ऋषि दृष्ट हुईं।

'ऋग्वेद संहिता' वैदिक साहित्य का प्रथम ग्रंथ है। छन्दोबद्ध या पद्यात्मक मन्त्रों को 'ऋक्' कहते हैं। इस वेद के मंत्र देवताओं के प्रति स्तुतिपरक हैं। इस वेद के देवताओं के कार्य दैवीय रूप हैं। 'यजुष् वेद क्रम में दूसरा वेद है। यजुष् का अर्थ 'पूजा एवं यज्ञ' है। यह गद्यात्मक मंत्रों से युक्त है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड प्रधान ग्रंथ है। इसमें देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञों का विधान किया जाता है। 'सामवेद' संहिता का क्रम तीसरा है। इस वेद में संगीत विद्या को सर्वाधिक सुखकर एवं आनन्ददायक विद्या माना गया है। वेद क्रम में अथर्ववेद के पश्चात् इसी वेद की महत्ता सिद्ध होती है। इस वेद के देवताओं का सम्बन्ध दैवीय तो है ही परन्तु उनका मानवीकरण भी किया जाता है। उनको कार्यों के अनुरूप प्रेरित किया गया है। विषयों की विविधता के कारण ही इसको मौलिक वेद के नाम से अभिहित किया गया है। ऋग्वेद का ऋत्विक् होता, यजुर्वेद का अध्वर्यु, सामवेद का उद्गाता तथा अथर्ववेद का ब्रह्मा कहलाता है। यज्ञ के संपादन में इन चारों का होना आवश्यक होता है। ऋग्वेद में आधिदैविक तथा आध्यात्मिक विषयक मंत्रों का समुच्चय है, तो अथर्ववेद में आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक मंत्रों का प्रशंसनीय संग्रह है। काव्य की दृष्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पूरक माना जा सकता है।

टिप्पणी

वेद के काल निर्णय में अनेक मतभेद हैं। भारतीय तथा पाश्चात्त्य विद्वानों ने ऐतिहासिक, भाषा–शास्त्रीय, ज्योतिष, गणितीय आदि अनेक प्रकार से इसके काल निर्णय पर विचार किए हैं। इनमें लोकमान्य तिलक का वेद काल निर्णय मान्य है।

वेद अपौरुषेय ज्ञान के प्रतीक हैं। ऋषियों के द्वारा दर्शन होने के कारण उनका अनादित्व, शाश्वत होना स्वतः सिद्ध है। ईश्वर कृत होने से ये अपौरुषेय हैं। संस्कृत साहित्य के इतिहास में वेदों की प्रतिष्ठा विश्वविदित है। परवर्ती होते हुए आज भी ये सम्पूर्ण विश्व में ज्ञानालोक को प्रसारित किए हुए हैं।

1.10 मुख्य शब्दावली

- **परवर्ती** – बाद के समय का/के
- **अध्येता** – अध्ययन करने वाला
- **आम्नाय** – अभ्यास द्वारा कथ्य
- **निष्पन्न** – सिद्ध
- **निष्कर्षतः** – परिणामस्वरूप
- **अपौरुषेय** – ईश्वर से स्वतः उत्पन्न
- **सूक्त** – वेदों के मंत्र समूह की इकाई
- **विद्ध** – बींधा गया
- **भेषज्य** – चिकित्सा से संबंधित
- **परमाधिगन्तव्य** – सर्वोच्च प्रापणीय
- **भावसौष्ठव** – भावसौन्दर्य
- **प्रातिमचक्षु** – साक्षात् देखने वाला
- **अधिष्ठान** – आधार
- **खगोल विद्या** – ग्रह नक्षत्रों का ज्ञान

1.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

   ऋग्वेद, अथर्ववेद, वेद का महत्त्व, वेद के विभाग

2. साम से क्या तात्पर्य है। सामवेद की कितनी शाखाएं हैं बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. वेद काल के निर्णय पर प्रकाश डालिए।
2. वेद अपौरुषेय ज्ञान के प्रतीक हैं सिद्ध कीजिए।

3. विषय–वस्तु की दृष्टि से ऋग्वेद के पश्चात् अथर्ववेद ही ऐसा वेद है जो उसका पूरक है स्पष्ट कीजिए।

1.12 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

1. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, *वैदिक साहित्य और संस्कृति,* रत्ना ऑफसैट लिमिटेड, कामाच्छा, वाराणसी।
2. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, *वैदिक साहित्य का इतिहास,* मोतीलाल बनारसीदास, बनारस।
3. गैरोला वाचस्पति, *संस्कृत साहित्य का इतिहास,* चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
4. यास्क, *निरुक्त* (अनुवादक एवं व्याख्याकार कपिलदेव द्विवेदी), साहित्य भंडार मेरठ।
5. श्री अरविन्द, *वेद रहस्य,* अरविन्द सोसाइटी पांडिचेरी।
6. महर्षि दयानन्द सरस्वती, *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका,* राधा प्रेस कैलाश नगर, दिल्ली।
7. उपाध्याय, पं. गंगाप्रसाद, *सायण और दयानन्द,* सुखसागर प्रिन्टर्स, कुरुक्षेत्र।
8. डॉ. मिश्र, महेन्द्र कुमार, *संस्कृत साहित्य में खगोल भौतिकी की अवधारणाएं,* अलीगढ़ लेजर ग्राफिक्स, अलीगढ़।

टिप्पणी

इकाई 2 ऋग्वेदीय अग्निसूक्त, यजुर्वेदीय शिवसंकल्पसूक्त व अथर्ववेदीय विजयसूक्त

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 ऋग्वेदीय अग्निसूक्तम्
  2.2.1 अग्निसूक्तम् का परिचय
  2.2.2 मन्त्र एवं अर्थ
2.3 यजुर्वेदीय शिवसंकल्पसूक्तम् मन्त्र व अर्थ
  2.3.1 शिवसंकल्पसूक्तम् का परिचय
  2.3.2 मन्त्र एवं अर्थ
2.4 विजयसूक्तम् मन्त्र व अर्थ
  2.4.1 विजयसूक्तम् का परिचय
  2.4.2 मन्त्र एवं अर्थ
2.5 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

यह सर्वविदित तथ्य है कि 'ऋग्वेद' संसार का सर्वप्रथम ग्रन्थ है। आर्य संस्कृति की समस्त मान्यताओं का आधार वैदिक वाङ्मय ही माना गया है। भारतीय संस्कृति व धार्मिक मान्यताओं के अनुसार वैदिक मन्त्रों का उद्भव मनुष्य की रचना न होकर ईश्वरीय रचना के रूप में हुआ है। तथापि इन मंत्रों की प्राप्ति चमत्कार के रूप में नहीं है। प्रत्येक मन्त्र का द्रष्टा ऋषि ही तत्तत् मन्त्र का प्राप्ति स्रोत है। 'यस्य निःश्वसितम् वेदाः' के अनुसार यद्यपि वेद मन्त्र ईश्वर का निःश्वास हैं तथापि इनकी प्राप्ति तपःपूत ऋषियों के माध्यम से हुई है। समय-समय पर वेद मन्त्रों की प्राप्ति एवं लोप की घटनाएं भी परिवर्तनशील जगत् में होती रही हैं। इनकी रक्षा व उद्धार के लिए भगवान् विष्णु के अवतारों का वर्णन भी महर्षि वेदव्यास ने विभिन्न पुराणों में किया है। अतएव कहा गया है-

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

इन सब तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए वैदिक वाङ्मय के कुछ सूक्त-विशेष का अध्ययन प्रस्तुत इकाई में समाहित हुआ है। सर्वप्रथम ऋग्वेदीय अग्निसूक्त के मन्त्रों की अर्थ सहित प्रस्तुति और इसके बाद इस इकाई में क्रमशः यजुर्वेदीय शिवसंकल्पसूक्त व अथर्ववेदीय विजयसूक्त को सार्थ प्रस्तुत किया गया है।

टिप्पणी

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- ऋग्वेदीय अग्निसूक्त के मन्त्र एवं मन्त्रार्थों से अग्नि देवता के स्वरूप एवं महत्व से परिचित हो पाएंगे;
- यजुर्वेदीय शिवसंकल्पसूक्त के अध्ययन से मनोदेवता के स्वरूप, प्रकृति एवं सामर्थ्य का अभिज्ञान कर पाएंगे;
- अथर्ववेदीय विजयसूक्त के मन्त्रों से विजय प्राप्ति के सकारात्मक भाव की प्राप्ति के तात्पर्य एवं पुरुषार्थ की प्रेरणा को समझ पाएंगे।

2.2 ऋग्वेदीय अग्निसूक्तम्

ऋग्वेदीय अग्निसूक्त के मंत्रों एवं उनके अर्थ के विवेचन से पूर्व इसकी परिचयात्मक पृष्ठभूमि से अवगत हो लेना समीचीन होगा।

2.2.1 अग्निसूक्तम् का परिचय

ऋग्वेद के प्रथम मंडल का प्रथम सूक्त है, 'अग्निसूक्तम्'। सबसे अग्रणी वेद के आदि सूक्त के रूप में अग्निसूक्त की उपस्थिति ही 'अग्नि' देवता के महत्व को प्रतिपादित करती है। 'अग्नि' देवता के अभाव में अन्य देवताओं को उनका दृविभाग प्राप्त होना संभव नहीं है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसे केवल द्यूतक्रीड़ा से संबंधित करके देखा है इसलिए इसके मंत्रों का **चाल्स रॉकवैल लैन्मैन** के द्वारा अर्थ भी मन्त्रों के साथ निबद्ध किया गया है।

सम्भवतया इसीलिए अन्यान्य देवों को अग्नि बताया गया है। यथा- **अग्निर्वै रुद्रः** (श. ब्रा.-5.3.10) **अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः** (ऋ. -1.164.46) **अग्निर्वै सर्वा देवता** (ऐ. ब्रा.-6.3 तथा श. ब्रा.-1.60.20) यास्काचार्य ने भी अग्नि को एकमात्र देवता माना है- **'इममेवावग्निं महान्तमेकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्ति'।** ऋग्वेद के सभी मण्डलों के आदि में अग्निसूक्तों के अस्तित्व से इस देव की प्रमुखता प्रकट होती है। संभवतः अग्नि के अत्यधिक दैनिक उपयोग के कारण और इसकी विध्वंसक शक्ति से भयभीत होकर ही वैदिक मनीषियों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

कतिपय विद्वानों ने अग्नि को अग्-अङ्ग (जाना, गतिशील होना, प्रमुख होना) धातु से भी निष्पन्न माना है। पाश्चात्य विद्वान् मैक्डॉनल ने इसे अञ् (गतौ) से व्युत्पन्न माना है, क्योंकि यह देवताओं तक हवि को ले जाता है। ऋग्वेद के 5.8.6 में स्पष्ट कहा गया है कि देवताओं ने अग्नि को दूत बनाया- 'देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम्'।

किन्तु निरुक्त पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि यास्काचार्य ने अग्नि की निम्न निरुक्तियां प्रस्तुत की हैं-

टिप्पणी

अङ्गं नयति सन्नमानः– प्रत्येक पदार्थ की ओर प्रवृत्त होता हुआ उसके शरीर को ले लेता है।

अक्नोपनो भवति इति- सबको सुखा देता है।

अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते- यज्ञों में सबसे पहले स्थापित किया जाता है।

अग्रणीर्भवति- जो सबका नेता है।

अग्नि की प्रमुख क्रियाएं वनों का भक्षण करना, अन्धकार को ध्वस्त करना, देवताओं को भी यज्ञ में लाना व वहन करना है। यह देवताओं और मनुष्यों के बीच दौत्यकर्म सम्पादित करता है- **''अग्निर्वै देवानां होता''।**

घी से अग्नि का घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः उसे घृतमुख, घृतचक्षु, घृतपृष्ठ, घृतकेश व घृतलोम नामों से भी अभिहित किया जाता है। इसी प्रकार 'इन्द्र' से भी अग्नि का सम्बन्ध युग्म भाई के रूप में स्वीकृत किया गया है, क्योंकि अग्नि और इन्द्र (जल) जीवन की दो मौलिक आवश्यकताएं हैं। इन दो देवताओं को सब देवताओं का प्रतिनिधि देवता माना गया है **''इन्द्राग्नी वै सर्वा देवाः।''** इन्द्र के प्रमुख सहायक व मित्र होने के कारण मरुत् अग्नि के भी परममित्र बन गए। सोम के साथ अग्नि का सम्बन्ध उल्लेखनीय है। ऋग्वेद 5.44.15 में सोम अग्नि के पास जाकर अपना सख्य प्रकट करता है- रुद्र को तो अग्नि ही कहा गया है- **'यो वै रुद्रः सोऽग्निः'** (श. ब्रा. 5.2.4.13)

अग्नि के विषय में आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक त्रिविध अर्थ किए जाते हैं।

आधिभौतिक दृष्टि से अग्नि परम तेजस्वी एवं नेतृत्व गुणों से समन्वित शक्तिशाली राजा का व ब्राह्मण गुणों से युक्त पुरोहित का प्रतीक है। आधिदैविक पक्ष में अग्नि देवता है तथा आध्यात्मिक दृष्टि से मनुष्य की सदसद् विवेकसमन्वित देदीप्यमान सङ्कल्प शक्ति ही अग्नि के रूप में प्रकाशित होती है-

"That flame of Agni is the seven tongued power of the will, a force of God instinct with knowlege (Hymns of the mystic fire, Introduction, Page XXXI)".

इसी पक्ष में वासुदेव शरण अग्रवाल ने अग्नि को मन, प्राण या प्राणियों के भीतर विद्यमान अमर आत्मतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। यही आत्मतत्त्व अथवा शरीर को उष्ण रखने वाला प्राणतत्त्व रुद्र है और यही सोम का अर्थात् अन्न का भक्षण करके जीवन्त रहता है तथा शरीर को जीवित व गतिशील बनाता है। इसे ही परम तत्त्व भी माना गया है। वस्तुतः सभी वैदिक देव परम तत्त्व के प्रतिरूप हैं, जैसा कि मनु की निम्नलिखित उक्ति से सुस्पष्ट है-

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥

अग्नि को 'द्विमात्र' (दो मात्राओं वाली) कहा गया है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति दो समिधाओं के घर्षण से है। कहीं-कहीं इसे तीन मात्राओं वाली (त्र्यम्बक) भी कहा गया

टिप्पणी

है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये मात्राएं द्यु, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी हैं, क्योंकि द्युलोक में यह सूर्य रूप में, अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में तथा पृथ्वी पर वनस्पति रूप में अवस्थित है, परन्तु तार्किक दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि अरणियों के घर्षण से उत्पन्न जो चिंगारी सूखे पत्तों या तिनकों पर गिरकर अग्नि उत्पत्र करती है, उसे भी इसकी मात्रा के रूप में मानकर इसे 'त्र्यम्बक' कह दिया गया। दस अंगुलियों द्वारा प्रज्वलित किए जाने के कारण इसे दस युवतियों की सन्तान भी कहा गया है। अरणियों के घर्षण में बल की आवश्यकता होती है, अतः इसे बल की भी संतान कहा गया है।

अग्नि को सप्तजिह्व भी कहा गया है (ऋग्वेद-3.6.2), ये जिह्वाएं अग्नि की सात प्रकार की लपटों की सूचक हैं। मुण्डकोपनिषद में भी स्पष्ट कहा गया है-

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च धूम्रवर्णा।
स्फुल्लिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः॥

अपने तेज जबड़ों द्वारा वनों का भक्षण करने के कारण अग्नि को 'तीक्ष्ण दंष्ट्र' प्रकाशयुक्त लाल ज्वालाओं से सम्पन्न होने के कारण 'शुचिदन्' और रुक्मदन्त, सांय-सांय करती हुई लपटों के कारण रम्भाता हुआ बैल, तीव्रगति वाली होने के कारण श्येन व गरुड़, धुएं रूपी स्तम्भ के कारण 'धूम्रकेतुः व उषाकाल में प्रज्वलित किए जाने के कारण 'उषबंधु' भी कहा गया है।

वस्तुतः अग्नि की लपटें ही उसके रथ हैं। अतः उस रथ का प्रदीप्त, उज्जवल, प्रकाशमान और स्वर्णिम होना स्वाभाविक ही है। दैनिक कार्यों में इसका प्रयोग किए जाने के कारण इसे 'गृहपति' वरेण्य अतिथि, माता, पिता, पुत्र, भ्राता व मनुष्य की मित्र भी कहा गया है। अग्नि को यज्ञकेतु, (यज्ञ की सूचक), सत्य (यजमानों को उनके यज्ञ का फल अवश्य देने वाली), अङ्गिरः (अङ्गारों से युक्त) राजा, गोपा (रक्षक), पुरोहित, ऋत्विक, दाता, कविक्रतुः (क्रान्तदर्शी), चित्रश्रवस्तमः (विविध कीर्ति वालों में श्रेष्ठ) वैश्वानर (सबका हित सम्पादित करने वाला) तथा रत्नधातमम् (श्रेष्ठ रत्नों को धारण करने वाला) आदि विशेषणों से मण्डित किया गया है। यह अपने यजमानों की कामनाओं की पूर्ति करने में अपूर्व सहयोग प्रदान करती है।

वस्तुतः अग्नि यज्ञकर्ता की सतत उपकारक तथा कल्याणकर्ता है। वह अपने यजमानों को सुख-समृद्धि, यश, अभ्युदय एवं वीर पुत्र आदि प्रदान कर उनका अभीष्ट सम्पादित करती है। यह उत्तमोत्तम पदार्थों की प्रदाता है। जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के हित को केन्द्र में रखता हुआ उसके श्रेय के निमित्त कार्यों में प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार अग्नि भी यजमान की हितकर्ता है। अतः अपने कल्याण के निमित्त उसके साहचर्य की कामना करते हुए उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा गया है-

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सुपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥

अर्थात् हे अतिशय गुणों से युक्त अग्नि देव! तुम हमारे प्रति उसी प्रकार सुप्राप्त हो जाओ, जैसे पिता पुत्र के प्रति सदैव कल्याणकारक एवं पोषक होता है। हमारे हित के लिए सर्वदा समीप अवस्थित हो जाओ।

टिप्पणी

वैदिक साहित्य में अग्नि देवता का स्थान सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोपरि परिलक्षित होता है।

वासुदेव शरण अग्रवाल प्रभृति विद्वानों ने भी अग्नि को समस्त प्राणियों के भीतर विद्यमान अमरतत्त्व अथवा शरीर को उष्ण रखने वाला प्राण तत्त्व होने के कारण सर्वप्रधान एवं सर्वव्यापक माना है। अतः ऋषि द्वारा प्रथम मण्डल के ही प्रथम सूक्त में विविध विशिष्टताओं से समन्वित अग्नि देवता की स्तुति होना स्वाभाविक है।

इस मन्त्र समूह के ऋषि 'मधुच्छन्दा वैश्वामित्र' हैं। मधुच्छन्दा का अर्थ है– 'मधूनि छन्दांसि यस्य सः' अर्थात् जिस क्रान्तिदर्शी ऋषि के माधुर्ययुक्त छन्द हैं और वैश्वामित्र से तात्पर्य है– 'विश्वानि मित्राणि यस्य सः' अर्थात् जिस मननशील, प्रज्ञावान ऋषि के सभी मित्र हैं। अतः मधुरभाषी जो सबका मित्र है, वह मधुच्छन्दा वैश्वामित्र प्रकृति मन्त्र समूह का ऋषि है। सम्पूर्ण ऋचाएं गायत्री छन्द में उपनिबद्ध हैं। यह वैदिक छन्द है, जिसमें तीन पाद होते हैं और प्रत्येक पाद में आठ-आठ वर्ण होते हैं।

2.2.2 मन्त्र एवं अर्थ

ऋषिः – मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः

छन्दः – गायत्री

देवता – अग्निः

1. अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नधातमम्।।

पदपाठ- अग्निम्। ईळे। पुरःऽहितम्। यज्ञस्य। देवम्। ऋत्विजम्। होतारम्। रत्नऽधातमम्।।

अन्वयः- (अहम्) पुरोहितं यज्ञस्य देवम् ऋत्विजं, होतारं रत्नधातमम् अग्निम् ईळे।

शब्दार्थ- पुरोहितम्-यज्ञ में सबसे पहले प्रतिष्ठापित किए गए अथवा यज्ञकर्म सम्पादित करने वाले, यज्ञस्य-यज्ञ के, देवम्-दानादि गुणों से सम्पन्न देवता, ऋत्विजम्-विविध ऋतुओं के अनुसार अथवा नियत सयम पर यज्ञ सम्पादित करने वाले, रत्नधातमम्-धनादि पदार्थों को प्रदान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ अथवा पृथिवी तथा सुवर्णादि रत्नों को धारण करने वाले, अग्निम्-अग्नि देवता की, ईळे-स्तुति करता हूं।

सरलार्थ- मैं (यज्ञ में) सर्वप्रथम प्रतिष्ठापित, यज्ञ को देदीप्यमान करने वाले, ऋतुओं के अनुसार यज्ञ सम्पादित करने वाले, दिव्य शक्तियों से समन्वित देवताओं का आह्वान करने वाले एवं धन प्रदान करने वाले अथवा यज्ञ के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले अग्नि देवता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूं।

2. अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।

स देवां एह वक्षति।

पदपाठः- अग्निः। पूर्वेऽभिः। ऋषिऽभिः। ईड्यः। नूतनैः। उत।

सः। देवान्। आ। इह। वक्षति।।

अन्वयः- अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः ईड्यः उत नूतनैः। सः देवान् इह आवक्षति।

टिप्पणी

शब्दार्थ- अग्निः-अग्नि देवता, पूर्वेभिः-प्राचीन (ऋषियों) के द्वारा, ऋषिभिः-मन्त्रों का साक्षात्कार करने वाले (मन्त्रद्रष्टा) ऋषियों के द्वारा, ईड्यः-स्तुति के योग्य, उत-और, नूतनैः-अर्वाचीन (ऋषियों) के द्वारा सः-वह, देवान्-देवतओं को, इह-इस यज्ञ में, आवक्षति-ले आए।

सरलार्थ- यह अग्नि देवता प्राचीन ऋषियों के द्वारा (स्तुति का विषय रहा है) और अभिनव ऋषियों के द्वारा भी स्तुत्य है। वह दिव्यगुणों से सम्पन्न शक्तियों को यहां यज्ञ में ले आए।

3. अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे।

यशसं वीरवत्तमम्।।

पदपाठः- अग्निना। रयिम्। अश्नवत्। पोषम्। एव। दिवेऽदिवे।

यशसम्। वीरवत्ऽतमम्।।

अन्वयः- अग्निना (मनुः) दिवेदिवे एव पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिम् अश्नवत्।

शब्दार्थ- अग्निना-अग्नि देवता के द्वारा, दिवेदिवे-प्रतिदिन, एव-ही, पोषम्-पुष्टि प्रदान करने वाले अथवा नित्य वर्धनशील, यशसम्-कीर्ति को प्राप्त होने वाले, वीरवत्तमम्-अतिशय शौर्यसम्पन्न पुत्रों से युक्त, रयिम्-धन को, अश्नवत्-प्राप्त करें।

सरलार्थ- अग्नि के द्वारा मनुष्य प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने वाले, कीर्ति प्रदायक एवं अतिशय वीरो से युक्त धन को प्राप्त करे।

4. अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।

स इद् देवेषु गच्छति।

पदपाठः- अग्ने। यम्। यज्ञम्। अध्वरम्। विश्वतः। परिऽभूः। असि। सः। इत्। देवेषु। गच्छति।।

अन्वयः- अग्ने। यम् अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूः असि। स इत् देवेषु गच्छति।

शब्दार्थ- अग्ने-हे अग्नि देवता, यम्-जिसको, अध्वरम्-हिंसारहित, यज्ञम्-यज्ञ को, विश्वतः-चारों तरफ से, परिभूः-व्याप्त करने वाले, असि-हो, सः-वह, इत्-ही, देवेषु-देवताओं में, गच्छति-जाता है।

सरलार्थ- हे अग्नि। जिस हिंसारहित यज्ञ को तुम सब ओर से व्याप्त करते हो, वही (आहुति युक्त यज्ञ) देवताओं में पहुंचता है।

5. अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।

देवो देवेभिरागमत्।।

पदपाठः- अग्निः। होता। कविऽक्रतुः। सत्यः। चित्रश्रवःऽतमः। देवः। देवेभिः। आ गमत्।।

अन्वयः- होता कविक्रतुः सत्यः चित्रश्रवस्तमः। सः देवः अग्निः देवेभिः (इह-अस्मिन् यज्ञे) आ गमत्।

शब्दार्थ- होता-यज्ञ का संपादन करने वाला अथवा देवताओं का आह्वान करने वाला, कविक्रतुः-अतीत और अनागत कर्मों को जानने वाले, सत्यः-मिथ्यादोष से रहित अथवा निश्चय ही फल प्रदान करने वाला, चित्रश्रवस्तमः-अतिशय रूप से अद्भुत कीर्तिसम्पन्न, सः - वह, देवः-प्रकाशमान, अग्नि-अग्नि देवता, देवेभिः-देवताओं के साथ, आ गमत्-आए।

सरलार्थ- यज्ञ का संपादन करने वाला, क्रान्तदर्शन से युक्त कर्मों वाला (सर्वक्रान्त प्रज्ञावाला), निश्चित रूप से फलों को देने वाला, सर्वश्रेष्ठ कीर्तिसम्पन्न और दिव्यगुणों से युक्त यह अग्नि देवता अन्य देवताओं के साथ इस यज्ञ में आएं।

6. यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।

तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः।

पदपाठः- यत्। अङ्ग। दाशुषे। त्वम्। अग्ने। भद्रम्। करिष्यसि।

तव। इत्। तत्। सत्यम्। अङ्गिरः।।

अन्वयः- अङ्ग अग्ने। यत् त्वं दाशुषे भद्रं करिष्यसि, तव तत् इत्। अङ्गिरः सत्यम्।

शब्दार्थ- अङ्ग -अभिमुख, अग्ने-हे अग्नि देवता, यत्-जो, त्वम्-तुम्, दाशुषे-हवि का दान करने वाले यजमान के लिए, भद्रम्-कल्याण अथवा सुख, करिष्यसि-प्रदान करोगे, तव-तुम्हारा, तत्-वह, इत्-ही, अङ्गिरः-अङ्गिरा ऋषि को जन्म देने वाले अग्नि देवता अथवा अङ्गारों में उत्पन्न होने वाले अग्नि देवता, सत्यम्-यह सत्य ही है।

सरलार्थ- हे अग्नि देवता। जो भी तुम हवि का दान करने वाले यजमान के लिए धन, गृह, पशु आदि कल्याण करने वाले पदार्थ प्रदान करोगे, वह सब वास्तव में तुम्हारा ही कल्याण है। हे अङ्गार रूपी अग्नि देवता, यह बात सत्य ही है अर्थात् इमसें संशय नहीं है।

7. उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।

नमो भरन्त एमसि।।

पदपाठः- उप। त्वा। अग्ने। दिवेऽदिवे। दोषाऽवस्तः। धिया। वयम्।

नमः। भरन्तः। आ। इमसि।।

अन्वयः- हे दोषावस्तः अग्ने। वयं धिया नमः भरन्तः दिवेदिवे उप त्वा आ इमसि।

शब्दार्थ- दोषावस्तः-हे अन्धकार को दूर करने वाले, अग्ने-हे अग्नि देवता वयं-हम, धिया-श्रेष्ठ बुद्धि से, नमः-स्तुति अथवा प्रणाम, भरन्तः-करते हुए, दिवेदिवे-प्रतिदिन, उप-समीप, त्वा-तुम्हारे, आ इमसि-आते हैं।

सरलार्थ- हे अन्धकार को (प्रकाश से) दूर करने वाले अग्नि, हम उत्तमोत्तम प्रज्ञा से प्रणाम करते हुए प्रतिदिन तुम्हारे समीप आते हैं।

8. राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।

वर्धमानं स्वे दमे।।

टिप्पणी

पदपाठः– राजन्तम्। अध्वराणाम्। गोपाम्। ऋतस्य। दीदिविम्।
वर्धमानम्। स्वे। दमे।।

अन्वयः- राजन्तम्-प्रकाशमान होते हुए अथवा शासन करने वाले, अध्वराणाम्-हिंसारहित यज्ञों के, ऋतस्य-शाश्वत नियमों के अथवा सत्य कर्मफलों के, गोपाम्-संरक्षक, दीदिविम्-अत्यन्त प्रकाशमान, स्वे-अपने, दमे-घर अथवा यज्ञशाला में, वर्धमानम्-वृद्धि को प्राप्त होने वाले।

सरलार्थ- हिंसारहित यज्ञों के शासक, शाश्वत नियमों के रक्षक, अत्यन्त प्रकाशमान अपने घर में नित्य बढ़ने वाले (अग्नि के समीप हम प्रतिदिन आते हैं)।

9. स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये।।

पदपाठः- सः। नः। पिताऽइव। सूनवे। अग्ने। सुऽउपायनः। भव।
सचस्व। नः। स्वस्तये।।

अन्वयः- हे अग्ने। सः (त्वम्) सूनवे पिताइव नः सुऽउपायनः भव। अग्ने, नः स्वस्तये सचस्व।।

शब्दार्थ- अग्ने-हे अग्नि देवता, सः-पूर्वोक्त गुणों से युक्त अग्नि, सूनवे-पुत्र के लिए, पिताइव-पिता के समान, नः-हमारे लिए, सूपायनः-सुप्राप्त अथवा सुगम, भव-हो,स्वस्तये-कल्याण के लिए, सचस्व-साथ हो।

सरलार्थ- पूर्व ऋचाओं में कहे गए गुणों से सम्पन्न हे अग्नि देव! जिस प्रकार पिता पुत्र के लिए सुप्राप्य और कल्याण करने वाला होता है, उसी प्रकार तुम भी हमारे कल्याण के लिए हमारे निकट रहो।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. अग्निसूक्त के ऋषि कौन हैं?
   (क) याज्ञवल्क्य (ख) मधुच्छन्दा वैश्वामित्र
   (ग) अङ्गिरा (घ) वसिष्ठ
2. अग्निसूक्त में किस छन्द का प्रयोग हुआ है–
   (क) गायत्री (ख) त्रिष्टुप्
   (ग) उष्णिक् (घ) बृहती
3. कविक्रतु से क्या तात्पर्य है?
   (क) अतीत का ज्ञाता (ख) अनागत का ज्ञाता
   (ग) दोषरहित (घ) अतीत व अनागत का ज्ञाता

टिप्पणी

2.3 यजुर्वेदीय शिवसंकल्पसूक्तम् मन्त्र व अर्थ

शिवसंकल्प सूक्त के परिचय एवं मंत्रार्थ को पृथक-पृथक इस प्रकार देखा जा सकता है-

2.3.1 शिवसंकल्पसूक्तम् का परिचय

प्राणियों की प्रायः समस्त गतिविधियां मन द्वारा ही संचालित होती हैं। मन के बद्ध होने पर अथवा चिन्ताग्रस्त होने पर मनुष्य स्वयं को बंधा हुआ एवं चिन्तामुक्त होने पर स्वयं को प्रफुल्लित एवं मुक्त अनुभव करता है। कहा भी गया है–

'मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का समीपतम देवता 'मन' ही है। इसी तथ्य को उजागर करते हुए यजुर्वेद के ऋषि याज्ञवल्क्य द्वारा उद्घाटित जिन मन्त्रों में मन की शिवसंकल्प स्थिति का वरदान चाहा गया है, वे मन्त्र ही 'शिवसंकल्पसूक्तम्' के नाम से प्रख्यात हैं।

इन मन्त्रों में न केवल मन का स्वरूप स्पष्ट हुआ है अपितु मन की सामर्थ्य का यथार्थ चित्रण भी द्रष्टव्य है। इन मन्त्रों का समावेश संभवतः दैनिक प्रार्थना का भी अंगभूत रहा होगा एवं रहना चाहिए।

2.3.2 मन्त्र एवं अर्थ

ऋषि– याज्ञवल्क्य, देवता– मनस्, छन्द– त्रिष्टुप्

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।1।।

पदपाठ– यत्। जाग्रतः। दूरम्। उदेतीत्युत् ऐति। दैवम्। तत्। ऊँ इत्यू। सुप्तस्य। तथा। एव। इति। दूरम्। गमम्। ज्योतिषाम्। ज्योतिः। एकम्। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पम्। अस्तु।।

अर्थ– जो प्रकाशमान मन जागते हुए (पुरुष) का अधिक दूर चला जाता है, सोते हुए (पुरुष) का उसी प्रकार से ही आ जाता है। दूरगामी, ज्योतियों में अद्वितीय प्रकाशरूप वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।2।।

पदपाठ– येन। कर्माणि। अपसः। मनीषिणः। यज्ञे। कृण्वन्ति। विदथेषु। धीराः। यत्। अपूर्वम्। यक्षम्। अन्तः। प्रजानाम्। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पम्। अस्तु।

अर्थ– जिस (मन) के द्वारा कर्मनिष्ठ मनीषी धैर्यवान् पुरुष यज्ञ में कर्म किया करते हैं जो पूर्व से ही प्राणिमात्र के शरीर में प्रधान रूप से रहता है वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

टिप्पणी

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।3।।

पदपाठ– यत्। प्रज्ञानम्। उत्। चेतः। धृतिः। च। यत्। ज्योतिः। अन्तः। अमृतम्। प्रजासु। यस्मात्। न। ऋते। किञ्चन। कर्म। क्रियते। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पम्। अस्तु।

अर्थ– जो मन उत्कृष्ट ज्ञान तथा सामान्य ज्ञान का उत्पादक है, धैर्य आधार रूप है जो प्राणियों के अंतःकरण में अमर ज्योति है तथा जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।4।।

पदपाठ– येन। इदम्। भूतम्। भुवनम्। भविष्यत्। परिगृहीतम् इति। अमृतेन। सर्वम्। येन। यज्ञः। तायते। सप्तहोतेति। सप्तहोता। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पम्। अस्तु।

अर्थ– जिस (मन) के द्वारा इस संसार में भूत, भविष्य एवं वर्तमान कालीन समस्त पदार्थ भली प्रकार से जाना जाता है जिसके द्वारा सात होता वाला यज्ञ संपादित किया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिन्श्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।5।।

पदपाठ– यस्मिन्। ऋचः। सामऽयजूंषि। यस्मिन्। प्रतिष्ठिता। रथनाभौ। इव। अराः। यस्मिन्। चित्तम्। सर्वम्। ओतम्। प्रजानामितिप्रजानाम्। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पम्। अस्तु।

अर्थ– जिस मन में ऋचाएं, साम और यजुष के मंत्र रथचक्र की नाभि में अरे (तीलिओं) के समान प्रतिष्ठित हैं। जिस (मन) में प्राणियों का सर्वपदार्थ विषयक ज्ञान अनुस्यूत है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

सुसारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।6।।

पदपाठ– सुसारथिरिति सुसारथिः। अश्वानिवेत्यश्वान् इव। यत् मनुष्यान्। नेनीयते। अभीशुभिरित्यभीशुभिः। वाजिनइवेति वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठमिति हृतप्रतिष्ठम्। यत्। अजिरम्। जविष्ठ। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

अर्थ– जिस प्रकार अच्छा सारथी घोड़ों को ले जाता है उसी प्रकार मनुष्यों को मन ले जाता है। सारथी लगाम से घोड़ों को जैसे वश में करता है, वैसे ही मन मनुष्यों को कर्मों में प्रेरित करता है। जो हृदय में स्थित, वृद्धावस्था रहित तथा अतितीव्रगामी है वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

शिवसङ्कल्पसूक्त का महत्व

यजुर्वेद के शिवसंङ्कल्पसूक्त' का विशेष महत्व प्रत्येक साधक के लिए है। 'मनो हि दुर्निग्रहं' तथा 'चंचलं हि मनः कृष्ण! प्रमाथिक बलवद्दृढम्' आदि अनेक कथन के द्वारा मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के पथ में मन को सर्वाधिक बाधक माना गया है। **'जितं जगत् केन मनोहि येन'** अर्थात् जिसने मन को जीत लिया उसने सारा जगत् जीत लिया।

इस प्रकार यह सूक्त 'विश्व विजय' का साधक कहा जा सकता है। इस सूक्त की यह विशेषता है कि इसमें मन की सकारात्मक शक्तियों को स्मरण करते हुए उसे सन्मार्ग पर ले जाने की प्रार्थना हुई है। सकारात्मक चिंतन ही सफलता दिलाता है, इस विश्वास को इस सूक्त में बल मिला है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

4. शिवसङ्कल्प सूक्त के ऋषि कौन हैं?

   (क) दधीचि (ख) भरद्वाज

   (ग) याज्ञवल्क्य (घ) विश्वामित्र

5. प्रजास्विति का सन्धि विच्छेद क्या है?

   (क) प्रजा + असु + इति (ख) प्रजा स्व् + इति

   (ग) प्रज + अश्व + इति (घ) प्रजासु + इति

6. मन की स्थिति क्या है?

   (क) सारथी के समान (ख) रथ की नाभि के समान

   (ग) रथ के अश्वों के समान (घ) रथ की नाभि के अरों के समान

7. मन को कौन–सी अवस्था प्राप्त नहीं होती?

   (क) बाल्यावस्था (ख) यौवनावस्था

   (ग) वृद्धावस्था (घ) तीनों में से कोई भी नहीं

2.4 विजयसूक्तम् मन्त्र व अर्थ

विजयसूक्त के मंत्रार्थ से पूर्व इसकी परिचयात्मक पृष्ठभूमि से अवगत हो लेना समीचीन होगा।

2.4.1 विजयसूक्तम् का परिचय

यद्यपि अथर्ववेद की ख्याति अभिचार, भूतप्रेत बाधा, आयुर्वेद आदि विषयों के लिए है तथापि इनमें अन्यान्य विषयों यहां तक कि ब्रह्मविद्या का भी समावेश हुआ है। मानव जीवन में 'विजय' के भाव का विशेष महत्व है। 'विजय' की भावना से जहां

टिप्पणी

आत्मविश्वास की वृद्धि होती है वहीं पराजित व्यक्ति निराशा के समुद्र में डूबते देखे जा सकते हैं। विजय के इसी महत्व को श्रीमद्भगवद्गीता का अन्तिम श्लोक भी फलश्रुति में प्रस्तुत करता है–

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

अथर्ववेद के विजयसूक्त के मन्त्रों में य़द्यपि अनेक विद्वानों ने द्यूतक्रीड़ा के प्रसंग को रेखांकित किया है तथापि सूक्ष्मदृष्टि विवेचन से इसमें न केवल द्यूतनिन्दा के अभिप्राय को समझा जा सकता है अपितु जीवन में साहस व परिश्रम पूर्वक विजय पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा का भी बोधलभ्य है।

2.4.2 मन्त्र एवं अर्थ

विद्मो शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्।
विद्मोष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम्।।1।।

पदपाठ– विद्मः। शरस्य। पितरं। पर्जन्यं। भूरि। धायसम्। विद्मः। अस्य। मातरं। पृथिवीं। भूरि। वर्पसम्।

अर्थ– (शरस्य) शरका, बाण का पिता (भूरि–धायसं पर्जन्यं) बहुत प्रकार से धारण–पोषण करने वाला पर्जन्य है। यह (विद्म) हम जानते हैं तथा (अस्य) इसकी माता (भूरि–वर्पसं) बहुत प्रकार के कुशलताओं से युक्त पृथ्वी है,यह हमें (सुविद्म) उत्तम प्रकार से ज्ञात है।

व्याख्या– शत्रु को जीतने के लिए धनुष को चढ़ाये बाण के जन्मदाता मेघ को हम जानते हैं; जो मेघ वृष्टि करके लोगों को संतुष्ट करता है। जो वृष्टि के द्वारा संपूर्ण जगत् को बहुत सी स्थावर जंगमात्मक वस्तुएं यथोचित काल में प्रदान करता है। हम इस शर की माता पृथ्वी को भी जानते हैं जो विभिन्न प्रकार के चराचरात्मक रूपों की जन्मदात्री है।

तात्पर्य यह है कि संपूर्ण रूप पृथ्वी से ही उत्पन्न होते हैं तथा कारण के गुण कर्म देखे जाते हैं। इसलिए पृथ्वी से उत्पन्न शर नाना प्रकार का होता हुआ साधक के अभिमत विजयरूप फल हो सिद्ध करने में समर्थ है।

ज्याऽके परिणोन माश्मानं तन्वऽकृधि।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि।।2।।

पदपाठ– ज्याऽके। परिणो। नः। मा। अश्मानं। तन्वं। कृधिः। वीडुः। वरीयः। अरातीः। द्वेषांसि। अपकृधिः।

अर्थ– हे (ज्याके) माता! (नः) हम सब पुत्रों को (परिणो) परिणत कर अर्थात् हमारे (तन्वं) शरीर को (अश्मानं) पत्थर जैसा सुदृढ़ (कृधि) कर (वीडुः) बलवान बनाकर (अ–रातीः) अदान के भावों को तथा (द्वेषांसि) द्वेषों को अर्थात् सब शत्रुओं को (वरीयः) पूर्णरीति से (अपकृधि) दूर कर।

टिप्पणी

व्याख्या– हे घनुष की प्रत्यंचे! तुम हमारे लिए नम्र हो जाओ। हे इन्द्र! मेरे शरीर को पत्थर जैसा दृढ़ अर्थात शस्त्रों से भी न भिदने वाला बना दो। हे इन्द्र! तुम सेना के संस्तभ्यक हो। तुम मेरे शत्रुओं को दूर करो।

आशय यह है कि इस सूक्त में इन्द्र ही देवता हैं तथा विजय कर्म इन्द्र के ही अधीन होता है। इसीलिए इन्द्र को संबोधित करके इसका अर्थ किया गया है।

वृक्षं यद्गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम्।

शरूमस्मद्यावय दिधुमिन्द्र।।3।।

पदपाठ– वृक्षं। यद्। गावः। परिषस्वजाना। अनुस्फुरं। शरं। अर्चन्ति। ऋभुम्। शरुम्। अस्मत्। दिधुम्। इन्द्र।

अर्थ– (यत्) जिस प्रकार (वृक्षं) वृक्ष के साथ (परिषस्वजानाः) लिपटी हुई या बंधी हुई (गावः) गौएं अपने (ऋभुं शरं) तेजस्वी पुत्र शर को (अनुस्फुरं) फुर्ती के साथ (अर्चन्ति) चाहती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र! (अस्मत्) हमसे (दिधुं शरूं) तेज–पुत्र बाण को (यावय) दूर बढ़ा।

व्याख्या– वृक्ष से बने हुए धनुष के दण्ड से लिपटी हुई धनुषों की प्रत्यंचाएं जब अत्यन्त तीक्ष्ण हिंसक शरों को लक्ष्य की ओर प्रेरित करती हैं तब हे इन्द्र! हमारे द्वारा दिए हुए हवि से प्रसन्न होकर तुम चमकते हुए बाणों को हमारे पास आने से रोक दो।

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम्।

एवा रोगं, चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत्।।4।।

पदपाठ– यथा। द्यां। च। पृथिवीं। च। अन्तः। तिष्ठति। तेजनम्। एव। रोगं। च। अस्रावं। च। अन्तः। तिष्ठतु। मुञ्ज्। इत्।

अर्थ– जिस प्रकार (द्यां) द्युलोक और पृथ्वी के (अन्तः) बीच में (तेजनं) तेज (तिष्ठति) होता है, (एव) इसी प्रकार यह (मुंजः) मुंज (रोगं च अस्रावं च) रोग और स्राव के (अन्तः) बीच में (इत् तिष्ठतु) निश्चय से रहे।

व्याख्या– इसका तात्पर्य यह है कि इस मन्त्र की साध्य क्रिया विशेषतः आस्राव रोग की निवर्तिता है। इसलिए यहां आस्राव रोग का सामान्य रोग से पृथक अभिधान किया गया है।

विजयसूक्त का महत्व

वस्तुतः मनुष्य का जीवन सदा से ही संघर्षशील रहा है। संघर्षों में क्रमशः विजयपथ पर बढ़ते हुए ही मनुष्य ने नित्य नूतन लक्ष्यों पर विजय पाई है। सृष्टि के आदि से अंत तक यह विजय यात्रा चलती है। विफलताओं से भयभीत नहीं होने वाला उत्साहशील व्यक्ति ही विजय को प्राप्त करता है। इस दृष्टिकोण से इस सूक्त के मंत्रों का अनुशीलन अधिक समीचीन है।

अथर्ववेद सांसारिक फल प्रदाता है। मनुष्य के वर्तमान जीवन को सुखमय बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों का विधान इसमें किया गया है। ब्रह्मा का साक्षात्

टिप्पणी

सम्बन्ध इसी वेद से है। पुरोहित के लिए तो इसका ज्ञान अत्यावश्यक है क्योंकि यजमानों पर आये विघ्नों की शांति और उनकी समृद्धि के कार्यों का संपादन वह अथर्ववेद के द्वारा ही करता है।

अथर्ववेद में बीस काण्ड हैं। प्रथम काण्ड के अपराजित गण का प्रथम सूक्त ही विजयसूक्त है। इसमें वैयक्तिक विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से उपदेश दिये गये हैं कि धारण और पोषण उत्तम प्रकार से करने वाला पिता पर्जन्य है। कुशलता से अनेक कर्म करने वाली माता पृथ्वी है। माता–पिता पुत्र के शरीर में ऐसा परिणाम कराएं कि जिससे वह बलवान बनकर शत्रुओं को दूर करने में समर्थ हो सके।

'अपनी प्रगति जांचिए'

8. विजयसूक्त में सेना का संस्तभ्यक किसे कहा गया है?

(क) कार्तिकेय को (ख) शिव को

(ग) इन्द्र को (घ) धनुष को

9. निम्नलिखित में से किस छन्द का प्रयोग विजयसूक्त में नहीं हुआ?

(क) गायत्री (ख) अनुष्टुप्

(ग) जगती (घ) त्रिष्टुप्

2.5 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (घ)
4. (ग)
5. (घ)
6. (क)
7. (ग)
8. (ग)
9. (क)

2.6 सारांश

वैदिकवाङ्मय में वर्णित देवताओं के अन्तर्गत जिस प्रकार आकाशस्थानीय देवताओं में सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं उसी प्रकार पृथ्वी स्थानीय देवताओं में अग्नि भी प्रत्यक्ष देवता हैं। इनके दिव्य गुणों के अन्तर्गत ये यज्ञ में समर्पित आहुति को विभिन्न देवताओं तक पहुंचाने के प्रमुख उपकारक हैं। इन्हीं की उपस्थिति के प्रभाव से विभिन्न देवता यज्ञ में

टिप्पणी

पधारते हैं। मनुष्यों के लिए ये तेजोवर्धक एवं कीर्तिवर्धक हैं। इनके अनुग्रह से याजकों की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। उन्हें धन, गृह, पशु आदि भद्र की प्राप्ति होती है। ये अंधकार को नष्ट करते हैं। जिस तरह पिता का पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव होता है उसी प्रकार ये याजक के प्रति स्नेह भाव रखते हैं।

यजुर्वेद के शिवसङ्कल्प सूक्त के मन्त्रों का देवता मन है। जाग्रत् एवं सुप्त दोनों अवस्थाओं में मनोदेवता दूराद्दूरं गमन की शक्ति से सम्पन्न हैं। इनका स्वरूप प्रकाशमान है। मन प्रकाशमान स्वरूप प्रकाशमान बना रहे इस उद्देश्य से याजक यह वाचिक कामना करता है कि यह शिव अर्थात् शुभ कल्याणकारक संकल्प से सम्पन्न रहे। शरीर की समस्त गतिविधियों में मन देवता की मुख्य भूमिका रहती है अतः इन्हें समस्त प्राणधारियों की देह में प्रधान कहा गया है। हर प्रकार के ज्ञान और धैर्य के ये आधारभूत हैं। अपनी उत्कृष्ट अवस्था में ये त्रिकालज्ञ हैं। इनके सहयोग से ही सप्त होताओं वाला यज्ञ सम्पन्न किया जा सकता है।

मन देवता में समस्त वैदिक मंत्र उसी प्रकार अनुस्यूत हैं जैसे रथचक्र की नाभि में उसके अरें व्यवस्थित रूप से जुड़े होते हैं और रथचक्र प्रगतिशील हो पाता है। श्रेष्ठ सारथी के समान शुभ संकल्प युक्त मन मनुष्य को उचित पथ पर ले जाता है। अतः मनोदेवता का शुभ संकल्पयुक्त होना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अथर्ववेद का विजयसूक्त याजक की विजयाभिलाषा से जुड़ा है। देवतागण के राजा इन्द्र इस सूक्त के देवता हैं। इन्द्र की स्तुतिपूर्वक याजक इन मन्त्रों में यद्यपि सर्वत्र विजय की कामना करता है तथापि मन्त्रों में द्यूत क्रीड़ा की विजय का रूपक है। शीघ्रगामी और मन्दगामी दोनों प्रकार के शत्रुओं को पहचानना और उन्हें पराजित करने की सामर्थ्य पाने की अभिलाषा स्तुतिपरक मंत्रों में स्पष्ट है। इन मन्त्रों में आनुषंगिक रूप से अग्नि देवता और मरुद्गणों की भी स्तुति की गई है। शत्रुओं पर विजय पाने के लिए आवश्यक है कि उनके बल में ह्रास किया जाए। इसलिए याजक शत्रुओं के बल को क्षीण करने की अभिलाषा प्रकट करता है। विजयी होने के लिए गाय आदि पशुधन की अभिवृद्धि आवश्यक है अतः दुर्गति को मिटाते हुए इनकी समृद्धि की कामना भी सूक्त में वर्णित है।

दाएँ हाथ में कर्म और बाएँ हाथ में विजय का दृढ़ विश्वास कर्मठता का प्रेरक है। यह विश्वास इस सूक्त की सूक्ति, **'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य अहितः'** में प्रकट हुआ है। सूक्त में पुरुषार्थ अर्थात् परिश्रम करने की प्रेरणा सर्वत्र व्याप्त है।

2.7 मुख्य शब्दावली

- **अग्रणी** : आगे रहने वाला
- **कविक्रतु** : अतीत व अनागत का ज्ञाता/क्रान्तदर्शी
- **पूर्वेभि** : प्राचीनों के द्वारा
- **अध्वरम्** : हिंसारहित

टिप्पणी

- **दूरङ्गमम्** : दूरगामी
- **मनीषिणः** : मननशील
- **रथनाभौ** : रथ के पहिए के केंद्र में
- **वाजिनः** : घोड़े
- **कितवान्** : जुआरियों को
- **ईडे** : स्तुति करता हूँ
- **वृकः** : भेड़िया
- **यवेन** : जौ नामक धान्य के द्वारा
- **क्षीरिणीभिः** : दूध देने वाली गायों के द्वारा

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अग्नि सूक्त के ऋषि, छन्द और देवता का उल्लेख कीजिए।
2. शिवसङ्कल्पसूक्त के ऋषि, छन्द और देवता बताइए।
3. विजयसूक्त का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अग्नि देवता का विस्तार सहित परिचय अग्निसूक्त के आधार पर लिखिए।
2. यजुर्वेद के शिवसङ्कल्पसूक्त के मन्त्रों का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।
3. अथर्ववेदीय विजय सूक्त पर पाश्चात्य और प्राच्य मन्तव्य पर विवेचनात्मक लेख लिखिए।

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. ऋग्वेद सायणभाष्य सहित।
2. उव्वट महीधर कृत शुक्लयजुर्वेद–भाष्य
3. ऋग्वेदीय सूक्तसंग्रह (डॉ. वेद प्रकाश उपाध्याय), अनुराग प्रकाशन, इलाहाबाद।

इकाई 3 शब्द रूप एवं धातु रूप

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 संस्कृत शब्द रूपावली
3.3 धातु रूप
3.4 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

संस्कृत भाषा के स्वरूप को समझने के लिए 'सुबन्त' व तिङन्त रूपों का बोध होना अत्यन्त आवश्यक है। 'सुबन्त' रूपों में सभी संज्ञा शब्दों के रूप संबोधन व प्रथमा से सप्तमी विभक्ति में निर्मित होते हैं। जबकि तिङन्त रूपों में धातु रूप प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुष में निर्मित होते हैं। तिङन्त रूप यद्यपि लट्, लङ्, लृट्, लोट्, विधिलिङ्, आशीर्लिङ् लुङ्, लृङ्, लिट, लुट्, लेट् ग्यारह लकारों में बनते हैं। तथापि इनमें से अन्तिम लेट् लकार का प्रयोग केवल वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। सामान्य अनुवाद के लिए व विचाराभिव्यक्ति के लिए पहले पांच लकार लट्, लङ्, लृट्, लोट् और विधिलिङ् ही पर्याप्त समझे जाते हैं।

सुबन्त और तिङन्त दोनों प्रकार के रूप एकवचन, द्विवचन और बहुवचन में निर्मित होते हैं। सर्वनाम सुबन्तों में संबोधन न होने से कुल इक्कीस प्रकार के रूप सर्वनाम शब्दों के होते हैं। संज्ञा हो अथवा सर्वनाम दोनों प्रकार के सुबन्त पुंल्लिङ्ग नपुंसकलिङ्ग व स्त्रीलिङ्ग में पृथम-पृथक रहते हैं।

सुबन्त शब्द रूपों के अर्थ क्रमशः विभक्ति के अनुसार पहचाने जाते हैं। प्रथमा विभक्ति के शब्द 'कर्ता', द्वितीया विभक्ति के शब्द 'कर्म', तृतीया विभक्ति के शब्द 'करण', चतुर्थी विभक्ति के शब्द 'सम्प्रदान', पंचमी विभक्ति के शब्द 'अपादान', षष्ठी विभक्ति के शब्द 'सम्बन्ध' और सप्तमी विभक्ति के शब्द 'अधिकरण' अर्थों को प्रकट करते हैं। सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति के ही शब्दों की पुनरावृत्ति होती है, किन्तु एकवचन में प्रायः सम्बोधन शब्द का रूप किंचित् परिवर्तित हो जाता है। इसके अतिरिक्त 'उपपद' विभक्ति के नियमों के अनुसार भी विभक्तियां भिन्न-भिन्न अर्थों को प्रस्तुत करती हैं। कर्तृवाच्य वाक्यों में जहां प्रथमा विभक्ति 'कर्ता' अर्थ को प्रकट करती है वहीं कर्मवाच्य में प्रथमा विभक्ति 'कर्म' को प्रकट करती है। इसी संदर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य है कि कर्मवाच्य और भाववाच्य का कर्ता तृतीया विभक्ति में प्रकट होता है।

टिप्पणी

जहां तक तिङन्त रूपों का संदर्भ है, यह सदा स्मरण रहना चाहिए कि वर्तमान कालिक क्रियाओं के अर्थ 'लट् लकार' में, भूतकालिक क्रियाओं के अर्थ 'लङ् लकार' में और भविष्यत् कालिक क्रियाओं के अर्थ लृट् लकार में प्राप्त होते हैं। आज्ञार्थक क्रियाओं के लिए लोट् लकार है तथा विध्यर्थक अर्थ वाली क्रियाओं के लिए विधिलिङ् लकार है। सुबन्तों व तिङन्तों के प्रयोग के लिए उल्लिखित सामान्य ज्ञान के बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

अत: इस इकाई में प्राय: सभी आवश्यक सुबन्त व तिङन्त रूपों के अंतर्गत शब्द रूपों व धातु रूपों को समाविष्ट किया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त व ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के सभी विभक्तियों और वचन में रूपों की पहचान कर पाएंगे;
- आकारान्त, ईकारान्त, ऊकारान्त व ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग के समस्त विभक्तियों और वचनों में रूपों को जान पाएंगे;
- तीनों लिङ्गों में समान अस्मद्-युष्मद् के सभी विभक्ति-वचन-रूपों का अध्ययन कर पाएंगे;
- सर्व, तद्, एतद्, सर्वनाम रूपों के भी समस्त-विभक्ति-वचन रूपों का विवेचन कर पाएंगे;
- पांच प्रमुख लकारों में विभिन्न धातु रूपों के प्रयोग में भी सक्षम हो पाएंगे।

3.2 संस्कृत शब्द रूपावली

अकारान्त पुंल्लिङ्ग 'राम' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राम:	रामौ	रामा:
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामै:
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्य:
पंचमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्य:
षष्ठी	रामस्य	रामयो:	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयो:	रामेषु
सम्बोधन	हे राम!	हे रामौ!	हे रामा:!

टिप्पणी

इकारान्त पुंल्लिङ्ग 'कवि' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कविः	कवी	कवयः
द्वितीया	कविम्	कवी	कवीन्
तृतीया	कविना	कविभ्याम्	कविभिः
चतुर्थी	कवये	कविभ्याम्	कविभ्यः
पंचमी	कवेः	कविभ्याम्	कविभ्यः
षष्ठी	कवेः	कव्योः	कवीनाम्
सप्तमी	कवौ	कव्योः	कविषु
सम्बोधन	हे कवे!	हे कवी!	हे कवयः!

उकारान्त पुंल्लिङ्ग 'भानु' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भानुः	भानू	भानवः
द्वितीया	भानुम्	भानू	भानून्
तृतीया	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
चतुर्थी	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
पंचमी	भानोः	भानुभ्याम	भानुभ्यः
षष्ठी	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
सप्तमी	भानौ	भान्वोः	भानुषु
सम्बोधन	हे भानो!	हे भानू!	हे भानवः!

ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग 'पितृ' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पंचमी	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी	पितरि	पित्रोः	पितृषु
सम्बोधन	हे पितः!	हे पितरौ!	हे पितरः!

टिप्पणी

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'लता' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	लता	लते	लताः
द्वितीया	लताम्	लते	लताः
तृतीया	लतया	लताभ्याम्	लताभिः
चतुर्थी	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः
पंचमी	लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः
षष्ठी	लतायाः	लतयोः	लतानाम्
सप्तमी	लतायाम्	लतयोः	लतासु
सम्बोधन	हे लते!	हे लते!	हे लताः!

ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'नदी' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पंचमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
सम्बोधन	हे नदि!	हे नद्यौ!	हे नद्यः!

ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'वधू' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वितीया	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृतीया	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
चतुर्थी	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
पंचमी	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
षष्ठी	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
सप्तमी	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु
सम्बोधन	हे वधु!	हे वध्वौ!	हे वध्वः!

टिप्पणी

ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'मातृ' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातॄ
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पंचमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
सम्बोधन	हे मातः!	हे मातरौ!	हे मातरः!

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'फल' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया	फलम्	फले	फलानि
तृतीया	फलेन	फलाभ्याम्	फलैः
चतुर्थी	फलाय	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
पंचमी	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
षष्ठी	फलस्य	फलयोः	फलानाम्
सप्तमी	फले	फलयोः	फलेषु
सम्बोधन	हे फल!	हे फले!	हे फलानि!

इकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'वारि' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पंचमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	हे वारे!	हे वारिणी!	हे वारिणि!

टिप्पणी

अन्नन्त पुंल्लिङ्ग 'आत्मन्' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वितीया	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृतीया	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
चतुर्थी	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
पंचमी	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
षष्ठी	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
सप्तमी	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सम्बोधन	हे आत्मन्!	हे आत्मानौ!	हे आत्मानः!

ककारान्त स्त्रीलिङ्ग 'वाक्' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वाक्/वाग्	वाचौ	वाचः
द्वितीया	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृतीया	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
चतुर्थी	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पंचमी	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
षष्ठी	वाचः	वाचोः	वाचाम्
सप्तमी	वाचि	वाचोः	वाक्षु
सम्बोधन	हे वाक्!/हे वाग्!	हे वाचौ!	हे वाचः!

तकारान्त पुंल्लिङ्ग 'यत्' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यः	यौ	ये
द्वितीया	यम्	यौ	यान्
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पंचमी	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

तकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'यत्' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	या	ये	याः
द्वितीया	याम्	ये	याः
तृतीया	यया	याभ्याम्	याभिः
चतुर्थी	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः

पंचमी	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
षष्ठी	यस्याः	ययोः	यासाम्
सप्तमी	यस्याम्	ययोः	यासु

टिप्पणी

तकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'यत्' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यत्	ये	यानि
द्वितीया	यत्	ये	यानि
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पंचमी	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

मकारान्त पुंल्लिङ्ग 'इदम्' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्	इमौ	इमान्
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पंचमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः	एषु

मकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'इदम्' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इयम्	इमे	इमाः
द्वितीया	इमाम्	इमे	इमाः
तृतीया	अनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पंचमी	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	अस्याः	अनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयोः	आसु

मकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'इदम्' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया	इदम्	इमे	इमानि

टिप्पणी

तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पंचमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः	एषु

अस्मद् 'मैं' शब्द

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्/मा	आवाम्/नौ	अस्मान्/नः
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्/मे	आवाभ्याम्/नौ	अस्मभ्यम्/नः
पंचमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम/मे	आवयोः/नौ	अस्माकम्/नः
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

युष्मद् 'तुम' शब्द

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्/त्वा	युवाम्/वाम्	युष्मान्/वः
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्/ते	युवाभ्याम्/वाम्	युष्मभ्यम्/वः
पंचमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव/ते	युवयोः/वाम्	युष्माकम्/वः
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

अकारान्त (सर्वनाम) पुंल्लिङ्ग 'सर्व' शब्द

प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पंचमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'सर्व' शब्द (सर्वा)

प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पंचमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'सर्व' शब्द

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पंचमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

तकारान्त पुंल्लिङ्ग 'तत्' शब्द

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पंचमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

स्त्रीलिङ्ग 'तत्' शब्द

प्रथमा	सा	ते	ताः
द्वितीया	ताम्	ते	ताः
तृतीया	तया	ताभ्याम्	ताभिः
चतुर्थी	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पंचमी	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः

टिप्पणी

टिप्पणी

षष्ठी	तस्याः	तयोः	तासाम्
सप्तमी	तस्याम्	तयोः	तासु

नपुंसकलिङ्ग 'तत्' शब्द

प्रथमा	तत्	ते	तानि
द्वितीया	तत्	ते	तानि
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पंचमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

पुंल्लिङ्ग 'एतत्' शब्द

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	एषः	एतौ	एते
द्वितीया	एतम्/एनम्	एतौ	एतान्
तृतीया	एतेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पंचमी	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः	एतेषु

तकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'एतत्' शब्द

प्रथमा	एषा	एते	एताः
द्वितीया	एताम्/एनाम्	एते	एताः
तृतीया	एतया	एताभ्याम्	एताभिः
चतुर्थी	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पंचमी	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
षष्ठी	एतस्याः	एतयोः	एतासाम्
सप्तमी	एतस्याम्	एतयोः	एतासु

नपुंसकलिङ्ग 'एतत्' शब्द

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	एतत्	एते	एतानि
द्वितीया	एतत्	एते	एतानि
तृतीया	एतेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पंचमी	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः	एतेषु

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. 'राम' शब्द तृतीया विभक्ति एकवचन का रूप क्या होगा?
   (क) रामेन (ख) रामेण
   (ग) रामिना (घ) रामिणा
2. 'कवि' शब्द तृतीया विभक्ति बहुवचन का रूप क्या होगा?
   (क) कवैः (ख) कवेभिः
   (ग) कविभिः (घ) कविभ्यः
3. 'अस्मद्' शब्द द्वितीया विभक्ति एकवचन का वैकल्पिक रूप कौन-सा है?
   (क) मे (ख) मह्यम्
   (ग) मत् (घ) मा

3.3 धातु रूप

1. पठ् धातु लट् लकार (वर्तमान काल) भ्वादिगण (शप् विकिरण)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	पठति	पठतः	पठन्ति
मध्यमपुरुषः	पठसि	पठथः	पठथ
उत्तमपुरुषः	पठामि	पठावः	पठामः

लोट् लकार (आज्ञा)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	पठतु	पठताम्	पठन्तु
मध्यमपुरुषः	पठ	पठतम्	पठत
उत्तमपुरुषः	पठानि	पठाव	पठाम

लृट् लकार (भविष्यत् काल)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
मध्यमपुरुषः	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
उत्तमपुरुषः	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः

लङ् लकार (भूतकाल)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
मध्यमपुरुषः	अपठः	अपठतम्	अपठत
उत्तमपुरुषः	अपठम्	अपठाव	अपठाम

टिप्पणी

विधिलिङ् लकार (आज्ञा या चाहिए अर्थ)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
मध्यमपुरुषः	पठेः	पठेतम्	पठेत
उत्तमपुरुषः	पठेयम्	पठेव	पठेम

2. भू धातु भ्वादिगण लट् लकार (वर्तमान काल)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यमपुरुषः	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तमपुरुषः	भवामि	भवावः	भवामः

लोट् लकार (आज्ञा)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	भवतु	भवताम्	भवन्तु
मध्यमपुरुषः	भव	भवतम्	भवत
उत्तमपुरुषः	भवानि	भवाव	भवाम

लृट् लकार (भविष्यत् काल)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
मध्यमपुरुषः	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उत्तमपुरुषः	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

लङ् लकार (भूतकाल)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
मध्यमपुरुषः	अभवः	अभवतम्	अभवत
उत्तमपुरुषः	अभवम्	अभवाव	अभवाम

विधिलिङ् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
मध्यमपुरुषः	भवेः	भवेतम्	भवेत
उत्तमपुरुषः	भवेयम्	भवेव	भवेम

3. कृ धातु भ्वादिगण की धातु (उ विकिरण) लट् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
मध्यमपुरुषः	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उत्तमपुरुषः	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लोट् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
मध्यमपुरुषः	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उत्तमपुरुषः	करवाणि	करवाव	करवाम

लृट् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
मध्यमपुरुषः	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उत्तमपुरुषः	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

लङ् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
मध्यमपुरुषः	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उत्तमपुरुषः	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

विधिलिङ् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
मध्यमपुरुषः	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उत्तमपुरुषः	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

4. अस् धातु लट् लकार (वर्तमान काल)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	अस्ति	स्तः	सन्ति
मध्यमपुरुषः	असि	स्थः	स्थ
उत्तमपुरुषः	अस्मि	स्वः	स्मः

टिप्पणी

टिप्पणी

लोट् लकार (आज्ञा)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
मध्यमपुरुषः	एधि	स्तम्	स्त
उत्तमपुरुषः	असानि	असाव	असाम

लृट् लकार (भविष्यत् काल)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
मध्यमपुरुषः	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उत्तमपुरुषः	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

लङ् लकार (भूतकाल)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
मध्यमपुरुषः	आसीः	आस्तम्	आस्त
उत्तमपुरुषः	आसम्	आस्व	आस्म

विधिलिङ् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	स्यात्	स्याताम्	स्युः
मध्यमपुरुषः	स्याः	स्यातम्	स्यात
उत्तमपुरुषः	स्याम्	स्याव	स्याम

5. रुधादिगणीय 'रुध् (रुधिर आवरणे)' परस्मैपद

लट् लकार (वर्तमानकाल)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	रुणद्धि	रुन्धः/रुन्द्धः	रुन्धन्ति
मध्यमपुरुषः	रुणत्सि	रुन्धः/रुन्द्धः	रुन्ध/रुन्द्ध
उत्तमपुरुषः	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः

लोट् लकारः (आज्ञा)

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	रुन्धात्/रुन्द्धात्/ रुन्धाद्/रुन्द्धाद् रुणद्धु	रुन्धाम्/रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु

टिप्पणी

मध्यमपुरुषः	रुन्धात्/रुन्द्धात्/ रुन्धात्/रुन्द्धाद्/ रुन्धि/रुन्द्धि	रुन्धम्/रुन्द्धम्	रुन्ध/रुन्द्ध
उत्तमपुरुषः	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

लृट् लकार (भविष्यत् काल)

पुरुषः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमपुरुषः	रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति
मध्यमपुरुषः	रोत्स्यसि	रोत्स्यथः	रोत्स्यथ
उत्तमपुरुषः	रोत्स्यामि	रोत्स्यावः	रोत्स्यामः

लङ् लकार (भूतकाल)

पुरुषः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमपुरुषः	अरुणत्/अरुणद्	अरुन्धाम्/ अरुन्द्धाम्	अरुन्धम्
मध्यमपुरुषः	अरुणः/अरुणात्/ अरुणद्	अरुन्धम्/ अरुन्द्धम्	अरुन्ध/अरुन्द्ध
उत्तमपुरुषः	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म

विधिलिङ् लकार (विध्यादि अर्थ)

पुरुषः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमपुरुषः	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः
मध्यमपुरुषः	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उत्तमपुरुषः	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम

6. क्रयादिगणीय क्री धातु

लट् लकार

पुरुषः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमपुरुषः	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
मध्यमपुरुषः	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
उत्तमपुरुषः	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

लोट् लकार

पुरुषः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमपुरुषः	क्रीणातु/क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
मध्यमपुरुषः	क्रीणीहि/क्रीणीतात्	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उत्तमपुरुषः	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

टिप्पणी

लृट् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति
मध्यमपुरुषः	क्रेष्यसि	क्रेष्यथः	क्रेष्यथ
उत्तमपुरुषः	क्रेष्यामि	क्रेष्यावः	क्रेष्यामः

लङ् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
मध्यमपुरुषः	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उत्तमपुरुषः	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

विधिलिङ् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः
मध्यमपुरुषः	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उत्तमपुरुषः	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

7. चुरादिगणीय चुर् धातु

लट् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
मध्यमपुरुषः	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
उत्तमपुरुषः	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः

लोट् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु
मध्यमपुरुषः	चोरय	चोरयतम्	चोरयत
उत्तमपुरुषः	चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम

लृट् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति
मध्यमपुरुषः	चोरयिष्यसि	चोरयिष्यथः	चोरयिष्यथ
उत्तमपुरुषः	चोरयिष्यामि	चोरयिष्यावः	चोरयिष्यामः

लङ् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
मध्यमपुरुषः	अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत
उत्तमपुरुषः	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम

विधिलिङ् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः
मध्यमपुरुषः	चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत
उत्तमपुरुषः	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम

8. सेव् धातु रूप (आत्मनेपदी)

लट् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	सेवते	सेवेते	सेवन्ते
मध्यमपुरुषः	सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे
उत्तमपुरुषः	सेवे	सेवावहे	सेवामहे

लोट् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
मध्यमपुरुषः	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
उत्तमपुरुषः	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

लृट् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
मध्यमपुरुषः	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
उत्तमपुरुषः	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे

लङ् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	असेवत	असेवेताम्	असेवन्त
मध्यमपुरुषः	असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्
उत्तमपुरुषः	असेवे	असेवावहि	असेवामहि

टिप्पणी

टिप्पणी

विधिलिङ् लकार

पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
मध्यमपुरुषः	सेवेथाः	सवेयाथाम्	सेवेध्वम्
उत्तमपुरुषः	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

अपनी प्रगति जांचिए

4. 'कृ' धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरुष का एक वचन का रूप बताइए।
   (क) कुर्याः (ख) कुरु
   (ग) कुर्यात (घ) करोषि
5. 'क्री' धातु लङ लकार उत्तम पुरुष द्विवचन का रूप बताइए।
   (क) क्रीणावः (ख) क्रीणव
   (ग) क्रीणेव (घ) अक्रीणीव
6. 'सेव्' धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन का रूप बताइए।
   (क) सेवेयाताम् (ख) सेवयाथाम्
   (ग) सेवताम् (घ) सेवताम्

3.4 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (घ)
4. (क)
5. (घ)
6. (क)

3.5 सारांश

शब्द रूपों में अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूपों के अन्तर्गत, आकारान्त, ईकारान्त, ऊकारान्त, ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के अन्तर्गत तथा अकारान्त, इकारान्त, नपुंसकलिङ्ग शब्द रूपों के अन्तर्गत तथा सर्व पुंल्लिङ्ग रूपों के अन्तर्गत 'णत्व विधान' का प्रसंगानुसार बोध आवश्यक है। इस विधान में 'रेफ् (र्)' के बाद आने वाले अपदान्त 'न्' को ण् में परिवर्तित करना अनिवार्य होता है जब 'रेफ् और

टिप्पणी

न्' के मध्य कवर्ग, पवर्ग, किसी भी स्वर तथा ह्, य्, व् व्यंजनों के अतिरिक्त अन्य कोई बाधा न आए। इसी कारण रामेण, रामाणाम्, गृहेण, गृहाणाम्, रमाणाम्, पितृणा, पितृणाम् और मातृणाम् आदि पदों में 'णत्व' की उपस्थिति देखी जा सकती है। 'चुर्' धातु के लोट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन के रूप 'चोरयाणि' में भी इसी नियम से 'णत्व' को देखा जाता है। इस नियम का उल्लंघन करने से प्रयोग में 'चोरयानि' शब्द को लाना अनुचित होगा।

शब्द रूपों व धातु रूपों के निर्मित हो जाने पर इनकी 'पद' संज्ञा हो जाती है। किसी भी शब्द अथवा धातु के पद बन जाने पर ही उसका वाक्य में प्रयोग किया जा सकता है। इसीलिए कहा जाता है, 'अपदं न प्रयुञ्जीत'।

राम, कवि, भानु- क्रमशः अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द है। प्रत्येक के प्रथमा विभक्ति एकवचन में 'विसर्ग (:)' जुड़ने से 'कर्ता एकवचन' के लिए रूप की प्राप्ति हो जाती है।

प्रथमा विभक्ति और द्वितीय विभक्ति के द्विवचन में अकारान्त (राम) के पीछे 'औ' की मात्रा (ौ) जुड़ती है।

प्रथमा के बहुवचन में 'अकारान्त (राम)' में 'आः (ाः)' जुड़ता है जबकि 'इकारान्त व 'उकारान्त' में क्रमशः 'इ' के स्थान पर 'अयः' और 'उ' के स्थान में 'अवः' हो जाते हैं (कवयः, भानवः)। इन्हें आप 'इ' से 'यद्यपि' में 'य्' बनने से और 'स्वागत' में 'उ' के व् बनने से भी याद रख सकते हैं।

द्वितीया के एकवचन में सभी शब्दों में 'म्' अथवा 'अम्' का प्रयोग देखा जा सकता है- रामम्, कविम्, भानुम्, पितरम्, लताम् मतिम्, नदीम्, धेनुम्, मातरम्, फलम्, माम्, त्वाम्, सर्वम्, तम्, एतम्, एकम् (पुंल्लिङ्ग) सर्वाम्, ताम्, एताम्, एकाम् (स्त्रीलिङ्ग)।

द्वितीया बहुवचन में अन्तिम स्वर को बड़ा करके पीछे 'न्' जोड़ना अनेक पुंल्लिङ्ग शब्दों व अस्मद्, युष्मद् की भी समानता है, यथा-

रामान्, कवीन्, भानून्, पितॄन्, अस्मान्, युष्मान्, एतान्, तान्, त्रीन् आदि।

तृतीया एकवचन का सुबन्त प्रत्यय 'टा (आ)' है। यह- 'आ, एन, इना, उना' में बदलकर विभिन्न रूप में सामने आता है, यथा- भगवता, पित्रा, लतया, नद्या, मत्या, धेन्वा, मात्रा, फलेन, रामेण, मया, त्वया सर्वेण, तेन, एतेन, एकेन, सर्वया, तया, एतया, एकया। चतुर्थी एकवचन का सुबन्त प्रत्यय 'ङे् (ए)', 'आय, आयै, स्मै, स्यै, ए व ऐ, रूपों में प्रायः देखने में आता है, यथा- रामाय, लतायै, तस्मै, तस्यै, पित्रे, मात्रे, विदुषे, भगवते, नद्यै, धेन्वै आदि।

पंचमी एकवचन के प्रत्यय ङस् (अः) के दिखाई देने वाले रूप अः, आत्, आयाः, याः, एः, ओः, स्याः आदि हैं, यथा- भगवतः, रामात्, फलात्, लतायाः, तस्याः, नद्याः, मतेः आदि।

षष्ठी एकवचन में - 'स्य', पुंल्लिङ्ग/नपुंसकलिङ्ग अकारान्त में विशेष है, अन्यथा सर्वत्र 'पंचमी और षष्ठी' के एकवचन एक जैसे होते हैं। यथा-

रामस्य, भगवतः, लतायाः आदि।

टिप्पणी

सप्तमी एकवचन का सुबन्त 'ङसि (इ)' प्रत्यय प्रायः इ, ए, आयाम् औ, स्मिन्, स्याम् रूपों में मिलता है। यथा-

भगवति, पितरि, मातरि, रामे (=राम+इ) लतायाम्, तस्याम्, तस्मिन् आदि।

इन मुख्य समानताओं को देखते हुए- प्रमुख समानताओं व अपवादों को चिह्नित कर लेने पर रूपों को रटना अनपेक्षित ही रह जाता है। कुछ समय इनका वाक्य-प्रयोग का अभ्यास करने के पश्चात तो ये व्यवहार का ही अंग बन जाते हैं।

जहाँ तक धातु रूपों की बात है उनमें तो किसी एक धातु के पांचों लकार जब व्यवहार में आ जाते हैं तब शेष धातुओं के वैसे ही रूपों को जान लेना और प्रयोग करना अत्यन्त सरल है।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **सुबन्त** - सु, और जस् आदि प्रत्ययों से युक्त
- **तिङन्त** - तिप्, तस्, झि आदि प्रत्ययों से युक्त
- **ते** - तुम्हारा/तुम्हारे लिए
- **त्वा/त्वाम्** - तुम्हें

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. 'राम' शब्द के तृतीया व चतुर्थी विभक्ति के सभी वचनों में रूप लिखिए।
2. वधू शब्द के चतुर्थी, पञ्चमी व सप्तमी विभक्ति के सभी वचनों में रूप लिखिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. वधू शब्द के रूप सभी विभक्ति तथा वचनों में लिखिए।
2. सेव् धातु के रूप पांचों लकारों में लिखिए।

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. रूपचन्द्रिका- लेखक रामचन्द्र, प्रकाशक चौखम्भा ओरियण्टालिया बैंग्लो रोड, दिल्ली- 110007
2. शब्दकल्पद्रुमः लेखक रामचन्द्र, प्रकाशक चौखम्भा ओरियण्टालिया बैंग्लो रोड, दिल्ली- 110007

इकाई 4 लघुसिद्धान्तकौमुदी (प्रत्याहार, संज्ञा एवं सन्धि)

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 प्रत्याहार–प्रकरणम्
4.3 संज्ञा–प्रकरणम्
4.4 सन्धि–प्रकरणम्
  4.4.1 अच्सन्धि / स्वरसन्धि
  4.4.2 हल्सन्धि / व्यंजन सन्धि
  4.4.3 विसर्ग सन्धि
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

वरदराज लिखित लघुसिद्धान्तकौमुदी प्राचीन संस्कृत व्याकरण परम्परा का लघुतम सूत्रात्मक ग्रंथ है। पाणिनि की अष्टाध्यायी से भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी तक के विस्तृत व्याकरण समुद्र का मंथन करने के पश्चात् वरदराज ने संक्षिप्त रूप से यह रत्नरूप ग्रंथ व्याकरण के छात्रों के सुखबोध के लिए रचा है। तथापि लघुसिद्धान्तकौमुदी का सम्यक् अध्ययन करने के लिए जहां चौदह माहेश्वर सूत्रों से प्रत्याहार निर्माण की विधि का ज्ञान और प्रमुख संज्ञापदों की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है, वहीं तीनों प्रकार की सन्धियों को जाने बिना तो अनेक सूत्रों के अर्थ जानना भी असंभवप्राय है।

चौदह माहेश्वर सूत्रों से अण्, इण् आदि अनेक प्रत्याहारों का निर्माण होता है। संज्ञा सूत्रों में अनेक परिभाषाएँ भी समाहित हैं। सन्धि के अन्तर्गत लघुसिद्धान्त के सूत्रों में क्रमशः स्वर, व्यंजन और विसर्ग सन्धि के सूत्र व्याख्या व उदाहरण सहित बताए गए हैं। यद्यपि व्यंजन सन्धि और विसर्ग सन्धि के विभिन्न भेद अपने विशिष्ट नामों से विख्यात नहीं हैं, तथापि स्वर–सन्धि के भेद सवर्ण / दीर्घ, गुण, वृद्धि, यण्, अयादि, पूर्णरूप, प्रगृह्य आदि नामों से विख्यात हैं। सामान्यतः विद्यालयीय स्तर पर इन्हें इसी क्रम में अध्ययन सामग्री का अंश भी बनाया जाता है। महाविद्यालयीय स्तर पर लघुसिद्धान्तकौमुदी के सूत्रों द्वारा स्वर सन्धि के भेद क्रमशः यण्, अयादि, गुण, वृद्धि, पररूप सवर्ण, पूर्वरूप तथा प्रगृह्य (प्रकृतिभाव) नाम से अध्येतव्य हैं।

इस इकाई में प्रत्याहार और संज्ञा प्रकरण के सूत्रों का समाधान करते हुए सन्धि से संबंधित 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' के समस्त सूत्रों का सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

टिप्पणी

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- चौदह माहेश्वर सूत्रों की प्रक्रिया अर्थात प्रत्याहार सूत्रों का परिचय जान पाएंगे;
- इत्, लोप आदि संज्ञा शब्दों का तात्पर्य जान पाएंगे;
- संधि के यण्, अयादि, गुण आदि भेदों से संबंधित सूत्रों, वार्तिकों तथा उदाहरणों की व्याख्या कर पाएंगे;
- संधि के नियमों के विकल्पों व अपवादों को समझ पाएंगे।

4.2 प्रत्याहार–प्रकरणम्

प्रत्याहार सूत्राणि

अइउण् ।1। ऋऌक् ।2। एओङ् ।3। ऐऔच् ।4। हयवरट् ।5। लण् ।6। ञमङणनम् ।7। झभञ् ।8। घढधष् ।9। जबगडदश् ।10। खफछठथचटतव् ।11। कपय् ।12। शषसर् ।13। हल् ।14।

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि। एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकारः (हकारादिषु + अकारः) उच्चारणार्थः (अतः 'ह' = ह्)। लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः।

व्याख्या – भगवान शिव द्वारा प्रदत्त ये 14 सूत्र माहेश्वर सूत्र के नाम से जाने जाते हैं। इन्हीं से अण् आदि प्रत्याहारों का निर्माण किया जाता है।

आदिरन्त्येन सहेता 1.1.70

"अन्त्येनेता सहिता आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्।" यथा अण् इति अ इ उ वर्णानां संज्ञा। एवम् अक् अच्, हल् अलित्यादयः।

व्याख्या –प्रारम्भिक वर्ण के साथ जब अन्तिम इत्संज्ञक वर्ण का उच्चारण किया जाता है तो वह नाम आदि वर्ण के साथ इत्संज्ञक वर्ण तक आने वाले वर्णों का भी होता है। जैसे अइउण् इस सूत्र के अन्तर्गत प्रारम्भिक वर्ण 'अ' तथा अन्तिम इत्संज्ञक वर्ण 'ण्' है इस प्रकार अण् संज्ञा 'अ' से लेकर 'ण्' तक के समस्त वर्णों की होती है।

उल्लिखित नियमानुसार 'अण्' कहने का अभिप्राय 'अ, इ और उ' तीन ह्रस्व स्वर हैं। अन्तिम 'ण्' केवल उच्चारण के लिए आदि प्रत्याहार के नामकरण के लिए ज्ञातव्य है। इसी प्रकार 'अक्' में 'अइउण्' और 'ऋऌक्' ये दो प्रत्याहार समाविष्ट हो जाते हैं, किन्तु 'अक्' में समाए हुए 'ण' और 'क्' की अभिव्यक्ति 'अक्' से नहीं होती है। 'अक्' के द्वारा 'अ, इ, उ, ऋ तथा ऌ' ये पांच ह्रस्व स्वर हैं। तथापि ये पांचों स्वर अपने दीर्घ स्वरों को भी अभिव्यक्त करते हैं। 'अ' ह्रस्व और दीर्घ (आ) दोनों स्वरों का प्रतिनिधि है, किन्तु 'अ' के साथ 'त्' जोड़ देने पर (अत्) वह केवल ह्रस्व 'अ' को ही प्रकट करता है। ऐसा निर्देश 'तपरः तत्कालस्य' सूत्र से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रत्याहारों का निर्माण किसी भी प्रत्याहार के बीच के वर्ण से भी प्रारंभ हो सकता है, किन्तु उसके अंत में आने वाले किसी प्रत्याहार का अंतिम व्यंजन ही होना चाहिए। उदाहरण के लिए 'इक्' से अभिप्राय 'इ, उ, ऋ, ऌ' ये चार स्वर हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. 'अक्' प्रत्याहार से किन वर्णों को जाना जाता है?

(क) अ और क् (ख) अ, इ, उ

(ग) अ और क् (घ) अ, इ, उ, ऋ लृ

2. माहेश्वर सूत्रों की संख्या कितनी है?

(क) चौदह (ख) पंद्रह

(ग) सोलह (घ) बीस

4.3 संज्ञा–प्रकरणम्

हलन्त्यम् 1.1.3

उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात्। उपदेश आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र।

व्याख्या – उपदेश अवस्था में जो अन्तिम हल् (व्यंजन) होता है वह इत्संज्ञक होता है। पाणिनि ने जिस रूप में सूत्र का उच्चारण किया है, वह उपदेश कहा गया है।

अदर्शनं लोपः 1.1.60

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्।

व्याख्या – विद्यमान होते हुए भी जो दिखाई नहीं देता है उसकी लोप संज्ञा होती है, जैसे अइउण् इस सूत्र में ण् दिखाई देता है लेकिन व्यवहार में अन्तिम हल् को नहीं गिना जाता है।

तस्य लोपः 1.3.9

तस्येतो लोपः स्यात्। णादयोऽणाद्यर्थाः।

14. माहेश्वर सूत्रों में प्रयुक्त (णादयः) ण् आदि ('अण' आदि अर्थाः) 'अण्' आदि 42 प्रत्याहारों को बनाने के लिए है।

व्याख्या – हलन्त्यम् सूत्र से जिसकी इत्संज्ञा हुई है, उसका लोप हो जाता है।

ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः 1.2.27

उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः। वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादि भेदेन त्रिधा।

व्याख्या – 'उ' के उच्चारण में लगने वाला समय एक मात्रा काल कहलाता है। और इसे ह्रस्व स्वर कहा जाता है। ऊ के उच्चारण में दो मात्रा का समय लगता है तथा इसकी दीर्घसंज्ञा होती है और जिस प्रकार के उच्चारण में तीन मात्रा का समय लगता है, उस स्वर की प्लुत संज्ञा होती है। प्रत्येक स्वर के तीन भेद होते हैं:

1. उदात्त 2. अनुदात्त तथा 3. स्वरित।

उच्चैरुदात्तः 1.2.29

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञः स्यात्।

व्याख्या –जो स्वर तालु आदि के ऊपर के हिस्से से उच्चारित किए जाते हैं उन्हें उदात्त स्वर कहा जाता है।

नीचैरनुदात्तः 1.2.30

टिप्पणी

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानष्वधोभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तसंज्ञः स्यात्।

व्याख्या –जो स्वर तालु आदि के नीचे के भाग से बोले जाते हैं उन्हें अनुदात्त स्वर कहा जाता है।

समाहारः स्वरितः 1.2.31

उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाहियेते यत्र सोऽच् स्वरितसंज्ञः स्यात्। स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकभेदेन द्विधा।

व्याख्या –जो वर्ण तालु आदि के मध्य भाग से बोले जाते हैं उन्हें स्वरित नाम से जाना जाता है। नौ प्रकार का होने पर भी वह स्वर नौ में से प्रत्येक भेद अनुनासिक, अननुनासिक होने से दो–दो प्रकार का होता है।

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः 1.1.8

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्। तदित्थम् – 'अ इ उ ऋ' एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादशभेदाः। लृ वर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात्। एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्।

व्याख्याः वर्णों का उच्चारण तीन स्थानों से होता हैः 1. मुख 2. नासिका 3. मुख तथा नासिका दोनों से। सामान्य वर्ण केवल मुख से बोला जाता है। जो वर्ण नासिका से उच्चारित होते हैं वे नासिक्य कहे जाते हैं तथा वे वर्ण जो मुख सहित नासिका से उच्चारित किए जाते हैं अनुनासिक वर्ण कहे जाते हैं।

इस प्रकार अ इ उ और ऋ – इन चार स्वर वर्णों में से प्रत्येक के उपर्युक्त 18–18 भेद होते हैं। 'लृ' वर्ण के केवल 12 भेद होते हैं क्योंकि उसके दीर्घ वाले 6 भेद नहीं होते। एच् प्रत्याहार के भी प्रत्येक के केवल 12–12 भेद होते हैं, 6–6 ह्रस्व वाले भेद नहीं होते हैं।

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् 1.1.9

ताल्वादिस्थानमाभ्यान्तरप्रयत्नश्चेत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्।

व्याख्या –वर्णों के उच्चारण हेतु जो प्रयास किया जाता है उसे प्रयत्न कहते हैं। यह प्रयत्न दो प्रकार का होता हैः 1. आभ्यन्तर 2 बाह्य। इनमें से वर्ण के उच्चारण में मुख के अन्दर होने वाला प्रयत्न आभ्यन्तर तथा वर्ण को बाहर प्रकट करने हेतु किया गया प्रयास बाह्य कहलाता है। इस सूत्र के अनुसार जिन वर्णों के उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न समान होते हैं उनकी सवर्ण संज्ञा होती है।

वर्णों का उच्चारण निम्न प्रकार से होता है –

1. अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। 2. इचुयशानां तालु। 3. ऋटुरषाणां मूर्धा। 4. लृतुलसानां दन्ताः। 5. उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। 6. ञमङणनानां नासिका च। 7. एदैतोः कण्ठतालु। 8. ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। 9. वकारस्य दन्तोष्ठम्। 10. जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। 11. नासिकाऽनुस्वारस्य।

टिप्पणी

'अ, कवर्ग, ह तथा विसर्ग' का उच्चारण स्थान कण्ठ है। 'इ, चवर्ग य तथा श' तालु से उच्चारित होते हैं, 'ऋ' टवर्ग र तथा ष' का उच्चारण स्थान मूर्धा है। 'लृ' तवर्ग ल तथा स' तालु से बोले जाते हैं। उ, पवर्ग 'जो कि उपध्मानीय वर्ण है इनका उच्चारण स्थान ओष्ठ' है। ञ्, म् ङ् ण् न् का उच्चारण स्थान मुख तथा नासिका है। ए, ऐ का उच्चारण स्थान कण्ठ–तालु है। ओ – औ का उच्चारण स्थान कण्ठोष्ठ है। व का उच्चारण स्थान दन्तोष्ठ है। जिह्वामूलीय वर्णों का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है तथा अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है।

प्रयत्नः

यत्नो द्विधा – आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यः पंचधा–स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात्। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्माणाम्। विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव।

बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा – विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति। खरो विवाराः श्वासाः अघोषाश्च। हशः संवारा नादा घोषाश्च। वर्गाणां प्रथम–तृतीय–पंचमा यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः। कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोन्तरस्थाः। शल ऊष्माणः। अचः स्वराः। क ख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः। प फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः। अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ।

व्याख्या– यत्न दो प्रकार का होता हैः आभ्यंतर और बाह्य। इन दोनों में प्रथम आभ्यंतर प्रयत्न 5 प्रकार का होता है– स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत तथा संवृत। क से म तथा स्पर्श व्यंजनों का प्रयत्न स्पृष्ट है। अन्तस्थ वर्ण य व र ल का प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट है। श ष य ह का प्रयत्न ईषद्विवृत है। स्वरों का प्रयत्न विवृत है तथा ह्रस्व अकार प्रयोग में संवृत प्रयत्न वाला होता है तथापि प्रक्रिया दशा में विवृत होता है।

बाह्य प्रयत्न 11 प्रकार के होते हैं, जो निम्न हैं – विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित। इनके नामों का अभिप्राय इनको व्यवहार में लाने से जाना जा सकता है। खर प्रत्याहार के वर्णों (अर्थात वर्गों के प्रथम व द्वितीय वर्ण तथा श, ष, स) का बाह्य प्रयत्न विवार, श्वास, अघोष है। हश् प्रत्याहार के वर्णों का बाह्य प्रयत्न–संवार, नाद, घोष है। वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम वर्णों तथा यण प्रत्याहार का बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण है। वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ वर्णों तथा शल् प्रत्याहार का बाह्य–प्रयत्न महाप्राण है। 'क्' से लेकर 'म्' तक के वर्ण स्पर्श कहे जाते हैं। 'यण्' अन्तस्थ कहा जाता है। 'शल्' को ऊष्म कहा जाता है। 'अच्' प्रत्याहार के सभी वर्ण स्वर कहलाते हैं। ध्वनियों को ही 'जिह्वामूलीय' अथवा 'उपध्मानीय' कहा जाता है। किसी भी स्वर–वर्ण के पश्चात् आने वाले (ं) तथा (ाः) को अनुस्वार और विसर्ग कहा जाता है।

अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः 1.1.69

प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः। अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात्। अत्रैव अण् परेण णकारेण। कु चु टु तु पु एते उदितः।

तदेवम् – 'अ' इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ। ऋकारस्त्रिंशतः। एवं लृकारोऽपि। एचो द्वादशानां। अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा। तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा।

टिप्पणी

व्याख्या– अण् प्रत्याहार में आने वाले वर्ण तथा जिनमें उ की इत्संज्ञा होती है वे वर्ण अपने सवर्ण को भी ग्रहण करते हैं। ण् अनुबंध अण् तथा लण् इन दो सूत्रों में आया है। यहां अण् प्रत्याहार के अन्तर्गत अ से लेकर लण् के ण् तक बीच में आने वाले सभी वर्णों का अण् के अन्तर्गत समावेश किया जायेगा।

जिसका किसी सूत्र के द्वारा विधान किया जाता है वह प्रत्यय कहलाता है जैसे– प्रत्यय, आदेश, आगम आदि। जिसका किसी सूत्र के द्वारा विधान न हुआ हो, वह अप्रत्यय अर्थात् 'अविधीयमान' कहलाता है। अविधीयमान अण् प्रत्याहार स्थित वर्ण तथा विधीयमान पांचों वर्गों के सभी वर्ण अपना तथा अपने सवर्णों का भी बोध कराते हैं।

इस सूत्र के प्रयोग में ही अण् प्रत्याहार पर (बाद वाले) अर्थात् 'लण्' सूत्र के 'ण्' तक समझना चाहिए। 'कु, चु, टु, तु, पु' – इन सभी में 'उ' की इत्संज्ञा हो जाती है, तब क्, च्, ट्, त्, तथा प् शेष रह जाते हैं।

तो इस प्रकार 'अ' अपने 18 भेदों का बोध कराता है। उसी प्रकार 'इ' और 'उ' भी अपने–अपने 18 भेदों का बोध कराते हैं। 'ऋ' तीस प्रकारों का बोधक है एवं 'ऌ' भी तीस भेदों का बोधक है। ए, ओ, ऐ, औ– ये सभी स्वयं के 12–12 भेदों के बोधक हैं। अनुनासिक तथा अननुनासिक भेद से य्, व्, ल् दो भेदों वाले होते हैं। इसलिए अननुनासिक वे य्, व्, ल् दोनों ही भेदों के बोधक हैं अनुनासिक के भी अननुनासिक के भी।

परः सन्निकर्षः संहिता 1.4.108

वर्णानामतिशयितः संनिधिः संहितासंज्ञः स्यात्।

व्याख्या –वर्णों की अत्यन्त निकटता संहिता (सन्धि) होती है।

'अत्यधिक समीपता' से अभिप्राय व्यवधानरहित उच्चारण से है। जैसे – 'सुधी + उपास्यः' में 'ई' के पश्चात् बिना किसी व्यवधान के 'उ' आया है। अतः इन दोनों की समीपता ही 'संहिता' है।

हलोऽनन्तराः संयोगः 1.1.7

अञ्भिरव्यवहिताः हलः संयोगसंज्ञाः स्युः।

व्याख्या –जिन दो व्यंजनों के मध्य किसी स्वर का व्यवधान नहीं होता है उनका संयोग संज्ञा होती है। अर्थात् स्वर–वर्णों के व्यवधान से रहित दो अथवा दो से अधिक व्यंजनों का संयोग संज्ञा होता है।

सुप्तिङन्तं पदम् 1.1.14

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

व्याख्या –सुप् और तिङ् प्रत्यय जिनके अन्त में होते है उनकी पद संज्ञा कही जाती है। पद के मूल रूप को प्रातिपदिक या धातु कहते हैं। प्रातिपदिक से सुप् प्रत्यय जोड़ते हैं तथा धातु से तिङ् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। सुप् प्रत्ययों का प्रयोग करके संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि रूप बनाए जाते हैं जबकि तिङ् प्रत्ययों का प्रयोग करके धातु रूप बनाये जाते हैं। जैसे – सुबन्त में – राम + सु = रामः इत्यादि। तिङन्त में गम् (गच्छ्) + तिप् = गच्छति – इत्यादि।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. जिसका अदर्शन हो उसकी कौन–सी संज्ञा होती है।
   (क) अदृष्टि (ख) लोप
   (ग) गुप्त (घ) आंतरिक
4. उदात्त स्वर का उच्चारण किस स्थान से होता है?
   (क) तालु के ऊपरी भाग से (ख) नासिका से
   (ग) ऊपरी होंठ से (घ) दन्त से
5. पद संज्ञा में कितने प्रकार के प्रत्ययों की अपेक्षा होती है?
   (क) एक (ख) दो
   (ग) तीन (घ) चार

4.4 सन्धि–प्रकरणम्

प्रकृति और प्रत्यय को अथवा एक पद को दूसरे पद के साथ मिलाते समय पूर्व पद के अंतिम वर्ण तथा पर पद के आदि वर्ण में, दोनों में, अथवा दोनों के अतिरिक्त किसी भी वर्ण में जो विकार होता है, उसी को 'सन्धि' कहते हैं। यह परिवर्तन कभी आदेश के रूप में, कभी आगम रूप में, कभी द्वित्व रूप में, कभी लोप रूप में तथा कभी प्रकृतिभाव रूप में पाए जाते हैं।

यद्यपि संज्ञा प्रकरण के अन्तर्गत 'परः सन्निकर्षः संहिता' सूत्र में सन्धि की परिभाषा स्पष्ट की जा चुकी है। तथापि वर्णों के परस्पर होने वाले मेल से निर्दिष्ट विकार अथवा विकार निषेध को सन्धि के नियमों से जानना चाहिए।

सन्धियों को तीन भागों में विभक्त किया गया हैः

अच् सन्धि – प्रत्याहार 'अच्' में सभी स्वरों का समावेश हो जाता है, अतः अच् सन्धि का अभिप्राय स्वर संधि ही है।

हल् सन्धि – व्यंजनों में होने वाले परिवर्तन।

विसर्ग सन्धि – विसर्ग में होने वाले परिवर्तन।

4.4.1 अच्सन्धि / स्वरसन्धि

इको यणचि 6.1.74

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये। 'सुधी + उपास्य' इति स्थिते।

व्याख्या – इक् से परे अच् होने पर इक् के स्थान पर यण् होगा। इक् के अन्तर्गत इ, उ, ऋ और लृ वर्ण आते हैं तथा यण में य्, व्, र्, ल्। इक् से परे यदि अच् हो तो स्थानेऽन्तरतमः तथा यथासंख्यमनुदेशः समानाम् सूत्रों के आधार पर इ को य्, उ को व् ऋ को र् तथा लृ को ल् आदेश होगा। जैसे – सुधी + उपास्यः। यहां इस नियम के अनुसार इक् के स्थान पर यण् होगा परंतु यहां इक् (इ, उ ऋ आदि) होने के कारण यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि किस इक् के स्थान पर, यण् हो; इसका निराकरण अग्रिम सूत्र इस प्रकार करता हैः

टिप्पणी

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य 1.1.66

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्य वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्।

व्याख्या – सप्तम्यन्त पद के द्वारा जो कार्य विधीयमान हो वह सप्तम्यन्त पद से निर्दिष्ट पूर्व वर्ण पर ही होगा। जैसे – इको यणचि सूत्र में अचि पद सप्तमी विभक्ति में है अतः अच् से पूर्व वर्ण पर ही यह कार्य होगा। अतः धी के ईकार के स्थान पर ही यण् आदेश होगा (न कि 'सु' के 'उ' को)।

स्थानेऽन्तरतमः 1.1.50

प्रसङ्गे सति सदृशतमः आदेशः स्यात्। 'सुध् + य् + उपास्यः' इति जाते।

व्याख्या – उच्चारण स्थान की समीपता अत्यन्त सामीप्य मानी गई है। इस कारण जिस वर्ण का स्थानी के साथ उच्चारण स्थान का सामीप्य हो वही आदेश होगा। जैसे – सुधी + उपास्यः में ई का उच्चारण स्थान तालु है तथा य् का कण्ठतालु। अतः य् ही ई के सर्वाधिक निकट है। अतः ई के स्थान पर य् आदेश होगा और सुध् + 'य्' + उपास्यः स्थिति होगी।

अनचि च 8.4.47

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वम्।

व्याख्या – अच् से परे यर् को विकल्प से द्वित्व हो लेकिन यर् से परे अच् हो तो द्वित्व न हो। सुध् य् + उपास्यः यहां प्रकृत सूत्रों से अच् से परे यर् को विकल्प से द्वित्व होने पर धकार को द्वित्व होने पर सुध्ध्य् + उपास्यः यह स्थिति होगी तथा द्वित्व न होने पर 'सु ध् य् + उपास्य' स्थिति होगी। अब द्वित्व वाली स्थिति में–

झलां जश् झशि 8.4.53

स्पष्टम्। इति पूर्व धकारस्य दकारः।

व्याख्या – 'झल' प्रत्याहार से परे यदि झश् हो तो झल् को जश् आदेश होता है। जैसे – सुध्य् + उपास्यः इस उदाहरण में झल् ध् से परे झश् ध् है (ध् झल् तथा झश् दोनों के अंतर्गत है) अतः पूर्व ध् को जश् आदेश होगा अर्थात् प्रथम 'ध्' के स्थान पर 'द्' आदेश हो गया तथा सुद्ध्य् + उपास्यः यह स्थिति बनेगी।

संयोगान्तस्य लोपः 8.2.23

संयोगान्तं यत्पदं तदन्त्यस्य लोपः स्यात्।

व्याख्या – संयोग जिस पद के अन्त में हो उसके अन्तिम वर्ण का लोप होता है। इस सूत्र से अन्तिम वर्ण 'य्' का लोप प्राप्त हुआ।

अलोऽन्त्यस्य 1.1.52

षष्ठीनिर्दिष्टस्यान्त्यस्यालआदेशःस्यात्। इति यलोपे प्राप्ते –

व्याख्या – पष्ठी विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट आदेश अन्तिम वर्ण के स्थान पर होता है। जैसे – सुद्ध्य् + उपास्यः, इस उदाहरण में 'संयोगान्तस्य लोपः' इस सूत्र से पूरे शब्द रूप सुद्ध्य् के स्थान पर लोप आदेश प्राप्त होता है। परंतु सूत्र में संयोगान्तस्य पद में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है, इस कारण संयोगान्त पद के स्थान पर होने वाला आदेश षष्ठी निर्दिष्ट है। अतः सूत्रानुसार पूरे संयोगान्त पद का लोप न होकर

टिप्पणी

केवल अन्तिम वर्ण का ही लोप होगा और सुद्ध्य् + उपास्यः में सुद्ध्य् के अन्तिम वर्ण य् को लोप प्राप्त हुआ, लेकिन **वार्तिक 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः'** से संयोगान्त यण् का लोप नहीं होता। इस प्रकार व्यंजन तथा स्वरों के मेल से 'सुद्ध्युपास्यः' रूप हुआ क्योंकि 'अनचि च' इस सूत्र से ध को विकल्प से द्वित्व हुआ था इस कारण सुध्युपास्यः वैकल्पिक रूप भी बना।

इसी प्रकार मद्ध्वरिः तथा मध्वरिः, धात्त्रंशः तथा धात्रंशः, लाकृतिः आदि की सिद्धि होगी।

अयादि सन्धि

एचोऽयवायावः 6.1.78

एचः क्रमाद् अय्, अव्, आय्, आव् एते स्युरचि।

व्याख्या – एच् से परे अच् हो तो एच् (ए, ओ, ऐ, औ) के स्थान पर क्रमशः अय्, अव्, आय् व आव् आदेश होते हैं।

यथासंख्यमनुदेशः समानाम् 1.3.17

समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

व्याख्या – यदि स्थानी और आदेश दोनों की संख्या समान हो तो आदेश क्रमशः होते हैं। एच् में चार वर्ण हैं 'ए' 'ओ' 'ऐ' औ' उनके स्थान पर होने वाले आदेश भी चार अय्, अव्, आय्, आव् है। अतः इस सूत्र से ये आदेश क्रमशः ही होंगे यानि ए को अय्, ओ का अव्, ऐ को आय् तथा औ का आव् होगा। इसके उदाहरण हैं – हरे + ए = हरये, विष्णो + ए = विष्णवे, नै + अकः = नायकः, पौ + अकः = पावकः।

वान्तो यि प्रत्यये 1.6.79

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः। गव्यम्। नाव्यम्।

व्याख्या – यदि ओ और औ से परे कोई यकारादि प्रत्यय हो तो ओ को अव् तथा औ को आव् आदेश हो जाता है। जैसे – गो + यम् = गव्यम्। यहां गो शब्द से यत् प्रत्यय हुआ जो यकारादि प्रत्यय है इसलिए प्रकृत सूत्र से गो के ओ को अव् आदेश होगा। इसी तरह नौ + यम् = नाव्यम्।

वा. अध्वपरिमाणे च। गव्यूतिः।

व्याख्या – मार्ग को मापने के परिमाण अर्थ में भी गो शब्द से यूतिः शब्द के परे रहने पर ओ को अव् आदेश होता है जैसे गव्यूतिः = गो + यूति।

गुण सन्धि

अदेङ् गुणः 1.1.2

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात्।

व्याख्या – अत् (अ) और एङ् (ए, ओ) की गुण संज्ञा हो। अत् में अ से परे त् है। अतः **तपरस्तत्कालस्य** (1.1.70) ('त' जिसके अंत में हो वह अपने उच्चारण काल की सीमा में स्थापित होता है, 'अत्' का अर्थ केवल 'अ' होगा न कि 'अ' और 'आ') इस परिभाषा सूत्र के आधार पर यहां केवल 'अ' का ही ग्रहण होगा।

टिप्पणी

तपरस्तत्कालस्य 1.1.70

तः परो यस्मात् स च तात्परश्च उच्चार्यमाणसमकालस्यैव संज्ञा स्यात्।

व्याख्या – जिस स्वर से परे त् हो या त् से परे जो शब्द हो वह केवल उसी काल वाले स्वर को ग्रहण करता है जो सूत्र में उच्चारित है, जैसे – अत् में अ से परे तकार है। इस कारण केवल ह्रस्व अ ही ग्रहण होगा और यदि अ से परे त् न होता तो **अणुदितसवर्णस्य चाप्रत्ययः** सूत्र से दीर्घ और प्लुत अकार का भी ग्रहण हो जाता।

आद्गुणः 6.1.87

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात्। उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्।

व्याख्या – अवर्ण से परे यदि अच् हो तो पूर्व तथा पर दोनों स्वरों के स्थान पर गुण रूप ए आदेश होता है। यहां अ वर्ण ह्रस्व तथा दीर्घ आदि सभी अकारों के लिए है। जैसे – उप +इन्द्रः = उपेन्द्रः, यहां अवर्ण से परे अच् इ है अतः अ तथा इ इन दोनों के स्थान पर ए होकर उपेन्द्रः बनेगा। गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम्, यहां आ के पश्चात् उ है अतः दोनों के स्थान पर ओ आदेश होकर गङ्गोदकम् बना।

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यद्यपि सूत्र में अच् परे होने पर ऐसा कहा गया है परंतु यहां यह नियम इक् (इ, उ, ऋ) परे होने पर ही लागू होता है क्योंकि अ व आ परे होने पर तो दीर्घ सन्धि हो जाती है तथा एच् परे होने पर वृद्धि सन्धि होगी।

उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2

उपदेशेऽनुनासिकोऽज् इत्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः।

लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा।

व्याख्या – उपदेश अवस्था में अनुनासिक अच् इत्संज्ञक होता है।

पाणिनि ने जिन वर्णों को अनुनासिक होने की प्रतिज्ञा की है, उन्हें ही अनुनासिक मानना चाहिए। प्रारम्भिक चतुर्दश सूत्रों के अंतर्गत एक सूत्र 'लण्' भी है। इसमें 'ल' का 'अ' अनुनासिक (अँ) माना गया है। अतः "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" से 'अँ' की इत्संज्ञा होती है। परिणामस्वरूप 'हयवरट्' सूत्र से 'र' को लेकर उसके साथ इत्संज्ञक 'अ' को जोड़ने पर 'र' प्रत्याहार बनता है, जो 'र्' तथा 'ल्' दोनों का बोधक होता है।

उरण् रपरः 1.1.51

ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्। तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते। कृष्णर्द्धिः। तवल्कारः।

व्याख्या – ऋ के स्थान पर होने वाला अण् आदेश र परक होता है। ऋ से तात्पर्य ऋ तथा ऌ दोनों वर्णों से है। ऋ 18 प्रकार का तथा ऌ 12 प्रकार का माना गया है। इस प्रकार यदि अ से परे ऋ हो तो दोनों को स्थानेन्तरतमः सूत्र से अ गुण एकादेश होता है क्योंकि ऋ में अ ही गुण संज्ञक है अतः अ र् परक होकर इसी प्रकार अ से परे यदि ऌ हो तो दोनों के स्थान पर होने वाला अ गुण एकादेश होगा, यह अ ल् परक होगा। जैसे – कृष्ण + ऋद्धिः, यहां अ और ऋ के स्थान पर अर् होकर तथा कृष्णर्द्धिः रूप बनेगा। इसी प्रकार तव + ऌकारः में अ + ऌ के स्थान पर अल् एकादेश होकर तवल्कार बनेगा।

लोपः शाकल्यस्य 8.3.19

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे।

व्याख्या – यदि पद में अन्त में आए यकार और वकार से पूर्व अ या आ हो और बाद में अश् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो यकार और वकार का विकल्प से लोप हो जाता है।

टिप्पणी

पूर्वत्रासिद्धम् 8.2.1

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्। हर इह, हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह।

व्याख्या – असिद्ध का अभिप्राय है कि कार्य तो हो जाता है परंतु वह पूर्व सूत्र के द्वारा होने वाले कार्य के प्रति न हुए के समान ही माना जाता है। जैसे – हर + इह में एचोऽयवायावः सूत्र से ए के स्थान पर अय् आदेश होकर स्थिति हुई – हरय् + इह। यहाँ य् से पूर्व अ है और परे अश् प्रत्याहार का वर्ण इ। अतः लोपः शाकल्यस्य सूत्र से य् का विकल्प से लोप प्राप्त हुआ। तब स्थिति हुई – हर + इह। अब यहाँ आद्गुणः सूत्र से अ और इ को गुण एकादेश प्राप्त होता है। परंतु आद्गुणः सूत्र की संख्या है 6.1.87 और लोपः शाकल्यस्य सूत्र की संख्या है 8.3.19 अर्थात् यह सूत्र त्रिपादी का है। इसलिए आद्गुणः के प्रति लोपः शाकल्यस्य सूत्र असिद्ध हुआ अर्थात् इस सूत्र के द्वारा जो यकार का लोप हुआ है वह न हुए के समान माना जाएगा। इसलिए आद्गुणः सूत्र की प्राप्ति नहीं होगी और अ और इ के स्थान पर गुण सन्धि नहीं होगी। इसलिए हर इह यही रूप रहेगा क्योंकि य् का लोप विकल्प से हुआ है। इसलिए दूसरा रूप होगाः हरयिह।

वृद्धि सन्धि

वृद्धिरादैच् 1.1.1

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात्।

व्याख्या – आकार और ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा होती है।

वृद्धिरेचि 6.1.88

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। गुणापवादः। कृष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

व्याख्या – अ वर्ण से परे यदि एच् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो दोनों के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है। एच् प्रत्याहार में 'ए', 'ऐ', 'ओ', 'औ' वर्ण आते हैं। यह सूत्र आद्गुणः सूत्र का अपवाद है क्योंकि वहां अ वर्ण से परे अच् होने पर गुण सन्धि का विधान किया गया था। जैसे – कृष्ण + एकत्वम्, यहां अ वर्ण के पश्चात् एच् प्रत्याहार का वर्ण ए है। अतः दोनों के स्थान पर वृद्धि रूप एकादेश होगा। इसी प्रकार गङ्गौघः, देवैश्वर्यम्, कृष्णौत्कण्ठ्यम् आदि की सिद्धि भी होगी।

एत्येधत्यूठ्सु 6.1.89

अवर्णाद् एजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्।

पररूपगुणापवादः। उपैति। उपैधते। प्रष्ठौहः। एजाद्योः किम्–

उपेतः–मा भवान् प्रेदिधत्।

टिप्पणी

व्याख्या – अवर्ण से परे इण् और एध् धातु का एजादि रूप तथा ऊठ् परे हो तो पूर्व तथा पर दोनों के स्थान पर वृद्धि रूप एकादेश हो जाता है। जैसे उप + एति = उपैति। यद्यपि यहां वृद्धिरेचि सूत्र से भी वृद्धि हो सकती थी, लेकिन यहां आगे आने वाले सूत्र एङि पररूप एकादेश प्राप्त था। अतः अब पररूप का बाध कर इस सूत्र द्वारा पुनः वृद्धि का विधान किया गया है। इसी प्रकार प्रष्ठ + ऊहः में आद्गुणः सूत्र से गुण प्राप्त था जिसे बाध कर यहां प्रकृत सूत्र द्वारा वृद्धि की गई है।

वा. अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्। अक्षौहिणी सेना

व्याख्या – अक्ष से परे ऊहिनी शब्द हो तो पूर्व–पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है जैसे अक्ष + ऊहिनी, यहां अक्ष से परे ऊहिनी शब्द है अतः पूर्व तथा पर दोनों के स्थान पर वृद्धि रूप आदेश होकर अक्षौहिणी बना।

उपसर्गाः क्रियायोगे। 1.4.59

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः। प्र. परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप–एते प्रादयः।

व्याख्या – प्र आदि जब क्रिया के साथ प्रयोग में लिए जाएं, तब उनकी उपसर्ग संज्ञा होती है।

भूवादयो धातवः 1.3.1

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः।

व्याख्या – क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले भू आदि की धातु संज्ञा होती है।

उपसर्गादृति धातौ 6.1.91

अवर्णान्तादुपसर्गाद् ऋकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। प्रार्च्छति।

व्याख्या – अवर्णान्त उपसर्ग से परे यदि ऋकारादि धातु हो तो पूर्व तथा पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है। जैसे – प्र + ऋच्छति यहां अवर्णान्त प्र उपसर्ग से परे ऋकारादि धातु है, अतः पूर्व व पर के स्थान पर वृद्धि आर् हुई तथा प्रार्च्छति शब्द बना।

पररूप सन्धि

एङि पररूपम् 6.1.94

आदुपसर्गाद् एङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात्। प्रेजते। उपोषति।

व्याख्या – अवर्णान्त उपसर्ग से परे यदि एङ् (ए, ओ) से शुरू होने वाली धातु हो तो पूर्व तथा पर के स्थान पर पररूप एकादेश होता है जैसे – प्र + एजते, यहां अवर्णान्त उपसर्ग के बाद ए से शुरू होने वाली एजते धातु होने के कारण पूर्व–पर के स्थान पर पररूप आदेश होकर प्रेजते बना। इसी प्रकार उपोषति।

अचोऽन्त्यादि टिः 1.1.64

अचां मध्ये योऽन्त्यः, स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्।

व्याख्या – किसी शब्द के अन्तिम अच् से लेकर आगे आने वाले व्यंजनों सहित पूर्ण समुदाय की टि संज्ञा होती है। यहां तात्पर्य यह है कि किसी शब्द में कई स्वर

हो सकते हैं। उनमें से अंतिम स्वर जितने वर्णों के आदि में होता है उन सबकी 'टि' संज्ञा होती है। जैसे– 'मनस्' में 'न' का 'अ' ही अंतिम अच् (स्वर) है। यह 'स्' के आदि में आया है। अतः प्रकृत सूत्र से 'अस्' की टि संज्ञा होगी।

टिप्पणी

वा. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। तच्च टेः। शकन्धुः। कर्कन्धुः। मनीषा।

व्याख्या – शकन्धु आदि शब्दों में टि को पररूप होकर रूप सिद्ध होता है, जैसे – शक + अन्धुः, यहां शक के अन्तिम अच् अ जो कि टि संज्ञा है तथा अन्धु के अ दोनों को पररूप अकार एकादेश होकर शकन्धुः रूप बना। इसी प्रकार कर्कन्धुः, मनीषा आदि भी सिद्ध होंगे।

ओमाङोश्च 6.1.95

ओमि आङि चात् परे पररूपमेकादेशः स्यात्। शिवाया नमः। शिव एहि – इति स्थिते –

व्याख्या – शिव+आ+इति इस अवस्था के होने पर 'धातुपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम्' से अंतरंग होने पर सवर्णदीर्घ की असिद्धता होने पर 'आद् गुणः' से गुण होकर 'शिव+एहि', पुनः 'अन्तादिवच्च' 6/1/85 से अन्तवद्भाव होकर 'ओमाङोश्च' से पररूप होकर 'शिवेहि' सिद्ध हुआ।

सवर्णदीर्घ सन्धि

अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्। दैत्यारिः। श्रीशः। विष्णूदयः। होतृकारः।

व्याख्या – अक् प्रत्याहार के वर्ण से परे यदि सवर्ण अक् हो तो पूर्व–पर के स्थान पर दीर्घ एकादेश होता है। जैसे – दैत्य + अरिः = 'दैत्य + अ + अ + रिः' = 'दैत्य + आ + रिः' = दैत्यारिः। यहां अक् प्रत्याहर के अन्तर्गत आने वाले अ से परे सवर्ण अ है अतः प्रकृत सूत्र से दीर्घ रूप एकादेश होगा। इस प्रकार दैत्यारिः, श्रीशः, विष्णूदयः व होतृकारः आदि भी सिद्ध होंगे।

पूर्वरूप सन्धि

एङः पदान्तादति 6.1.109

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। हरेऽव। विष्णोऽव

व्याख्या – पद के अन्त में आने वाले ए ओ से परे यदि ह्रस्व अ हो तो उसके स्थान पर पूर्व रूप एक आदेश होता है। जैसे – हरे + अव, यहां पदान्त ए से परे ए है। अतः पूर्व तथा पर दोनों के स्थान पर पूर्वरूप ए कार आदेश होगा और हरेव रूप बनेगा, अकार के पूर्व रूप हो जाने पर भी स्पष्टता के लिए ऽ अवग्रह का चिह्न लगेगा।

सर्वत्र विभाषा गोः 6.1.122

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते। गो अग्रम्, गोऽग्रम्। एङन्तस्य किम्–चित्रग्वग्रम्। पदान्ते किम्–गोः।

व्याख्या – एङन्त गो से परे यदि ह्रस्व अ हो तो सर्वत्र विकल्प से प्रकृति भाव होगा, यदि वह पद के अन्त में हो। जैसे – गो + अग्रम्, यहां गो पद में ओ पदान्त

टिप्पणी

है, उसके बाद अ है अतः प्रकृत सूत्र से प्रकृतिभाव होगा और गो अग्रम् रूप रहेगा। विकल्प पक्ष में पूर्वरूप एकादेश होकर गोऽग्रम् रूप भी बनेगा। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि प्रकृतिभाव क्या होता है वैसा का वैसा ही रहना अर्थात् सन्धि न होना प्रकृतिभाव कहलाता है।

अनेकाल् शित सर्वस्य 1.1.55

इति प्राप्ते

व्याख्या – जिस आदेश में एक से अधिक अल् हो अथवा जिसमें शकार की इत्संज्ञा हो वहां वह आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है। यह सूत्र अलोन्त्यस्य का अपवाद है।

ङिच्च 1.1.53

ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्।

व्याख्या – यदि आदेश ङित् हो तो अनेकाल् (अनेक वर्ण वाला) होने पर भी अन्तिम अल् के स्थान पर ही होता है।

अवङ् स्फोटायनस्य 6.1.123

पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वा स्यादचि। गवाग्रम्, गोऽग्रम्। पदान्ते किम् – गवि।

व्याख्या – एङन्त गो पद के स्थान पर विकल्प से अवङ् आदेश होता है। अवङ् के ङित् होने के कारण यह आदेश अन्तिम अल् गो के स्थान पर ही होता है। जैसे – गो + अग्रम् = गवाग्रम्। विकल्प पक्ष में गो + अग्रम् = गो अग्रम् (प्रकृतिभाव से) गोऽग्रम् (एङः पदान्तादति से)।

इन्द्रे च 6.1.124

गोरवङ्स्यादिन्द्रे। गवेन्द्रः

व्याख्या – इन्द्र शब्द परे होने पर गो को अवङ् आदेश होता है। गो + इन्द्रः, यहां शब्द बाद में होने के कारण गो को अवङ् आदेश होकर गव + इन्द्र बना फिर आद्गुणः से गुण होकर गवेन्द्रः बना।

दूराद्धूते च 8.2.84

दूरात् संबोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा।

व्याख्या – दूर से पुकारने अथवा सम्बोधन में प्रयुक्त वाक्य की (टेः) 'टि' विकल्प करके (प्लुत उदात्तः) प्लुत और उदात्त होती है। जैसे – आगच्छ कृष्ण३ में वाक्य की टि (ण् का 'अ') 'प्लुत' है।

प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्। 6.1.121

एतेऽचि प्रकृत्या स्युः। आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति।

व्याख्या – प्लुत और प्रगृह्य संज्ञक स्वर के पश्चात् कोई स्वर वर्ण आये तो नित्य प्रकृतिभाव होता है। जैसे – 'आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति'। यहां 'ण्' के पश्चात् आया हुआ 'अ' प्लुत है तथा उसके पश्चात् 'अत्र' का 'अ' आया है। अतः प्रकृतिभाव होने से यहां दीर्घ एकादेश नहीं होता है।

प्रगृह्य सन्धि

टिप्पणी

ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् 1.1.11

ईदूदेदन्तं द्विक्चनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात्। हरी एतौ। विष्णू इमौ। गंगे अमू।

व्याख्या – द्विवचन शब्द यदि ईकारान्त, ऊकारान्त अथवा एकारान्त हो तो उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है और प्रगृह्य संज्ञा के कारण प्रकृतिभाव होता है। जैसे – हरी + एतौ, यहां द्विवचन शब्द ईकारान्त होने के कारण प्रगृह्य संज्ञक हुआ और उसके कारण प्रकृतिभाव हुआ और हरी एतौ ही रहा। इसी प्रकार विष्णू इमौ, गंगे अमू भी सिद्ध होंगे।

अदसो मात् 1.1.12

अस्मात् परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः। अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसते।

व्याख्या – अदस् शब्द के मकार से परे ईकार, ऊकार और एकार प्रगृह्य संज्ञक होते हैं, जैसे – अमी + ईशाः, यहां अदस् शब्द के म से परे ई होने के कारण ई की प्रगृह्य संज्ञा हुई और उसके कारण प्रकृतिभाव हुआ इसीलिए अमी + ईशाः में दीर्घ सन्धि नहीं हुई और अमी ईशा ही रहा।

चादयोऽसत्त्वे 1.4.57

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः।

व्याख्या – च आदि शब्द जब द्रव्य अर्थ में प्रयुक्त नहीं होते तब उनकी निपात संज्ञा होती है।

प्रादयः 1.4.58

एतेऽपि तथा।

व्याख्या – प्र आदि भी निपात संज्ञक होते हैं।

निपात एकाजनाङ् 1.1.14

एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यं स्यात्। इ इन्द्रः। उ उमेशः।

व्याख्या – जो निपात केवल एक अच् मात्र होता है उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है, लेकिन आङ् की नहीं होती। जैसे – इ इन्द्रः, यहां इ निपात एक अच् मात्र है। अतः प्रगृह्य संज्ञा हुई और दीर्घ सन्धि नहीं। आङ् का आ शेष रहता है जैसे – आ + उष्णम्, यहां आङ् का आ यद्यपि एक अच् मात्र है फिर भी प्रकृत सूत्र द्वारा यहां इसकी प्रगृह्य संज्ञा नहीं हुई, जिसके कारण प्रकृतिभाव नहीं हुआ और गुण सन्धि होकर ओष्णम् बना।

ओत् 1.1.15

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः संज्ञः। अहो ईशाः!

व्याख्या – ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे – अहो ईशाः।

सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे 1.1.16

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे। विष्णो इति, विष्ण, इति, विष्णविति।

टिप्पणी

व्याख्या – जो ओकार प्रथमा एकवचन के संबोधन पद के अन्त में हो उससे परे इति हो तो उसकी विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होती है, जैसे – विष्णो इति। प्रगृह्य संज्ञा होने पर प्रकृतिभाव हुआ तथा विष्णो इति रूप ही रहा। प्रगृह्य संज्ञा न होने पर एचोऽयवायावः सूत्र द्वारा सन्धि होकर विष्णव् + इति = विष्णविति रूप बना। लोपः शाकल्यस्य से व् का विकल्प से लोप होने पर विष्णविति रूप बना।

मय उञो वो वा 8.3.33

मयः परस्य उञो वो वा अचि। किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्।

व्याख्या – मय् से परे उञ को विकल्प से व् आदेश होता है, जैसे – किमु + उक्तम् = किम्वुक्तम्, यहां किम् से परे उ है। अतः उ को विकल्प से व् आदेश होकर निम्न रूप बना। अभाव पक्ष में किमु उक्तम् रूप ही रहेगा।

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च 6.1.127

पदान्ता इको ह्रस्वो वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्वविधानसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र, चक्रयत्र। पदान्ता किम्–गौर्यो।

व्याख्या – पदांत इक् से परे यदि असवर्ण अच् हो तो इक् को विकल्प से ह्रस्व आदेश हो जाता है। जैसे चक्री + अत्र = चक्रि अत्र। यहां चक्री में ई पदांत में है और उससे परे असवर्ण अच् अ है। अतः शाकल्य के मतानुसार ई को ह्रस्व इकार हो गया और संधि नहीं हुई। पाणिनि के मतानुसार यहां यण् संधि होकर चक्रत्र रूप बनेगा। सूत्र में ह्रस्व का विधान किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि ह्रस्व होने के पश्चात् स्वर संधि नहीं होगी, क्योंकि स्वर संधि होने पर चक्रत्र रूप ही बनता जो दीर्घ इकार से भी बनता है। अतः यह सूत्र निरर्थक हो जाता।

यह नियम तभी लागू होता है जब इक् पद के अंत में हो, पद के मध्य में यह नियम लागू नहीं होता, जैसे गौरी + औ = गौर्यौ। यह गौरी शब्द का प्रथम द्विवचन का रूप है। पूर्ण पद है गौर्यौ न कि गौरी। ई यहां पदांत में नहीं है, अतः ह्रस्व नहीं हुआ।

अचो रहाभ्यां द्वे 8.4.46

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्य्यौ।

व्याख्या – यदि अच् से परे रेफ या हकार हो और उनसे परे यर् हो तो यर् को विकल्प से द्वित्व होता है, जैसे – गौरी + औ, यहां पहले इको यणचि सूत्र से ई को य् आदेश हुआ तथा गौर् य् + औ यह स्थिति बनी। यहां अच् से परे रेफ है तथा उसके बाद यकार है। इसलिए यकार को विकल्प से द्वित्व हुआ और गौर्य्यौ रूप बना अभाव पक्ष में गौर्यौ बना।

ऋत्यकः 6.1.128

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद् वा। ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। पदान्ताः किम्? आर्च्छत्। इति अच् सन्धि

व्याख्या – पदान्त अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है यदि बाद में ह्रस्व ऋत् हो, जैसे – ब्रह्मा + ऋषिः = ब्रह्मऋषिः। ह्रस्व होने के बाद सन्धि नहीं होती। विकल्प पक्ष में आद्गुणः सूत्र से सन्धि होकर ब्रह्मर्षि रूप बनता है।

❖ अच् सन्धि समाप्त ❖

टिप्पणी

4.4.2 हल्सन्धि/व्यंजन सन्धि

हयवरट् से हल् इन दो माहेश्वर सूत्रों के अन्तराल से 'हल्' प्रत्याहार बनता है। इसके अंतर्गत सभी व्यंजन समाहित हैं। अतः हल् सन्धि का अर्थ व्यंजन संधि ही है।

स्तोः श्चुनाश्चुः 8.4.40

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः। रामश्शेते। रामश्चिनोति। सच्चित्। शार्ङ्गिञ्जयः।

व्याख्या – सकार और तवर्ग का शकार और चवर्ग के साथ मेल होने पर सकार को शकार तथा तवर्ग को क्रमशः चवर्ग हो जाता है। जैसे – रामस् + शेते, यहां स् का श से योग हुआ है। अतः प्रकृत सूत्र से स् को श् होगा। इस प्रकार रामश्शेते रूप बना। इसी तरह अन्य में भी समझना चाहिए।

शात् 8.4.44

शात् परस्य तवर्गस्य श्चुत्वं न स्यात्। विश्नः। प्रश्नः।

व्याख्या – श से परे तवर्ग अर्थात् त् थ् द् ध् न् के स्थान पर श्चुत्व (चवर्ग) नहीं होता। जैसे – विश् + नः, यहां श् से परे तवर्ग का न् है। अतः प्रकृत सूत्र द्वारा श्चुत्व नहीं होगा इसलिए विश्नः रूप ही रहा।

ष्टुना ष्टुः 8.4.41

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात्। रामष्षष्ठः। रामष्टीकते। पेष्टा। तट्टीका। चक्रिण्ढौकसे।

व्याख्या – सकार और तवर्ग का यदि षकार और टवर्ग से योग हो तो स को षकार तथा तवर्ग को क्रमशः टवर्ग होगा। जैसे – रामस् + षष्ठः, यहां सकार का षकार से योग हुआ है इसलिए सकार को षकार होकर रामष्षष्ठः रूप बनेगा। इसी प्रकार रामष्टीकते, पेष्टा, तट्टीका आदि में भी बनेगा।

न पदान्ताट्टोरनाम् 8.4.42

पदान्ताट्टवर्गात्परस्याऽनामः स्तो ष्टुर्न स्यात्। षट् सन्तः। षट् ते। पदान्तात् किम्? ईट्टे। टोः किम्? सर्पिष्टमम्।

व्याख्या – पद के अंत में आए हुए टवर्ग के पश्चात् स् अथवा तवर्ग का वर्ण आया हो तो स् अथवा तगर्व के स्थान पर ष् अथवा टवर्ग आदेश नहीं होता, किंतु नाम के 'न्' को छोड़कर ही। जैसे – 'षट् सन्तः', सूत्र से 'स्' को 'ष्' होना चाहिए। किंतु यहां 'ड्' पद के अंत में आया है। प्रकृत सूत्र से 'स्' के स्थान पर 'ष' का निषेध होता है, तब 'षड् सन्तः' में 'खरि च' (74) सूत्र से 'ड्' के स्थान पर 'ट्' होता है। इसी प्रकार षड्त में भी 'षट्ते' बनता है।

तोः षि 8.4.43

न ष्टुत्वम्। सन् षष्ठः।

व्याख्या – षकार परे रहते तवर्ग को टवर्ग आदेश नहीं होता यह सूत्र ष्टुना ष्टुः का अपवाद है, जैसे – सन् + षष्ठः, यहां ष्टुना ष्टुः से न् को ण् प्राप्त था लेकिन प्रकृत सूत्र द्वारा उसका निषेध हुआ और सन् षष्ठः बना।

टिप्पणी

झलां जशोऽन्ते 8.2.39

पदान्ते झलां जशः स्युः। वागीशः।

व्याख्या – पदान्त झलों को जश् आदेश होता है। यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस वर्ग का झल् होगा, उसी वर्ग का जश् होगा। जैसे – वाक् + ईशः, यहां क् झल् पदान्त में है। इसको जश् होगा क्योंकि क् कवर्ग का है, अतः कवर्ग का ही जश् (तीसरा वर्ण) ग् होकर वाग् + ईशः = वागीशः बना।

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा 8.4.55

यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात्। एतन्मुरारिः। एतद्मुरारिः।

व्याख्या – पदान्त यर् से परे यदि अनुनासिक हो तो यर् को विकल्प से अनुनासिक होता है, जैसे – एतद् + मुरारिः, यहां पदान्त द् यर् है और उससे परे म् अनुनासिक है। अतः यर् को विकल्प से अनुनासिक होगा। अनुनासिक होने पर एतन्मुरारिः रूप बनेगा तथा न होने पर एतद्मुरारिः रूप रहेगा।

तोर्लि 8.4.60

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः। तल्लयः। विद्वाँल्लिखति। नस्यानुनासिको लकारः।

व्याख्या – लकार परे होने पर तवर्ग को परसवर्ण होता है। जैसे – तद् + लयः, यहां लकार बाद में होने के कारण तवर्ग को परसवर्ण होकर ल् आदेश हुआ और तल्लयः रूप बना। नकार को अनुनासिक ल् आदेश होता है, जैसे विद्वान् + लिखति = विद्वाल्ँलिखति = विद्वाँल्लिखति।

झरो झरि सवर्णे 8.4.65

हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि।

व्याख्या – यदि हल् से परे झर् हो और उससे परे सवर्ण झर् हो तो पूर्व झर् का विकल्प से लोप होता है। जैसे – उद् + स्थानम्, यहां हल से परे थ् झर् है और उसके बाद सवर्ण झर्। अतः प्रकृत सूत्र द्वारा पूर्व झर् का विकल्प से लोप होगा। लोप होने पर उद् + थानम् रूप बनेगा।

खरि च 8.4.55

खरि झलां चरः स्युः। इत्युदो दस्य तः उत्थानम्, उत्तम्भनम्।

व्याख्या – खर परे होने पर झलों को चर् आदेश होगा। जैसे – उद्+थानम् और उद्+तम्भनम्। यहां द् व खर् है अतः द् को चर् आदेश होगा। स्थानेन्तरतमः से द् को त् आदेश होगा और उत्थानम् रूप बनेगा। इसी प्रकार उत्तम्भनम् भी बना।

झयो होऽन्यतरस्याम् 8.4.62

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः। नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थाः–वाग्घरिः, वाग्हरिः।

व्याख्या – झय् के बाद हकार को विकल्प से पूर्व सवर्ण आदेश होगा। 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा से गुणकृत सादृश्य के आधार पर संवाद, नाद, घोष और महाप्राण यत्न वाले 'ह' के स्थान पर उसी प्रकार के यत्न से युक्त वर्गों का चतुर्थ वर्ण आदेश होगा। जैसे – वाग् + हरिः, यहां ग् झय् है और उसके बाद ह् है। पूर्व सवर्ण होने पर वाग्घरिः ही रहेगा।

टिप्पणी

शश्छोऽटि 8.4.63

झयः परस्य शस्य छो वाऽटि। 'तद् + शिवः' इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते 'खरि च' इति जकारस्य चकारः – तच्छिवः, तच् शिवः।

व्याख्या – यदि झय् के बाद में शकार हो और उससे परे अट् हो तो शकार को विकल्प से छकार होगा। जैसे – तद् + शिवः, यहां द् झय् के बाद शकार है और उसके बाद इ अट् है अतः श् को विकल्प से छ रहेगा। उससे छ् होकर तच्छिवः रूप बनेगा तथा न होने पर तच्शिवः रूप बनेगा।

मोऽनुस्वारः 8.3.23

मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि। हरिं वन्दे।

व्याख्या – पद के अन्त में आने वाले म् को अनुस्वार हो जाता है यदि बाद में कोई हल् हो। जैसे – हरिम् + वन्दे, यहां पदान्त म् के बाद में व् हल् है अतः म् को अनुस्वार होगा तथा हरिं वन्दे रूप बनेगा।

नश्चाऽपदान्तस्य झलि 8.3.24

नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः। यशांसि, आक्रंस्यते। झलि किम्? मन्यसे।

व्याख्या – अपदान्त नकार और मकार को अनुस्वार होता है, जब उससे परे झल् हो। जैसे – यशान् + सि, यहां न् पद के मध्य में है और बाद में सकार झल् है। इसलिए अनुस्वार होकर यशांसि रूप बना।

अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः 8.4.58

स्पष्टम्। शान्तः।

व्याख्या – यय् परे होने पर अनुस्वार को पर सवर्ण आदेश होता है। जैसे– शान्तः, यहां शाम् + तः में पूर्व सूत्र से पहले म् को अनुस्वार हुआ और शां + तः रूप बना। तत्पश्चात् यय् परे होने पर अनुस्वार को प्रकृत सूत्र द्वारा पर सवर्ण आदेश प्राप्त हुआ अर्थात् तवर्ग आदेश हुआ। स्थानेन्तरतम् से न् आदेश प्राप्त होकर शान्तः रूप बना।

वा पदान्तस्य 8.4.59

त्वङ्करोषि, त्वं करोषि।

व्याख्या – पद के अन्त में अनुस्वार को यय् परे होने पर विकल्प से सवर्ण आदेश होता है। जैसे – त्वं + करोषि, यहां पहले मोनुस्वारः से म् को अनुस्वार होकर त्वं करोषि बना। अनुस्वार पद के अन्त में है। अतः पर सवर्ण विकल्प से होने पर त्वङ् करोषि रूप बना, अभाव पक्ष में अनुस्वार ही रहने पर त्वं करोषि बना।

मो राजि समः क्वौ 8.3.26

क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात्। सम्राट्।

व्याख्या – क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु परे होने पर सम् के म् को म् ही रहता है। जैसे – सम्राट्। सम + राज् + क्विप्। क्विप् का सर्वापहारी लोप होता है। सम + राज् स्थिति बनी। तत्पश्चात्, राज के ज् को 'व्रश्चभ्रस्जसृजमृज यजराजभ्राजच्छषां षः' सूत्र से ष् हुआ, ष् को झलां जशोन्ते सूत्र से ड् हुआ और वावसाने से चर्त्व होकर ट् बना और सम् + राट् स्थिति बनी। फिर प्रकृत सूत्र से म् को अनुस्वार न होकर म् ही रहा और सम्राट् रूप बना।

टिप्पणी

नपरे नः 8.3.27

नपरे हकारे मस्य नो वा। किन् ह्नुते। किं ह्नुते।

व्याख्या – नकार परक हकार परे होने पर म् को विकल्प से न् आदेश होता है, जैसे किम् + ह्नुते = किन्ह्नुते। विकल्प पक्ष में म् को अनुस्वार होगा और रूप बनेगा किं ह्नुते।

आद्यन्तौ टकितौ 1.1.46

टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः। षट्त्सन्तः। षट्सन्तः।

व्याख्या – टित् कित् जिसको कहे जाएं क्रमशः वे उसके आदि और अंत अवयव होते हैं, अर्थात् टित् आदि और कित् अन्त।

ङ्णोः कुक्टुक् शरि 8.3.28

ङ्कारणकारयोः कुक्टुकावागमौ वा स्तः शरि।

(वा0) चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्। प्राङ्ख्षष्ठः प्राङ्क्षष्ठः। प्राङ्षष्ठः। सुगणठ्षष्ठः। सुगणट्षष्ठः। सुगणषष्ठः।

व्याख्या – ङकार णकार को कुक् और टुक् का आगम होता है, शर् परे रहते विकल्प से। पौष्करसादि आचार्य के मत में शर् परे होने पर चय् के स्थान पर अपने–अपने वर्ग के द्वितीय वर्ण आदेश होते हैं। जैसे – 'क्' के स्थान पर 'ख्' इत्यादि।

डः सि धुट् 8.3.29

डात्परस्य सस्य धुड् वा स्यात्। षट्त्सन्तः। षट्सन्तः।

व्याख्या – डकार से परे जो सकार उसे धुट् का आगम होता है विकल्प से।

नश्च 8.3.30

नान्तात्परस्य सस्य धुड् वा स्यात्। सन्त्सः, सन्सः।

व्याख्या – नकारान्त पद से परे जो सकार विकल्प से हो उसे धुट् का आगम होता है– सन्त्सः = वह पुरुष।

शि तुक् 8.3.31

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग् वा स्यात्। सञ्शम्भुः। सञ्च्छम्भुः। सञ्च्शम्भुः। सञ्छम्भुः।

व्याख्या – शकार परे रहते पदान्त नकार को तुक् का आगम विकल्प से होता है।

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् 8.3.32

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याऽचो नित्यं ङमुट्आगमः स्यात्। प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण्णीशः, सन्नच्युतः।

व्याख्या – ह्रस्व से परे जो ङम् तदंत पद से परे अच् को नित्य ङमुट् का आगम होता है।

समः सुटि 8.3.5

समो रुः स्यात् सुटि।

व्याख्या – सम् के म् को रू आदेश हो, सुट् परे होने पर रु के उकार की इत्संज्ञा होती है केवल र् शेष रहता है।

अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा 8.3.2

टिप्पणी

अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा।

व्याख्या – इस रु के प्रकरण में य से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक है। जैसे – सम् + कर्त्ता, यहां सुट् का आगम होने पर सम् + स्कर्त्ता स्थिति बनी। अब समः सुटि से रु आदेश हुआ तब सर् + स्कर्त्ता यह स्थिति बनी, तत्पश्चात् र् से पूर्व वाले वर्ण स् को प्रकृत सूत्र से अनुनासिक हुआ, तब स्थिति बनी सँ र् स्कर्त्ता। अनुनासिक विकल्प से होता है। अनुनासिक के अभाव में अग्रिम सूत्र से अनुस्वार होगा।

अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः 8.3.4

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोनुस्वारागमः

व्याख्या – जब अनुनासिक न हो तो रु से पूर्व वाले वर्ण को अनुस्वार होता है। अनुस्वार होने पर निम्न स्थिति बनीः

सं र् स्कर्त्ता।

खरवसानयोर्विसर्जनीयः 8.3.15

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः।

व्याख्या – खर् परे होने पर और अवसान में पदान्त रेफ को विसर्ग आदेश होता है। ऐसा होकर उपरोक्त उदाहरण में निम्न स्थिति बनती हैः

सँः स्कर्त्ता तथा संः स्कर्त्ता।

वा. संपुंकानां सो वक्तव्यः। सँस्कर्त्ता, संस्कर्त्ता।

व्याख्या – सम्, पुम् और कान् शब्दों के विसर्ग को स् हो इस वार्तिक के अनुसार सम् के विसर्ग को स् होने पर निम्न रूप बनेः

सँस्कर्त्ता तथा संस्कर्त्ता।

छे च 6.1.73

ह्रस्वस्य छे तुक्। शिवच्छाया।

व्याख्या – छकार परे होने पर ह्रस्व को तुक् का आगम होता है, जैसे – शिव + छाया, यहां छकार परे होने पर ह्रस्व को तुक् आगम होने पर निम्न स्थिति बनी। शिव + त् + छाया फिर त् को स्तोः श्चुना श्चुः से च होकर शिवच्छाया रूप बना।

पदान्ताद्वा 6.1.76

दीर्घात्पदान्ताच्छे परे तुग्वा स्यात्। लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया।

व्याख्या – छकार परे होने पर पदान्त दीर्घ को विकल्प से तुक् आगम हो। जैसे – लक्ष्मी + छाया, यहां छकार परे होने पर पदान्त दीर्घ के तुक् आगम विकल्प से हुआ। तुक् आगम होने पर पूर्ववत् लक्ष्मीच्छाया रूप बना तथा न होने पर लक्ष्मीछाया।

* हल्सन्धिः समाप्तः *

टिप्पणी

4.4.3 विसर्ग सन्धि

विसर्जनीयस्य सः 8.3.34

खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात्। विष्णुस्त्राता।

व्याख्या – खर् परे होने पर विसर्ग के स्थान पर स् आदेश हो। जैसे – विष्णुः + त्राता, यहां खर् परे होने के कारण विसर्ग को स् आदेश होकर विष्णुस्त्राता बना।

वा शरि 8.3.36

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा स्यात्। हरिः शेते, हरिश्शेते।

व्याख्या – विसर्ग से परे यदि शर् हो तो विसर्ग को विकल्प से विसर्ग ही रहता है। जैसे – हरिः + शेते, यहां शर् का अर्थ है श् , ष्, स्। इस उदाहरण में विसर्ग से परे शर् श है। अतः विसर्ग को विकल्प से विसर्ग रहने पर हरिः शेते बनेगा तथा विसर्ग न रहने पर पूर्व सूत्र से विसर्ग को स् होगा फिर स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से स् को श् आदेश होकर हरिःशेते रूप बनेगा।

ससजुषो रुः 8.2.66

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात्।

व्याख्या – पदान्त सकार और सजुष् के ष् को रु आदेश होगा। जैसे – शिव + स् = शिवस्, यहां पदान्त स् को प्रकृत सूत्र से रु आदेश होगा। रु के उ को इत्संज्ञा होकर उसका लोप होकर र् शेष रहने पर शिवर् स्थिति बनेगी। फिर खरवसानयोर्विसर्जनीयः से र् को विसर्ग होगा और शिवः रूप बनेगा। इसी प्रकार रामः, गुरुः, हरिः आदि।

अतो रोरप्लुतादप्लुते 6.1.113

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादालुतेऽति। शिवोऽर्च्यः।

व्याख्या – अप्लुत अकार से परे पदान्त रु के स्थान पर उ आदेश हो जाता है, अप्लुत अकार परे होने पर। जैसे शिवस् + अर्च्यः। ससजुषो रुः से शिवस् के स् को रु आदेश हुआ। रु का र् शेष रहा। स्थिति हुई शिवर् + अर्च्यः। र् से पूर्व अप्लुत अकार है और परे भी अप्लुत अकार है। अतः वर्तमान सूत्र से र् को उ होकर स्थिति हुई – शिव उ अर्च्यः। अ और उ को गुण ओ हुआ और एङ पदान्तादति सूत्र से अ को पूर्वरूप हुआ और रूप बना शिवोर्च्यः।

हशि च 6.1.114

अप्लुतादलः परस्य रोरुः। शिवो वन्द्यः।

व्याख्या – अप्लुत अकार से परे जब पदान्त रु हो और उससे परे हश् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो रु को उ आदेश हो जाता है। जैसे शिवस् + वन्द्यः। यहाँ ससजुषो रुः से पदान्त स् को रु आदेश हुआ। रु का र् शेष रहा। स्थिति हुई – शिवर् + वन्द्यः। रु से पूर्व अप्लुत अकार है और परे वकार है जो हश् प्रत्याहार का वर्ण है। अतः हशि च सूत्र से र् को उ आदेश हुआ। तब स्थिति हुई शिव उ वन्द्यः। अकार और उकार की आद्गुणः से गुण सन्धि होकर रूप सिद्ध हुआ – शिवो वन्द्यः।

टिप्पणी

रोऽसुपि 8.2.69

अह्नो रेफादेशो न तु सुपि। अहरहः। अहर्गणः।

व्याख्या – अहन् शब्द के न् को रेफ होता है। परंतु सप्तमी बहुवचन के सुप् के परे होने पर नहीं होता है। जैसे – अहन् अहन्, यहां प्रकृत सूत्र से अहन् के न् को रेफ आदेश होने पर निम्न स्थिति बनीः

अहर् अहर् = अहरहर्।

खरवसानयोर्विसर्जनीयः से र् को विसर्ग होकर अहरहः बना। इसी प्रकार अहन् + गणः = अहर्गणः।

रोरि 8.3.14

रेफस्य रेफे परे लोपः

व्याख्या – रेफ से परे रेफ हो तो पूर्व रेफ का लोप होता है। जैसे – पुनर् + रमते, यहां रेफ से परे होने के कारण पहले र् का लोप हुआ और पुन + रमते रूप बना।

ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः 6.3.110

ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणोः दीर्घः। पुना रमते। हरी रम्यः। शम्भू राजते।

व्याख्या – ढ् और र् का लोप जब ढ् और र् परे होने पर होता है, तो लोप के बाद लोप निमित्तक ढ् और र् से पूर्व के अ, इ, उ दीर्घ हो जाते हैं, जैसे – पुन + रमते, यहां पुनर् के र् का लोप होता है तब पुन रमते स्थिति बनती है। इस लोप के बाद लोप निमित्तक र् से पूर्व अ को दीर्घ हुआ तब पुना रमते यह सन्धियुक्त रूप बना। इसी तरह हरी रम्यः, शम्भू+ राजते आदि भी बनेंगे।

विप्रतिषेधे परं कार्यम् 1.4.2

तुल्यबलविरोधे परं कार्य स्यात्। इति लोपे प्राप्ते 'पूर्वऽत्रासिद्धमति' इति 'रो रि' इत्यस्याऽसिद्धत्वादुत्वमेव। मनोरथः।

व्याख्या – जब एक ही स्थान पर दो सूत्र समान रूप से लगे हों तो अष्टाध्यायी क्रम में जो सूत्र बाद का है उसकी प्रवृत्ति होगी। जैसे – मनस् + रथः, इस उदाहरण में ससजुषो रुः से स् सूत्र से र् को उ हुआ और रो रि सूत्र से र् को लोप प्राप्त हुआ। अष्टाध्यायी क्रम में रो रि सूत्र बाद में आया है अतः र् का लोप प्राप्त है परंतु रो रि सूत्र त्रिपादी का है। अतः पूर्वत्रासिद्धम् से पूर्वसूत्र के प्रति असिद्ध है। रो रि सूत्र से लोप प्राप्त होने पर भी हशि च सूत्र से र् को उ प्राप्त होगा। आदगुणः से गुण होकर मनोरथः रूप बनेगा।

सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम् 3.1.134

स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्यत। सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः।

व्याख्या – अच् परे होने पर सः के सु का लोप हो जाता है, यदि पाद की पूर्ति में इसकी आवश्यकता है। जैसे– सेमामविड्ढि प्रभृति य ईशिषे् से यह वेद के जगती

छन्द का उदाहरण है। इस छन्द में 12 अक्षर होते हैं। यदि सः के सु का लोप करके सन्धि नहीं होती तो 12 अक्षर से अधिक हो जाते और पाद की पूर्ति नहीं होती। इसी प्रकार सैष दशरथी रामः यह अनुष्टुप् छन्द का लौकिक उदाहरण है।

टिप्पणी

* विसर्गसन्धिः समाप्तः *

अपनी प्रगति जांचिए

6. इक् से परे अच् होने पर 'इक्' के स्थान पर क्या होता है?
   (क) झश् (ख) अण्
   (ग) झल् (घ) यण्
7. 'अनचि' सूत्र से किसे द्वित्व होता है?
   (क) अच् को (ख) यण् को
   (ग) यर् को (घ) नकार को
8. स्तोश्चुनाश्चु सूत्र से क्या आदेश होता है?
   (क) सकार (ख) तकार और सकार
   (ग) तकार और चवर्ग (घ) शकार और चवर्ग
9. शश्छोटिः सूत्र से होने वाला सूत्र 'छकार' के विषय में कैसा विधान करता है?
   (क) वैकल्पिक (ख) निर्विकल्प
   (ग) निषेध (घ) द्वित्व
10. विसर्ग को विकल्प से विसर्ग ही स्थापित करने में किस सूत्र का निर्देश है?
   (क) ससजुषो सः (ख) वा शरि
   (ग) हशि च (घ) रोरि

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (क)
3. (ख)
4. (क)
5. (ख)
6. (घ)
7. (ग)
8. (घ)
9. (क)
10. (ख)

टिप्पणी

4.6 सारांश

लघुसिद्धान्तकौमुदी के ज्ञान के लिए प्राथमिक आवश्यकता है प्रत्याहारों का ज्ञान। अइउण्, ऋलृक् आदि चौदह माहेश्वर सूत्रों से विभिन्न प्रत्याहारों का निर्माण होता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी के सभी सूत्र इन प्रत्याहारों के आधार पर कार्यशील होते हैं। प्रत्याहारों के साथ ही लोप, इत् आदि संज्ञाओं की जानकारी के आधार पर भी विभिन्न व्याकरणात्मक क्रियाएं निष्पन्न होती हैं। अतः संज्ञा प्रकरण के अन्तर्गत बताई गई संज्ञाओं को जानना नितान्त महत्वपूर्ण होता है।

स्वर सन्धि के अन्तर्गत दीर्घ, गुण, वृद्धि, यण, अयादि, पूर्वरूप और प्रकृति भाव के नियम आए हैं। इनसे क्रमशः सवर्णों में दीर्घता तथा असमान वर्णों में अन्य भेदों के उदाहरण प्राप्त हुए। अयादि सन्धि में ए से अय्, ओ से अव् का नियम पदान्त ए, ओ में नहीं लागू होता। जहां तक प्रकृतिभाव का प्रश्न है, यह वस्तुतः सन्धि का बाधक नियम है– द्विवचन के ई, ऊ व ए के बाद स्वरों के आने पर सन्धि का न हो पाना ही प्रकृतिभाव है, यथा–

मुनी आगच्छताम्, बालिके आगच्छताम्, साधू आगच्छतः आदि।

व्यंजन सन्धि में व्यंजन की सन्धि बाद में आने वाले स्वर अथवा बाद में आने वाले व्यंजन से होती है। यथा–

वाक् + ईशः = वागीशः

वाक् + हरिः = वाग्घरिः

विसर्ग सन्धि के अन्तर्गत विसर्ग के पश्चात स्वरो अथवा व्यंजनों के आने से प्रायः विसर्ग में ही परिवर्तन होता है, किंतु 'अः + अ' की स्थिति में 'अ' का पूर्व रूप हो जाना इसका अपवाद कहा जा सकता है ;बालः + अपि = बालोऽपि।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **अच्सन्धि** – स्वर सन्धि
- **हल्सन्धि** – व्यंजन सन्धि
- **लोप** – अदर्शन
- **विप्रतिषेध** – दो सूत्रों में विरोध की स्थिति

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. सवर्ण सन्धि के नियम में क्या होता है।
2. अयादि सन्धि का अपवाद क्या है।
3. विसर्ग सन्धि के लोप के कौन–से नियम हैं।
4. मात्रिक छन्द किसे कहा जाता है।

टिप्पणी

5. निम्न सूत्रों की व्याख्या कीजिए।

   1. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्
   2. परः सन्निकर्षः संहिता
   3. अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः
   4. सुप्तिङन्तं पदम्
   5. नीचैरनुदात्तः।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. स्वर सन्धि के सभी नियमों को लिखकर प्रत्येक के दो–दो उदाहरण दीजिए।
2. अनुनासिक व रुत्व सन्धि के नियम सोदाहरण लिखिए।
3. छन्दों में प्रयोग होने वाले सभी गणों को लिखते हुए सबका एक–एक उदाहरण 'शब्दशः' दीजिए।
4. प्रयत्न कितने प्रकार के होते हैं? विस्तार से समझाइये।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी– (लेखकः वरदराज), चौखम्भा, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. लघुसिद्धान्तकौमुदी (भैमीव्याख्या)– भीमसेन शास्त्री, भैमीप्रकाशन, 537 लाजपतराय मार्केट, दिल्ली–6
3. सिद्धान्तकौमुदी–कारकप्रकरणम्– पंडित गिरजादत्तत्रिपाठी, चौखम्भा, संस्कृत संस्थान, वाराणसी–221001
4. संस्कृत निबन्ध दर्शिका–वामन शिवराम आप्टे
5. शब्दरूप–कौमुदी – डा. राजेश्वर
6. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी –चौखम्भा पब्लिकेशंस, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
7. प्रारम्भिक पाणिनीय लघुसिद्धांत कौमुदी – विश्वनाथ शास्त्री
8. लघुसिद्धांत कौमुदी तिङन्त प्रकरण – के. के. आनन्द

इकाई 5 विभक्त्यर्थ एवं अनुवाद

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 विभक्त्यर्थ
5.3 हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद के नियम
5.4 संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद कौशल
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद हो अथवा संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद ये दोनों संस्कृत के छात्रों के लिए विशेष महत्व रखते हैं। इन दोनों कार्यों से पता चलता है कि उन्होंने संस्कृत भाषा के व्यवहार के नियमों को किस सीमा तक आत्मसात् किया है। कारकों के सामान्य व उपपद विभक्ति नियम, लकारों का सार्थक प्रयोग व शब्दज्ञान का इसमें विशेष महत्त्व है। तथापि अनुवाद करने के लिए विभक्तियों एवं तत्सम्बद्ध नियमोंपनियमों का अनुशीलन प्रत्येक संस्कृत विद्यार्थी के लिए अपरिहार्य है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है किन्तु **'शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिचिन्तनीयम्'** इस सूक्ति के अनुसार प्रथमा से सप्तमी विभक्ति से जुड़े कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों का अध्ययन करना विद्यार्थियों के लिए नितान्त उपयोगी रहेगा। कारक विभक्तियों के नियमों को जानने के साथ-साथ उपपद विभक्तियों के नियम व उनके उदाहरणों का भी पौनःपुन्यम् अभ्यास करणीय है। इस अभ्यास के प्रतिफल के रूप में ही हिंदी से संस्कृत एवं संस्कृत से हिंदी वाक्यानुवाद की शुद्धता को प्राप्त किया जा सकता है। एतदर्थ इस इकाई में भर्तृहरि रचित नीतिशतकम् के श्लोकों तथा हितोपदेश के कुछ अंश को सानुवाद उपस्थापित किया गया है। इनके श्लोकों में कुछ विशेष व्याकरण प्रयोग द्रष्टव्य हैं। संस्कृत से हिंदी अनुवाद में इन बिंदुओं पर ध्यान देने से आप न केवल अनुवाद में दक्षता प्राप्त कर सकते हैं अपितु इनके आधार पर स्वरचित वाक्य लेखन का भी अभ्यास करने में समर्थ हो सकते हैं। अतः इस इकाई में क्रमशः विभक्त्यर्थों को स्पष्ट करते हुए उभयविध अनुवाद के अभ्यास द्रष्टव्य बिंदुओं को संकेत सहित प्रस्तुत किया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- विभिन्न विभक्तियों के सामान्य व विशेष अर्थों को जान पाएंगे;
- सरल हिन्दी वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करने में सक्षम हो पाएंगे;

- संस्कृत के सन्धि विच्छेद व समास विग्रह के आधार पर तथा विभक्ति-ज्ञान के आधार पर संस्कृत के गद्य व पद्य भागों के हिन्दी अनुवाद में सक्षम हो पाएंगे।

टिप्पणी

5.2 विभक्त्यर्थ

यहां पर विभक्तियों के प्रयोग को उनके अर्थ के आधार पर प्रतिपादित किया जा रहा है।

कारक और विभक्ति

'क्रियानिमित्तं कारकम्' इति के अनुसार क्रिया के निमित्तभूत पद कारक कहे जाते हैं। संस्कृत में कारकों की कुल संख्या छह है-

कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादन और अधिकरण।

इसके विपरीत कारकों के संदर्भ में प्राप्त विभक्तियों की संख्या सात है-

प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी।

वस्तुतः कारकों के अतिरिक्त 'सम्बन्ध' अर्थ वाले पद भी होते हैं। क्रियानिमित्त के अभाव में 'सम्बन्ध' को कारक नहीं माना जाता है। षष्ठी 'विभक्ति' इसी 'सम्बन्ध' को प्रकट करती है। इसीलिए सूत्रकार ने कहा है-

षष्ठी शेषे २/३/५०॥

विभक्ति एवं कारकों के प्रमुख सूत्रों को जान लेना भी आवश्यक है-

1. **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २/३/४६**

   शब्द के मूलार्थ (प्रातिपदिक अर्थ) लिंग, परिमाण, वचन मात्र आदि को स्पष्ट करने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। वचन का विशेष महत्व है। प्रथमा विभक्ति के वचन के अनुसार ही क्रिया के वचन का भी निर्धारण होता है। अतः प्रथमा विभक्ति के पद अपने वचन के अनुसार 'कर्तृपद' भी बनते हैं।

2. **द्वितीया विभक्ति** का प्रमुख प्रयोग 'कर्म कारक' के लिए होता है।

   कर्तुरीप्सिततमं कर्म १/४/४९॥

   कर्मणि द्वितीया २/३/२॥

3. **तृतीया विभक्ति** का प्रमुख प्रयोग करण-कारक के लिए होता है-

   साधकतमंकरणम् १/४/४२॥

   अर्थात क्रिया का साधन 'करण' कारक होता है।

   कर्तृकरण्योस्तृतीया २/३/१८॥

   कर्मवाच्य के कर्ता तथा करण में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

4. **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्** १/४/३२॥

   एवं **चतुर्थी सम्प्रदाने** २/३/१३

   इन सूत्रों के अनुसार सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। अत्यंत इष्ट जानकर जिसके लिए कोई वस्तु दी जाती है अथवा जिसके लिए कार्य को सम्पन्न किया जाता है, वह सम्प्रदान कारक कहलाता है।

5. विश्लेष अर्थात् पृथक होना ही अपादान है। अपादान कारक में पंचमी विभक्ति होती है-

   (क) **ध्रुवमपायेऽपादानम्** १/४/२४।।

   (ख) **अपादाने पञ्चमी** २/३/२८।।

6. छठा कारक अधिकरण है इसमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग विहित है-

   (क) **आधारोऽधिकरणम्** १/४/४५।।

   (ख) **सप्तम्यधिकरणे च** २/३/३६।।

   इन्हें अब हम विस्तार में निम्न रीति से जानते हैं-

टिप्पणी

संस्कृत के समस्त संज्ञा और सर्वनाम शब्दों के रूप प्रथमा विभक्ति से सप्तमी तक कुल सात विभक्तियों में निर्मित होते हैं। संज्ञा शब्दों की प्रथमा विभक्ति के रूप किंचित परिवर्तन के साथ सम्बोधन के लिए भी प्रयोग में लाए जाते हैं। विभक्तियों के प्रयोग कारक अर्थ में व उपपदविभक्ति नियमों के अनुसार- दो प्रकार से व्यवहार में लाए जाते हैं। प्रथमा से सप्तमी तक विभक्तियों के अर्थ क्रमशः इस प्रकार बोद्धव्य हैं-

प्रथमा विभक्ति

प्रथमा विभक्ति का प्रयोग कर्तृवाच्य में 'कर्ता' शब्दों के लिए होता है, यथा-

बालकः क्रीडति, **बालकौ** क्रीडतः, **बालकाः** क्रीडन्ति, **नदी** वहति, **नद्यौ** वहतः नद्यः वहन्ति, **आम्रम्** पतति, **आम्रे** पततः, **आम्राणि** पतन्ति आदि।

कर्मवाच्य में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग 'कर्म' को अभिव्यक्त करता है। यथा- मया **बालकः** दृश्यते, त्वया **बालकौ** दृश्येते, अस्माभिः **बालकाः** दृश्यन्ते, मया आम्रं खाद्यते, त्वया **वृक्षः** रक्ष्यते आदि।

द्वितीया विभक्ति

द्वितीया विभक्ति का सामान्य प्रयोग 'कर्म' को अभिव्यक्त करने के लिए होता है। क्रिया का लक्ष्य कर्म होता है। उदाहरण के लिए 'वह पुस्तक पढ़ता है।' वाक्य में पढ़ना क्रिया का लक्ष्य 'पुस्तक' ही इस वाक्य में कर्म है, अतः 'सः **पुस्तकं** पठति।' में 'पुस्तक' का अर्थ द्वितीया विभक्ति में उपस्थित हुआ है।

द्वितीया विभक्ति के विशेष प्रयोग 'उपपद' नियमों से कर्म के अलावा अन्य अर्थों में भी होते हैं। परितः, अभितः (चारों ओर) समया, निकषा (समीप), उभयतः (दोनों ओर), विना (बिना), प्रति (की ओर) आदि अव्ययों के योग में भी द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया जाता है उदाहरण के लिए-

(i) **ग्रामं** परितः/अभितः जलम् अस्ति। (**गाँव के** चारों ओर पानी है।)

(ii) **विद्यालयं** समया/निकषा मम गृहम् अस्ति।

(**विद्यालय** के पास मेरा घर है।)

(iii) **गणेशम्** उभयतः ऋद्धिः सिद्धिः च स्तः।

(**गणेश** के दोनों ओर ऋद्धि और सिद्धि हैं।)

(iv) **विद्यां** विना विकासो नैव भवति।

(**विद्या** के बिना विकास नहीं होता।)

(**विशेष**-विना के योग में तृतीया और पञ्चमी विभक्ति का भी विकल्प है। **विद्यया** विना तथा **विद्यायाः** विना भी प्रयोग संभव हैं।)

(v) सः ग्रामं प्रति गच्छति।

टिप्पणी

(वह **गाँव की** ओर जा रहा है।)

द्विकर्मक धातु

इसके अतिरिक्त सोलह धातुएँ द्विकर्मक हैं। इन धातुओं के दोनों 'कर्म' पद द्वितीया विभक्ति में प्रयुक्त होते हैं। इन सभी द्विकर्मक धातुओं को निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से कंठस्थ किया जा सकता है-

दुह्याच् पच् दण्ड्
रुधि-प्रच्छि-चिब्रू-शास्जिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं
तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

उदाहरणार्थ-

1. दुह् (दुहना) : गोपालः गां दुग्धं दोग्धि।
2. याच् (माँगना) : धेनुः दिलीपम् अभयं याचते।
3. पच् (पकाना) : सः तण्डुलान् ओदनं पचति।
4. दण्ड् (दण्ड देना) : न्यायाधीशः चौरं शतं दण्डयति।
5. रुध् (रोकना) : कृषकः क्षेत्रं पशून् रुणद्धि।
6. प्रच्छ (पूछना) : बालकः गुरुं प्रश्नं पृच्छति।
7. चि : रामः लतां पुष्पाणि चिनोति।

8-9. ब्रू/शास् (बताना) : गुरुः शिष्यं धर्मं ब्रवीति/शास्ति।

10. जि (जीतना) : बालकः शतं जयति।
11. मथ् (मथना) : समुद्रम् अमृतम् मथ्नाति।
12. मुष् (चुराना) : कृष्णं शतं मुष्णाति।
13. नी (ले जाना) : माता बालकं विद्यालयं नयति।
14. हृ (हरण करना) : चौरः गृहिणं धनं हरति।
15. कृष् (खींचना) : यवनः अजां वधस्थलं कर्षति।
16. वह् (ढोना) : धूर्तः छागं गृहं वहति।

तृतीया विभक्ति

तृतीया विभक्ति का प्रयोग 'करण' कारक को अभिव्यक्त करता है। क्रिया के साधन को 'करण' कहा जाता है। यथा-

सः **कलमेन** लिखति। (वह **कलम** से लिखता है।) वयं नेत्राभ्यां पश्यामः। (हम आँखों से देखते हैं।)

कर्मवाच्य और भाववाच्य का कर्तृपद भी तृतीया विभक्ति से ही अभिव्यक्त होता है। उदाहरण के लिए-

मया वृक्षाः दृश्यन्ते। (कर्मवाच्य)

(**मेरे द्वारा** वृक्ष देखे जा रहे हैं।)

तेन हस्यते। (भाववाच्य)

उसके द्वारा हँसा जा रहा है।

उपपद विभक्ति नियमों के अनुसार सह, साकम्, समम्, सार्धम् (साथ), विना (बिना), सदृश (के समान) आदि के योग में भी तृतीया विभक्ति से अर्थ प्राप्ति होती है। यथा-

(i) **रामेण** सह/साकं/सार्धम्/समम् सीता लक्ष्मणः च वनम् अगच्छताम्।

(**राम** के साथ सीता और लक्ष्मण वन गए।)

(ii) नहि **ज्ञानेन** सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

(इस संसार में ज्ञान के समान कुछ भी पवित्र नहीं है।)

(iii) **परिश्रमेण** विना सफलतां न लभ्यते

(**परिश्रम** के बिना सफलता नहीं मिलती।)

उपपद विभक्ति नियमों के अनुसार ही 'अलम्' (मत करो), अङ्गविकार (जिस अंग में दोष हो) तथा लक्षण (पहचान-चिन्ह) के योग में भी तृतीया विभक्ति का विधान है-

(iv) अलं **कोलाहलेन।** (शोर मत कीजिए।)

(v) सः **पादेन** खञ्जः अस्ति। (वह पैर से लंगड़ा है।)

(vi) सः **जटाभिः** तापसः प्रतीयते।

(वह जटाओं से तपस्वी लग रहा है।)

चतुर्थी विभक्ति

चतुर्थी विभक्ति मुख्यतः सम्प्रदान के लिए निर्धारित है। अर्थात जब किसी को कुछ देने का वर्णन होता है तब ग्रहीता (लेने वाले में) चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी में 'के लिए' शब्दों का प्रयोग जिन शब्दों में होता है, उनमें भी सामान्यतः चतुर्थी विभक्ति लगाई जाती है। उदाहरण के लिए-

(i) नृपः **याचकाय** वस्त्राणि ददाति।

(राजा याचक को वस्त्र दे रहा है।)

(ii) माता **बालकाय** भोजनम् आनयति।

(माँ **बालक के लिए** भोजन ला रही है।)

चतुर्थी विभक्ति के उपपद नियमों के अनुसार 'धातु रुच्' (अच्छा लगना) के योग में जिसे कुछ अच्छा लगता है उसमें, 'धातु क्रुध्/कुप् (क्रोध करना) के योग में जिस पर क्रोध किया जाता है उसमें, धातु ईर्ष्य् (ईर्ष्या करना) के योग में जिससे ईर्ष्या की जाती है, 'अलम्' (पर्याप्त) के योग में जिसके लिए पर्याप्त बलवान्

टिप्पणी

बताया जाए उसमें, 'नमः' (नमस्कार) के योग में जिसके प्रति नमस्कार किया जाए उसमें तथा 'स्वस्ति', 'स्वाहा' आदि अव्ययों के योग में भी चतुर्थी विभक्ति का ही प्रयोग होता है।

टिप्पणी

यथा–

(iii) **बालकाय** दुग्धं रोचते।

(**बालक को** दूध अच्छा लगता है।)

(iv) नृपः **चोराय** क्रुध्यति/कुप्यति।

(राजा **चोर पर** क्रोध करता है।)

(v) सा बालिका **तस्यै** बालिकायै ईर्ष्यति।

(वह बालिका उस बालिका से ईर्ष्या करती है।)

(vi) रामः रावणाय अलम्।

(राम **रावण के लिए** पर्याप्त हैं।)

(vii) **गुरवे** नमः। (गुरु को नमस्कार)

(viii) **शिष्याय** स्वस्ति। (शिष्य का कल्याण हो।)

(ix) **अग्नये** स्वाहा। (**अग्नि** के लिए आहुति।)

(x) **पितृभ्यः** स्वधा। (पितरों को समर्पित।)

पञ्चमी विभक्ति

पञ्चमी विभक्ति का मुख्यार्थ अपादान है, अर्थात जिससे/जहां से पृथक/अलग होने का वर्णन हो उस 'अपादान' शब्द में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। जैसे–

(i) ते **विद्यालयातः** गृहं गच्छन्ति (वे विद्यालय से घर जा रहे हैं।)

(ii) **मेघेभ्यः** जलं पतति। (बादलों से पानी गिर रहा है।)

उपपद विभक्ति नियमों के अन्तर्गत जिससे भय अथवा रक्षा का वर्णन हो, उत्पत्ति/निर्गम स्थान, जिससे पढ़ने (यस्मादधीते) तथा जिससे रोकने/रुकने का वर्णन हो उन शब्दों में भी पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। यथा–

(iii) बालिका **चोराद्** बिभेति।

(बालिका **चोर से** डरती है।)

(iv) आरक्षकः **चोराद्** बालिकां रक्षति

(सिपाही **चोर से** बालिका की रक्षा करता है।)

(v) गंगा **हिमालयाद्** निःसरति/उद्भवति।

(गंगा **हिमालय से** निकलती/उत्पन्न होती है।)

(vi) सः **गुरोः** विद्यामधीते।

(वह गुरु से विद्या का अध्ययन करता है।)

(vii) सायङ्काले श्रमिकः **कार्यात्** विरमति।

(शाम के समय मजदूर काम से विराम करता है।)

(viii) सा मार्जारीं दुग्धाद् वारयति।

(वह बिल्ली को दूध से/दूध के पास जाने से रोकती है।)

टिप्पणी

षष्ठी विभक्ति

का/के/की/रा/रे/री/ना/ने/नी आदि परसर्गों से हिन्दी में जिन शब्दों के साथ संबंध की अभिव्यक्ति होती है उनमें षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सामान्यत: किया जाता है। यथा-

(i) राम: **दशरथस्य** सुत: आसीत्।

(राम दशरथ के पुत्र थे।)

(ii) **स्वस्य** गृहे तु मूषक: अपि सिंह: भवति।

(अपने घर में तो चूहा भी शेर होता है।)

(iii) **युष्माकं** गृहे के-के सन्ति?

(तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं।)

जिसे स्मरण किया जाता है उसमें यद्यपि द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है तथापि दिवंगत को शोक पूर्वक स्मरण करने में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है-

(iv) स: **मातु:** स्मरति।

(वह दिवंगत माता को याद कर रहा है।)

बहुतों में से एक को विशेष बताने पर बहुतों में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है-

(v) **कवीनां** कालिदास: श्रेष्ठ:।

(कवियों में कालिदास श्रेष्ठ हैं।)

तथापि इस निर्धारण षष्ठी के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का भी विकल्प है, अत: **'कविषु** कालिदास: श्रेष्ठ:' का प्रयोग भी स्वीकार्य है।

सप्तमी विभक्ति

'अधिकरण' कारक के अर्थ में सप्तमी विभक्ति का सामान्यतया प्रयोग किया जाता है। क्रिया का आधार ही 'अधिकरण' होता है। हिन्दी में अधिकरण शब्दों के पीछे **में/पर** परसर्ग पाए जाते हैं। यथा-

(i) **पात्रे** दुग्धम् अस्ति।

(बर्तन में दूध है।)

(ii) **वृक्षे** वानरा: क्रीडन्ति

(**पेड़ पर** बंदर खेल रहे हैं।)

जिनके प्रति आदर/भक्ति, श्रद्धा, विश्वास और स्नेह का वर्णन होता है, उनमें भी सप्तमी विभक्ति का ही प्रयोग किया जाता है। जैसे-

टिप्पणी

(iii) तस्य **गुरौ** आदरः/भक्तिः/श्रद्धा अस्ति।

(गुरु के प्रति उसका आदर/भक्ति/श्रद्धा है।)

(iv) माता **पुत्रे** स्निह्यति।

(माँ पुत्र से स्नेह करती है।)

(v) **दुर्जने** विश्वासं मा कुरु।

(दुष्ट पर विश्वास मत करो।)

भावे सप्तमी- 'भावे' का अर्थ है 'हो जाने पर'। अतः एक क्रिया के होने पर जब दूसरी क्रिया होती है तब पहली क्रिया के कृदन्त रूप में और उसके कर्ता में भी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। सप्तमी विभक्ति का ऐसा प्रयोग ही 'भावे सप्तमी' के नाम से जाना जाता है। यथा-

(vi) **कर्णे मृते** दुर्योधनः शल्यं सेनापतिम् अकरोत्।

(कर्ण के मर जाने पर दुर्योधन ने शल्य को सेनापति बनाया।)

अपनी प्रगति जांचिए

1. कर्मवाच्य के कर्ता में किस विभक्ति का प्रयोग होता है?
   (क) प्रथमा (ख) द्वितीया
   (ग) तृतीया (घ) षष्ठी
2. 'उभयतः' शब्द के योग में किस विभक्ति का प्रयोग होता है?
   (क) द्वितीया (ख) षष्ठी
   (ग) पञ्चमी (घ) चतुर्थी
3. 'अलम् (मत करो)' अव्यय के प्रयोग में कौन-सी विभक्ति उपयुक्त है?
   (क) द्वितीया (ख) तृतीया
   (ग) चतुर्थी (घ) पञ्चमी
4. स्निह् धातु के योग में किस विभक्ति का प्रयोग करणीय है?
   (क) द्वितीया (ख) चतुर्थी
   (ग) षष्ठी (घ) सप्तमी

5.3 हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद के नियम

1. अनुवाद करते समय वाक्य को ध्यानपूर्वक पढ़ें। उसके पुरुष तथा वचन आदि का समुचित विचार कर लें, क्योंकि पुरुष तथा वचन आदि के न समझने से अनुवाद अशुद्ध हो जायेगा।
2. सरल शब्दों को यथाक्रम रखें। कठिन शब्दों के प्रयोग के द्वारा भाषा के लालित्य को न खोएँ।
3. शब्दों तथा क्रियाओं का प्रयोग सोच-समझ कर करें। यदि एक प्रकार के शब्द या धातुरूप न आते हों तो उसी के वाचक दूसरे शब्द का प्रयोग करें। वे महत्त्वपूर्ण शब्द तथा धातुरूप अवश्य याद कर लें, जिनका उपयोग अधिक होता है।

टिप्पणी

4. सभी प्रकार के धातुरूप याद रखना कठिन है, अतः प्रमुख धातुरूपों को तो याद ही कर लें। जिन रूपों के प्रयोग करने या चलाने में सन्देह हो, उनका प्रयोग न करें।
5. कृ (करना) धातु का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया जा सकता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आप अन्य रूपों को समझें ही नहीं। जहाँ धातु का रूप न आता हो या सन्देह हो वहाँ धातु में ल्युट् (अण्) प्रत्यय लगाकर उसकी पूरक क्रिया में 'कृ' धातु का ही प्रयोग करें। जैसे - 'राजा शासन करता है।' यदि यहाँ 'शास्' धातु के रूप - **'शास्ति-शिष्टः-शासति'** ज्ञात नहीं हैं तो **'राजा शासनं करोति'** (राजा शास्ति) से भी काम चल जायेगा (यद्यपि **'गमनं करोति, आगमनं करोति, पठनं करोति, क्रीडनं करोति, हसनम् अकरोत्, रोदनं करिष्यति'** इत्यादि वाक्य शुद्ध हैं, परन्तु सौन्दर्य तथा ज्ञान के लिए प्रमुख धातुरूप याद ही होने चाहिए)।
6. यदि 'च' (और) के द्वारा दो अथवा दो से अधिक कर्ता किसी क्रिया को करते हों, तो क्रिया संयुक्त (मिले हुये सभी) कर्ताओं के वचन के अनुसार लगती है। जैसे - (1) **रमेशः सुरेशश्च पठतः** = रमेश और सुरेश पढ़ते हैं। (2) **रमेशः सुरेशः रमा च लिखन्ति** = रमेश, सुरेश और रमा लिखते हैं।
7. यदि एकवचन के अनेक कर्ता वा, अथवा, या आदि वैकल्पिक शब्दों के द्वारा मिले हुए होते हैं और वे एक ही क्रिया को करते हैं तो उनकी क्रिया एकवचन में रहती हैं जैसे - **रमेशः सुरेशो वा लिखतु। पुष्पा चन्द्रा वा पठतु** इत्यादि।
8. जब प्रथम पुरुष और मध्यम पुरुष के कर्ता 'च' के द्वारा जुड़े हुए होते हैं तो क्रिया मध्यम पुरुष की होती है। जैसे - **सः त्वं च लिखथः**।
9. जब प्रथम पुरुष और उत्तम पुरुष के कर्ता अथवा मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष के कर्ता 'च' के द्वारा जुड़े हुए होते हैं तो क्रिया उत्तम पुरुष की लगती है - **सा च अहं च गमिष्यावः। अहं च त्वं च क्रीडावः**।
10. जब प्रथम, मध्यम और उत्तम तीनों पुरुषों के कर्ता 'च' से जुड़े हुए होते हैं तो उनकी क्रिया उत्तम पुरुष की होती है। जैसे - **सः त्वम् अहं च गच्छामः**।
11. अनुवाद में स्पष्टता लाने के लिए विराम चिह्नों का समुचित प्रयोग अवश्य करें। विराम चिह्नों के समुचित प्रयोग के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण विराम चिह्नों का परिचय कराया जा रहा है-

विरामचिह्नानि

विराम का नाम	चिह्न	उदाहरण
पूर्ण विराम	।	रमेशः विद्यालयं गच्छति।
अर्ध-विराम	;	त्वं श्वः गमिष्यसि; अहं तु विद्यालयं गमिष्यामि।
अल्प विराम	,	सुरेशः, रमेशो, महेशश्च फलं खादन्ति
प्रश्न चिह्न	?	त्वं कुत्र गमिष्यसि?

सम्बोधन	!	हे राम! रक्षां कुरु।
उद्धरण चिह्न	'' ''	कथयति श्रुतिः, ''अहरहः सन्ध्यामुपासीत्।''
निर्देश चिह्न	–	सः उबाच – त्वं कुत्र गमिष्यसि।

टिप्पणी

हिन्दी से संस्कृत में अभ्यास

1. वह पढ़ता है।

   सः पठति।

2. वे दो पढ़ते हैं।

   तौ पठतः।

3. वे सब पढ़ते हैं।

   ते पठन्ति।

4. आप यहाँ आते हैं।

   भवान् अत्र आगच्छति।

5. आप दोनों हँसते हैं।

   भवन्तौ हसतः।

6. आप सब जाते हैं।

   भवन्तः गच्छन्ति।

7. आप लिखती हैं।

   भवती लिखती।

8. वहाँ क्या हो रहा है?

   तत्र किं भवति?

9. तुम कहते हो।

   त्वं वदसि।

10. तुम दोनों कहते हो।

    युवां वदथः।

11. तुम लोग कहते हो।

    यूयं वदथ।

12. मैं पढ़ता हूँ।

    अहं पठामि।

13. हम दोनों पढ़ते हैं।

    आवां पठावः।

14. हम लोग पढ़ते हैं।

वयं पठामः।

15. राम गाँव को जाता है।

रामः ग्रामं गच्छति।

16. गाँव के दोनों ओर जल है।

ग्रामम् उभयतः जलम् अस्ति।

17. गाँव के चारों ओर जंगल है।

ग्रामं परितः वनम् अस्ति।

18. गाँव के पास स्कूल है।

ग्रामं समया निकषा पाठशाला अस्ति।

19. विद्यालय के पास जाता है।

विद्यालयं निकषा गच्छति।

20. वह पुस्तक पढ़े।

सः पुस्तकं पठतु।

21. तुम गाँव को जाओ।

त्वं ग्रामं गच्छ।

22. मैं भोजन खाऊँ।

अहं भोजनं खादानि।

23. वह आसन पर बैठता है।

स आसनम् अधितिष्ठति/अध्यास्ते।

24. वह घर में सोता है।

स गृहम् अधिशेते।

25. वह पढ़ेगा।

सः पठिष्यति।

26. तू जाएगा।

त्वं गमिष्यसि।

27. मैं आऊँगा।

अहम् आगमिष्यामि।

28. वह देखेगा।

सः द्रक्ष्यति।

टिप्पणी

टिप्पणी

29. बकरी का दूध दुहता है।

अजां दुग्धं दोग्धि।

30. राजा से क्षमा माँगता है।

नृपं क्षमां याचते।

31. चावलों से भात पकाता है।

तण्डुलान् ओदनं पचति।

32. राजा दुर्जन पर सौ रुपए दण्ड लगाता है।

नृपः दुर्जनं शतं दण्डयति।

33. घर में बकरी को रोकता है।

गृहम् अजां रुणद्धि।

34. गुरु से धर्म पूछता है।

उपाध्यायं धर्मं पृच्छति।

35. बकरी को गाँव में ले जाता है।

अजां ग्रामं नयति, हरति, कर्षति, वहति वा।

36. उसने पढ़ा।

सः अपठत्।

37. तूने लिखा।

त्वम् अलिखः।

38. मैंने कहा।

अहम् अवदम्।

39. उसे पढ़ना चाहिए।

सः पठेत्।

40. तुझे लिखना चाहिए।

त्वं लिखेः।

41. मैं गुरु को नमस्कार करूँ।

अहं गुरुं नमेयम्।

42. वह उस ब्राह्मण को धन देता है।

स तस्मै विप्राय धनं ददाति, यच्छति, वितरति वा।

43. गुरु को नमस्कार।

गुरवे नमः।

टिप्पणी

44. बालक को लड्डू अच्छा लगता है।

बालकाय मोदकं रोचते।

45. हे शिष्य। उठो सुबह हो गई।

भोः शिष्य। उतिष्ठ प्रातःकालो जातः।

46. उठता हूं।

उत्तिष्ठामि।

47. और सब विद्यार्थी उठे या नहीं?

अन्ये सर्वे छात्राः उत्थिताः न वा।

48. अभी तो नहीं उठे हैं।

अधुना तु नोत्थिताः खलु।

49. इस समय हमें क्या करना चाहिए।

सम्प्रति अस्माभिः किं कर्त्तव्यम्।

50. नाई उस्तरे से बाल काटता है।

नापितः क्षुरेण केशान् वपति।

51. बढ़ई एक खाट व तीन कुर्सियां बनाता है।

तक्षकः एकां खट्वाम् तिस्त्रः आसन्दिकाः च रचयति।

52. दर्ज़ी वस्त्रों को सीता है।

सौचिकः वस्त्राणि सीव्यति।

53. शिकारी बाण से शेर को मारता है।

आखेटकः बाणेन सिंहं हन्ति।

54. देश की उन्नति के लिए आयात और निर्यात आवश्यक है।

देशस्य उन्नत्यै आयातो निर्यातश्च आवश्यकौ स्तः।

55. आकाश में पक्षी होते हैं।

खे पक्षिणः विद्यन्ते।

56. मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है।

मया पुस्तकं पठ्यते।

57. यह बालक पाप से घृणा करता है।

अयं बालकः पापात् जुगुप्सते।

58. यह देवदत्त की पुस्तक है।

इदं देवदत्तस्य पुस्तकम् अस्ति।

59. तुम किसके लिए दुःखी होते हो?

त्वं कस्य हेतोः दुःखितो भवसि।

टिप्पणी

60. बादल गरजते हैं।

मेघाः गर्जन्ति।

61. पवन चलती है।

वायुः सरति।

62. घर में बालक है।

गृहे बालकः अस्ति।

63. सन्ध्याकाल में बच्चे कूदते हैं।

सायंकाले बालाः कूर्दन्ते।

64. तुम गुरु की सेवा करते हो।

त्वं गुरुं सेवसे।

65. पिता पुत्र पर स्नेह करता है।

जनकः पुत्रे स्निह्यति।

66. सेनापति शेर पर बाणों को फेंकता है।

सेनापतिः मृगे शरान् मुञ्चति।

67. गुरु छात्र पर विश्वास करता है।

गुरुः छात्रे विश्वसिति।

68. श्याम शास्त्रों में निपुण है।

श्यामः शास्त्रेषु प्रवीणः अस्ति।

69. सच्चाई में मेरी आस्था है।

सत्ये मम श्रद्धा निष्ठा वा वर्तते।

70. वह मेरा और तुम्हारा मित्र है।

स मदीयः त्वदीयश्च सखा अस्ति।

71. बच्चा ऊँचे स्वर में रोता है।

शिशुः उच्चैः रोदिति।

72. अध्यापक बालक के द्वारा लेख लिखवाता है।

अध्यापकः बालकेन लेखं लेखयति।

73. गुरु शिष्य को नगर ले जाता है।

गुरुः शिष्यं नगरं नयति।

74. लता नहाकर, भोजन खाकर विद्यालय जाती है।

लता स्नात्वा भोजनं च भुक्त्वा विद्यालयं गच्छति।

टिप्पणी

75. बच्चा दूध पीता है।

बालकः दुग्धं पिबति।

76. अपने मन में ईश्वर का ध्यान करो।

स्वमनसि ईश्वरं चिन्तय।

77. आकाश में सूर्य अपनी किरणों से प्रकाशित होता है।

नभसि रविः स्वरश्मिभिः प्रकाशते।

78. मन सत्य से पवित्र होता है।

मनः सत्येन शुध्यति।

79. सुनार सोने से आभूषण बनाता है।

स्वर्णकारः स्वर्णेन आभूषणानि रचयति।

80. माता, मित्र और पिता– ये तीनों स्वभाव से ही हितैषी होते हैं।

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम्।

81. सेवक भी वही है जो सम्पत्ति की अपेक्षा विपत्ति में अधिक सेवा करते हैं।

भृत्या अपि ते एव ये सम्पत्तेः विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते।

82. जो दान देता है, वह स्वर्ग जाता है।

यो दानं ददाति सः स्वर्गं याति।

83. छात्राएं पाठशाला जाती हैं।

छात्राः पाठशालां गच्छन्ति।

84. मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु तक अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

नरेण आजन्मनः आमरणात् स्वकर्त्तव्यस्य पालनं करणीयम्।

85. सीता महल से देखती है।

सीता प्रासादात् प्रेक्षते।

86. लोभ से क्रोध पैदा होता है।

लोभात् क्रोधः प्रभवति।

87. राम साँप से डरता है।

रामः सर्पात् बिभेति।

88. कृष्ण माता से छिपता है।

कृष्णः मातुः निलीयते।

89. कवियों में कालिदास श्रेष्ठ माने जाते हैं।

कविषु कालिदासः श्रेष्ठः मन्यते।

टिप्पणी

90. श्याम हिरण पर बाण फेंकता है।

श्यामः मृगे बाणं क्षिपति।

91. आज सुबह बारिश हुई थी।

अद्य प्रातःकाले वृष्टिः अभवत्।

92. ज्ञानार्थक विद् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर वेद शब्द व्युत्पन्न होता है।

ज्ञानार्थकाद् विद्धातोर्घञि प्रत्यये सति वेद इति पदं निष्पद्यते।

93. बड़ों का निरादर नहीं करना चाहिए।

ज्येष्ठानां पराभवं न कर्तव्यम्।

94. गुरुओं की आज्ञा अतिक्रमण करने योग्य नहीं होती।

गुरूणां आज्ञा अनुल्लंघनीया भवति।

95. दुष्टों का संहार करना चाहिए।

दुष्टानां दमनं करणीयम्।

96. केवल अज्ञानी जन माया से तिरस्कृत होते हैं।

अज्ञानिनो हि माययाऽभिभूयन्ते।

97. सूर्य हजार गुणा वापस करने के लिए ही जल ग्रहण करता है।

रविः हि रसं सहस्रगुणमुत्स्रष्टुम् आदत्ते।

98. तुम किसलिए गुस्सा करते हो?

त्वं किमर्थं क्रुध्यसि?

99. हम दोनों अंग्रेज़ी भाषा में लिख रहे हैं।

आवाम् अंग्रेज़ी-भाषायां लिखावः।

100. मैं जंगल में रहता हूं।

अहम् अरण्ये वसामि।

101. तुम दोनों अपने घर जाओ।

युवां स्वगृहं गच्छेतम्।

102. बच्चा छाछ पी ले।

शिशुः तक्रं पिबेत्।

103. राम से कृष्ण रास्ता पूछता है।

रामं कृष्णः पन्थानं पृच्छति।

104. मेरे घर के पीछे आँगन है।

मम गृहस्य पृष्ठे प्राङ्गणम् वर्तते।

105. मैं आज नहीं आ सकता, कल आऊँगा।

अहमद्य नागन्तुं शक्नोमि, श्वः आगमिष्यामि।

106. जब वह आएगा तब मैं भोजन करूँगा।

यदा सः आगमिष्यति तदा अहं भोक्ष्यामि।

107. आजकल राजनीति का ही बोलबाला है।

अद्यत्वे राजनीतेः एव प्राधान्यम् अस्ति।

108. अब कथा आरम्भ की जाती है।

अथ कथा आरभ्यते।

109. बालिका रात-दिन पढ़ती है।

बालिका नक्तन्दिवम् पठति।

110. इस श्लोक को बार-बार पढ़ो।

एतं श्लोकं पौनःपुन्येन पठतु।

111. तेरे समान और कोई नहीं है।

न त्वत्समोऽस्ति कश्चित्।

112. गुरुओं की तो बात ही क्या, शिष्य भी योग्य हैं।

गुरूणां तु का कथा, शिष्या अपि योग्याः सन्ति।

113. अहंकार नहीं करना चाहिए।

अहङ्कारो न कर्त्तव्यः।

114. गङ्गा का जल पवित्र होता है।

गङ्गोदकं पवित्रं भवति।

115. दो मुनि आए और उन्होंने स्नान किया।

मुनी आगच्छताम् तौ अस्नाताम् च।

116. मनुष्य की बुद्धि भी वैसे ही क्रम से बढ़ती है जैसे शरीर और धन बढ़ता है।

नरस्य बुद्धिः अपि तथैव क्रमेण वर्धते यथा शरीरं धनं च वर्धते।

117. इस समय किस दिशा में किन के साथ युद्ध हो रहा है।

इदानीं कस्यां दिशि कैः सह युद्धं प्रवर्त्तते।

118. कभी किसी को झूठ नहीं बोलना चाहिए।

नैव केनचित् खलु अनृतादिकं वक्तव्यम्।

119. हमेशा वाणी से सत्य, प्रिय और मधुर बोलना चाहिए।

सर्वदा वाचा च सत्यं प्रियं मधुरं वाच्यम्।

120. मैं कल पैदल गांव गया था।

अहं ह्यः पद्भ्यां ग्रामम् अगच्छम्।

टिप्पणी

टिप्पणी

121. मैना मनुष्य के समान बोलती है।

मेनका मनुष्यवत् वदति।

122. मनुष्यों को एक-दूसरे के साथ कैसा आचरण करना चाहिए?

मनुष्यैः परस्परं कथं वर्त्तितव्यम्?

123. मैंने तो इस प्रकार का पति अच्छे भाग्य से पाया है।

मया त्वीदृशः पतिः सौभाग्येन लब्धोऽस्ति।

124. अरे राम! यहां आओ बातचीत करें।

हे राम! अत्र आगच्छ सम्भाषणं कुर्याव।

125. आज तूने कितना काम किया?

अद्य त्वया कियत् कार्यं कृतम्?

126. इस समय मेरे नेत्र में रोग है, वह कैसे ठीक होगा?

इदानीं मम नेत्रे रोगोऽस्ति, स कथं निवर्त्स्यते।

127. यह मेरा लेख है, देखिए।

अयं मम लेखोऽस्ति, पश्यताम्।

अपनी प्रगति जांचिए

5. हिंदी से संस्कृत में अनुवाद करते समय किस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए?

(क) तत्सम (ख) तद्भव

(ग) क्लिष्ट (घ) सरल

6. 'कृ' धातु से क्रिया पूर्ति के लिए पूर्व धातु में किस प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है?

(क) क्त्वा (ख) ल्युट्

(ग) तुमुन् (घ) क्त

7. प्रथम पुरुष और मध्यम पुरुष के कर्ता के संयुक्त प्रयोग में कैसी क्रिया होती है?

(क) एकवचन की (ख) द्विवचन की

(ग) मध्यम पुरुष की (घ) उत्तम पुरुष की

5.4 संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद कौशल

संस्कृत से हिन्दी अनुवाद करने के लिए रचित साहित्य की विधा पर विशेष ध्यान देना होता है। संस्कृत साहित्य को मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है-

1. गद्य
2. पद्य

टिप्पणी

गद्य भाग में प्रायः सरल वाक्य होते हैं जबकि पद्य भाग में वाक्यों के ज्ञान के लिए पद्य अथवा श्लोक के अन्वय का पूर्व ज्ञान आवश्यक होता है। अनुवाद के लिए शेष नियम प्रायः हिन्दी से संस्कृत अनुवाद के समान ही विलोम क्रम में समझे जा सकते हैं। अर्थात् जिस प्रकार 'ने, को' आदि विभक्ति चिन्हों के आधार पर प्रथमा, द्वितीया आदि विभक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए, वैसे ही संस्कृत से हिन्दी अनुवाद करते हुए प्रथमा, द्वितीया विभक्ति के आधार पर हिन्दी वाक्यों में 'ने' और 'को' आदि चिन्हों को स्थापित करते हुए हिन्दी की शब्दावली से वाक्य बनाने चाहिए। तथापि संस्कृत भाषा सन्धि व समास बहुल है अतः सन्धिविच्छेद और समास विग्रह का पर्याप्त अभ्यास कर लेना चाहिए। उदाहरण के लिए 'वागर्थाविव' का अनुवाद करने से पूर्व निम्नलिखित सन्धिविच्छेद करना होगा-

'वाक् + अर्थौ + इव'

तत्पश्चात् यहाँ समास विग्रह भी ज्ञातव्य है-

वाक् च अर्थः च वागर्थौ

(वाणी और अर्थ के समान)

इस सन्दर्भ में निम्नलिखित वाक्यों और श्लोकों के अर्थ को पढ़ने से स्थिति और अधिक स्पष्ट होगी-

संस्कृत से हिन्दी अनुवाद अभ्यास

1. मालिनी गृहस्य द्वारम् उद्घाटयति।

   हिन्दी अनुवाद-मालिनी घर का दरवाजा खोलती है।

2. भवत्याः पुत्री कस्यां कक्षायां पठति।

   हिन्दी अनुवाद-आपकी पुत्री किस कक्षा में पढ़ती है?

3. भवान् भविष्ये किं भवितुम् इच्छति।

   हिन्दी अनुवाद-आप भविष्य में क्या बनना चाहते हैं?

4. मम भगिनी अमेरिका देशं गतवती।

   हिन्दी अनुवाद-मेरी बहन अमेरिका गई।

5. सा ततः मह्यं सङ्गणकयन्त्रम् आनेष्यति।

   हिन्दी अनुवाद-वह वहाँ से मेरे लिए कंप्यूटर लाएगी।

6. अहम् केनचित् शाकाहारिणा सह विवाहं कर्तुम् इच्छामि।

   हिन्दी अनुवाद-मैं किसी शाकाहारी से विवाह करना चाहती हूं।

7. मदिरापानस्य, धूम्रपानस्य, द्यूतक्रीडया च व्यसनैः **मनुष्यो** निकृष्टः भवति।

   हिन्दी अनुवाद-शराब पीने से, धूम्रपान करने से और जुआ खेलने से मनुष्य निकम्मा हो जाता है।

   (**विशेष**-प्रस्तुत वाक्य में विसर्ग को उत्व होने से 'मनुष्यः' के स्थान पर 'मनुष्यो' प्रयोग हुआ है। उत्व के नियम को न जानने वाला विद्यार्थी यह नहीं पहचान सकता कि यह प्रथमा विभक्ति एकवचन का रूप 'मनुष्यः' है।)

टिप्पणी

8. अनुष्टुप्-छन्दसि प्रत्येकं चरणे अष्टौ मात्राः भवन्ति।

हिन्दी अनुवाद-अनुष्टुप् छन्द में प्रत्येक चरण में आठ मात्राएँ होती हैं।

(**विशेष**-'छन्दस्' सकारान्त नपुंसकलिंग शब्द है, अतः इसके रूपों का बोध 'मनस्' के रूपों के समान होता है।)

9. यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया।

(**अवन्यः**-अद्य शकुन्तला यास्यति इति (विचार्य मम)

हृदयं उत्कण्ठया संस्पृष्टम् (अस्ति)।

हिन्दी अनुवाद-आज शकुन्तला जाएगी यह सोचकर मेरा हृदय उत्कण्ठा/बेचैनी से जकड़ा हुआ है।

(**विशेष**-श्लोकों का अनुवाद करते समय भाव के अनुसार कुछ शब्दों का अध्याहार भी करना आवश्यक होता है, जैसे प्रस्तुत पंक्ति के अनुवाद में 'विचार्य' और 'अस्ति' शब्दों का अध्याहार किया गया है।)

10. **मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया**

निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।

आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया

धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः।

अन्वय-अमी रथ्याः रश्मिषु मुक्तेषु निरायतपूर्व-कायाः निष्कम्प चामरशिखाः निभृत् ऊर्ध्वकर्णाः मृगजवाक्षमया इव आत्मोद्धतैः रजोभिः अपि अलङ्घनीयाः (भूत्वा) धावन्ति।

ये घोड़े लगामों के छोड़ दिए जाने पर अपने आगे के शरीर की विशेष लंबाई को प्राप्त होकर, अपनी कलगियों को कंपरहित बनाए हुए, कानों को पूरी तरह से ऊपर उठाए हुए, हिरणों की गति को पराजित करते हुए, अपने पैरों से उड़ने वाली धूल से भी न लाँघे जाने वाले होकर दौड़ रहे हैं।

(विशेष्य-विशेषण सम्बन्ध तथा तृतीया विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य है)

विशेष-प्रस्तुत श्लोक में 'रश्मि' शब्द के प्रयोग पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस शब्द का हिंदी में अधिक प्रचलित अर्थ है 'सूर्य-किरण', जबकि इस प्रसंग में यह शब्द 'घोड़े की लगाम' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद करते समय शब्दकोष का प्रयोग भी बुद्धिमानीपूर्वक करना आवश्यक होता है।

अब आप अनुवाद के नियम जान चुके हैं, यहां अनुवाद के अभ्यास हेतु भर्तृहरि के लोकप्रिय नीति शतक के श्लोक दिए जा रहे हैं जिनसे आप अतिरिक्त ज्ञान में वृद्धि कर सकते हैं-

श्लोक–अन्वय अनुवाद अभ्यास (भर्तृहरि के नीतिशतकम् से)

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक्तं च ताञ्चमदनञ्च इमां च मां च॥1॥

टिप्पणी

अन्वयः यां (अहम्) सततं चिन्तयामि सा मयि विरक्ता (वर्तते तथा च) सा अपि अन्यं जनम् इच्छति। स जनः अन्यसक्तः। अस्मत् कृते च काचिद् अन्या परितुष्यति। तां च, तं च, मदनं च, इमां च, मां च धिक्।

हिन्दी - जिस (स्त्री) में मैं आसक्त हूँ वह स्त्री किसी दूसरे पुरुष की कामना करती है, (परन्तु उसका अभीष्ट) वह पुरुष किसी अन्य स्त्री में अनुरक्त है मेरे प्रति भी कोई दूसरी स्त्री अनुरक्त है। अतः (मेरे द्वारा वाञ्छित) उस स्त्री को, उस पुरुष को, (मेरे में अनुरक्त) इस स्त्री को, कामदेव को तथा मुझे धिक्कार है।।

(धिक् के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग द्रष्टव्य)

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति।।2।।

अन्वयः अज्ञः सुखमाराध्यः, विशेषज्ञः सुखतरमाराध्यते, तं ज्ञानलवदुर्विदग्धं नरं ब्रह्माऽपि न रञ्जयति।

हिन्दी - ज्ञानहीन को सरलता से समझाया जा सकता है। विशेषज्ञ को तो और भी अधिक सरलता से संतुष्ट किया जा सकता है। किन्तु जो मनुष्य अल्प ज्ञान से गर्वित है उसे साक्षात् ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकते।

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्,
समुद्रमपि संतरेत् प्रचलदूर्मिमालाऽऽकुलम्।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।3।।

(द्वितीया विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः (जनः) मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात् प्रसह्य मणिमुद्धरेत्। प्रचलद्-ऊर्मिमालाकुलं समुद्रम् अपि सन्तरेत्। कोपितं भुजङ्गम् अपि शिरसि पुष्पवद् धारयेत्, तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत्।

हिन्दी - मनुष्य मगरमच्छ के मुख की दाढ़ों के बीच से बलपूर्वक मणि निकाल सकता है, बड़ी-बड़ी लहरों से व्याप्त समुद्र को पार कर सकता है, क्रोधित सर्प को भी फूल की तरह सिर पर धारण कर सकता है किन्तु हठी अर्थात् मूर्ख के मन को प्रसन्न नहीं कर सकता है।

लभेत् सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्,
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टिमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।4।।

(विधिलिङ्लकार प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः यत्नतः पीडयन् सिकतासु अपि तैलं लभेत्। पिपासार्दितः च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिबेत् पर्यटन् कदाचित् शशविषाणमपि आसादयेत्, तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत्।

हिन्दी - प्रयत्न पूर्वक मर्दित करने पर रेत से भी कोई तेल प्राप्त कर सकता है; मृगतृष्णा से भी प्यासा जल पी सकता है, घूमते-घूमते कभी खरगोश का सींग भी प्राप्त कर सकता है पर दुराग्रही मूर्ख के चित्त को प्रसन्न नहीं किया जा सकता।

टिप्पणी

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते,
छेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते,
नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः॥5॥

('तुमुन्' प्रत्यय प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः यः खलान् सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः सतां पथि नेतुं वाञ्छति असौ बालमृणालतन्तुभिः व्यालं रोद्धुं समुज्जृम्भते, शिरीषकुसुमप्रान्तेन वज्रमणिं छेत्तुं संनह्यते, मधुबिन्दुना क्षाराम्बुधेः माधुर्यं रचयितुमीहते।

हिन्दी - जो व्यक्ति दुष्टों को अमृतमयी सूक्तियों से सन्मार्ग पर लाना चाहता है वह कोमल कमल-तन्तुओं से दुष्ट गज को बाँधना चाहता है, शिरीष पुष्प के अग्रभाग से हीरे को बेधना चाहता है और शहद की एकमात्र बूँद से खारे समुद्र को मीठा करना चाहता है।

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे
विभूषणं मौनमपण्डितानाम्॥6॥

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः विधात्रा स्वायत्तम् एकान्तगुणं छादनं मौनम् अज्ञतायाः विनिर्मितम्। (इदं) सर्वविदां समाजे अपण्डितानां विशेषतः विभूषणं (भवति)।

हिन्दी - ब्रह्मा ने अज्ञान को छिपाने के लिये सर्वथा स्वाधीन, एकमात्र मौन नामक गुण की रचना की है। यह मौन नामक गुण विद्वज्जनों की सभा में विशेष रूप से मूर्खों का आभरण होता है।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥7॥

('इव' के योग में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः अहं यदा किञ्चिज्ज्ञः (किञ्चित् + ज्ञः) अभवम् (तदा) द्विप इव मदान्धः समभवम् 'सर्वज्ञोऽस्मि' इति मम मनः अवलिप्तम् अभवत्। (परन्तु) यदा बुधजनसकाशात् किञ्चिद् अवगतं, तदा 'मूर्खः अस्मि' इति मे मदो ज्वर इव व्यपगतः।

हिन्दी - जब मैं कम ज्ञान रखने वाला अल्पज्ञ था तब 'मैं सर्वज्ञ हूँ' इस अभिमान से मेरा मन हाथी की तरह अहंकार से अन्धा हो गया परन्तु जैसे ही बुद्धिमानों की सङ्गति

से मुझे कुछ (वस्तु) ज्ञान हुआ वैसे ही मेरा सारा गर्व ज्वर की तरह उतर गया और 'मैं मूर्ख हूँ' ऐसा मुझे प्रतीत होने लगा।

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते
न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्॥8॥

(विभिन्न विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः श्वा कृमिकुलचितं, लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं निरामिषं नरास्थि निरुपमरसं प्रीत्या खादन् सुरपतिम् अपि पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते (तथा) हि क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुतां न गणयति।

हिन्दी - जिस प्रकार कुत्ता कीटों से व्याप्त, लार से भीगी हुई, विकृतगन्धयुक्त, घृणास्पद, मांसरहित मनुष्य की हड्डी को अत्यन्त प्रेम से चबाता हुआ अपने समीप में देवराज इन्द्र को खड़ा देखकर भी उनसे लज्जित नहीं होता। उसी प्रकार निकृष्ट जन भी संसार से पाई गई वस्तु की तुच्छता का विचार नहीं करते।

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तत् क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गाङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः॥7॥

(पञ्चमी विभक्ति के साथ 'तसिल्' प्रत्यय का प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः इयं गङ्गा स्वर्गात् शार्वं शिरः पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरम्, उत्तुङ्गात् महीध्रात् अवनिम्, अपि च अवनेः जलधिं (एवं) अधः अधः स्तोकं पदं उपगता, अथवा विवेकभ्रष्टानां विनिपातः शतमुखः भवति।

हिन्दी - जिस प्रकार भागीरथी गङ्गा स्वर्गलोक से शिव के सिर पर, शिव के सिर से हिमालय पर, हिमालय से पृथ्वी पर और पृथ्वी से समुद्र में, क्रमशः निम्न स्थानों पर उतरी, उसी प्रकार अविवेकी पुरुष भी निम्न-निम्न स्थान को प्राप्त कर पतित होते हैं।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥10॥

(तृतीया विभक्ति के विशेष प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः हुतभुक् जलेन, सूर्यातपः छत्रेण, समदः नागेन्द्रः निशिताङ्कुशेन, गोगर्दभौ दण्डेन, व्याधिः भेषजसंग्रहैः, विषं च विविधैः मन्त्रप्रयोगैः वारयितुं शक्यः, एवं सर्वस्य शास्त्रविहितं औषधम् अस्ति (किन्तु) मूर्खस्य औषधं नास्ति।

हिन्दी - अग्नि जल से, सूर्य की धूप छाते से, मदमत्त हाथी कठोर अङ्कुश से, रोग औषधि सेवन से एवं विष विविध मन्त्र प्रयोगों से शान्त किया जा सकता है, इस प्रकार

टिप्पणी

सबकी औषधि शास्त्र में विहित होने पर भी मूर्ख की कोई औषधि नहीं है।

टिप्पणी

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमान
-स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥11॥

(प्रथमा विभक्ति के विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः (यः पुमान्) साहित्यसंगीतकलाविहीनः (सः) पुच्छविषाणहीनः साक्षात्पशुः (एव अस्ति)। (यत् सः) तृणं न खादन् अपि जीवमानः (दृश्यते) तत् पशूनां परमं भागधेयम् (अस्ति)।

हिन्दी - जो मनुष्य साहित्य, संगीत और कलाओं से अनभिज्ञ है वह पूँछ तथा सींग से रहित साक्षात् पशु है और यदि वह घास न खाता हुआ भी जीवन धारण कर रहा है तो यह पशुओं का महान् सौभाग्य है (अर्थात यह मनुष्य समाज का दुर्भाग्य है कि वह मनुष्यों के योग्य अनाज को खा रहा है।)।

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥12॥

(लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः येषां विद्या न, तपो न, दानं, ज्ञानं न, शीलं न, गुणो न, धर्मो न, ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः (सन्ति) मनुष्यरूपेण (ते) मृगाः चरन्ति।

हिन्दी - जिन मनुष्यों में न तो विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न सदाचार है और न धर्म है वे इस मरणधर्मा पृथ्वी पर भार हैं और मनुष्य के रूप में वे पशु ही भ्रमण कर रहे हैं।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि॥13॥

('सह योगे' तृतीया विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः वनचरैः सह पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वरम्, (किन्तु) सुरेन्द्रभवनेषु अपि मूर्खजनसंपर्कः न (वरम्)।

हिन्दी - वनचारी पशुओं के साथ कठिन पर्वतीय स्थलों में भ्रमण करना श्रेष्ठ है पर इन्द्र के महलों में भी मूर्खजनों के साथ सम्बन्ध बनाना कल्याणकारी नहीं है।

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयाऽऽगमाः
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयस्त्वर्थं विनाऽपीश्वराः
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः॥14॥

('कवयः' प्रथमा विभक्ति के विशेष्य पद के अनुरूप विभक्ति विशेषण प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमाः विख्याताः कवयः, यस्य प्रभोर्विषये निर्धनाः वसन्ति, तद् वसुधाधिपस्य जाड्यम्। विख्याताः कवयः धनं विनाऽपि ईश्वराः हि (ते) कुपरीक्षकाः कुत्स्याः स्युः यैर्मणयोऽर्घतः पातिताः।

हिन्दी - शास्त्र से अलंकृत शब्दों से सुन्दर वाणी वाले तथा जिनके शास्त्र शिष्यों को प्रदान किये जाते हैं, ऐसे प्रसिद्ध विद्वान् यदि किसी राजा के राज्य में निर्धन रहते हैं तो यह उस राजा की मूर्खता है। पण्डित तो धन के बिना भी धनी है क्योंकि जिन दुष्टपरीक्षकों ने मणि को उचित मूल्य से गिरा दिया है, वे कुपरीक्षक निन्दनीय हैं (मणियाँ नहीं)।

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः! कस्तैः सह स्पर्धते॥15॥

(सम्बोधन बहुवचनान्त पद के लिए मध्यम पुरुष क्रिया-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः हे नृपाः! यत् हर्तुः गोचरं न याति, सर्वदा किमपि शं पुष्णाति हि अर्थिभ्यः अनिशं प्रतिपाद्यमानम् अपि परां वृद्धिं प्राप्नोति, कल्पान्तेषु अपि निधनं न प्राप्नोति (ईदृशं) विद्याख्यम् अन्तर्धनं येषाम् अस्ति तान् प्रति मानम् उज्झत। तैः सह कः स्पर्धते।

हिन्दी - जो चोरों को दृष्टिगोचर नहीं होता, सदैव अनिर्वचनीय मङ्गल को प्रदान करता है, याचक (विद्यार्थियों) को सतत देने से अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता है तथा प्रलयों में भी विनष्ट नहीं होता, ऐसा विद्या नामक भीतर रहने वाला धन जिन विद्वानों के पास है, हे राजाओ! उनके प्रति गर्व का त्याग करें। उनसे कौन स्पर्धा कर सकता है?

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् माऽवमंस्था-
स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां
न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम्॥16॥

(द्वितीया विभक्ति बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः (हे राजन्!) अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मा अवमंस्थाः। लघु तृणम् इव लक्ष्मीः तान् नैव संरुणद्धि। अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां वारणानां बिसतन्तुः वारणं न भवति।

हिन्दी - (हे राजन्!) तत्वज्ञानी विद्वानों का अनादर न करो। उक्त विद्वानों को तिनके के समान तुच्छ लक्ष्मी बांध नहीं सकती। जिनके कपोलस्थल नवीन मदपंक्ति से श्याम हैं ऐसे (मदमत्त) गजों को कमलनाल के रेशे नहीं बांध सकते।

अम्भोजिनीवनविहारविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः॥17॥

(समर्थ के योग में 'तुमुन्' प्रत्यय प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः नितरां कुपितो विधाता हंसस्य अम्भोजिनीवनविहारविलासम् एव हन्ति। तु असौ अस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां वैदग्ध्यकीर्तिम् अपहर्तुं न समर्थः।

टिप्पणी

हिन्दी - अत्यन्त क्रुद्ध ब्रह्मा हंस के कमलवन में विहार की क्रीडा को नष्ट कर सकते हैं किन्तु वे भी इसके दूध और जल के पृथकीकरण के कौशल के कारण उत्पन्न कीर्ति को नष्ट नहीं कर सकते।

केयूराणि न विभूषयन्ति पुरुषं, हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः
न स्नानं, न विलेपनं, न कुसुमं, नालङ्कृता मूर्द्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणं भूषणम्॥18॥

(भूषय्/समलङ्कृ- के योग मे कर्मकारक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः पुरुषं केयूराणि न विभूषयन्ति, चन्द्रोज्ज्वला हाराः न, स्नानं न विलेपनं न, कुसुमं न, अलंकृता मूर्धजाः न (भूषयन्ति)। एका संस्कृता वाणी या धार्यते (सा) पुरुषं समलङ्करोति। खलु भूषणानि क्षीयन्ते। वाग्भूषणं सततं भूषणम्।

हिन्दी - मनुष्य को न तो बाजूबन्द सुशोभित करते हैं न चन्द्रमा के सदृश उज्ज्वल हार, न स्नान, न लेप, न पुष्प और न अलंकृत केश ही। एक मात्र जो शुद्ध वाणी है वही धारण करने पर अलंकृत करती है। निश्चय ही सभी आभूषण नष्ट हो जाते हैं; किन्तु वाणी रूपी आभूषण ही स्थायी आभूषण है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी, विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने, विद्या परं दैवतं,
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं, विद्याविहीनः पशुः॥19॥

(कर्मवाच्य में कर्तृपद 'विद्या' और क्रिया 'पूज्यते' प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः विद्या नाम नरस्य अधिकं रूपं, विद्या प्रच्छन्नगुप्तं धनं, विद्या भोगकरी यशः सुखकरी, विद्या गुरूणां गुरुः, विदेशगमने विद्या बन्धुजनः, विद्या परं दैवतं, विद्या राजसु पूज्यते हि धनं न, विद्याविहीनः पशुः (अस्ति)।

हिन्दी - विद्या ही मनुष्य का अत्यधिक सौन्दर्य और छिपा हुआ तथा रक्षित धन है। विद्या भोग संपादित कराने वाली, यश तथा सुख देने वाली है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। विदेश यात्रा में विद्या बन्धुजन है। विद्या सर्वोच्च देवता है। विद्या ही राजाओं के मध्य पूजित होती है धन नहीं। विद्याविहीन मनुष्य पशु है।

क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं, किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेत्देहिनां,
ज्ञातिश्चेदनलेन किं, यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः, किम् धनैर्विद्याऽनवद्या यदि,
व्रीडा चेत्किमु भूषणैः, सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्॥20॥

(प्रयोजनार्थ में 'किम्' के साथ तृतीया विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः देहिनां क्षान्तिश्चेत् कवचेन किं फलम्, क्रोधोऽस्ति चेत् अरिभिः किं (फलम्) ज्ञातिश्चेत् अनलेन किं, यदि सुहृद् (अस्ति) दिव्यौषधैः किं फलम्, यदि दुर्जनाः (सन्ति) सर्पैः किं, यदि अनवद्या विद्या (अस्ति) धनैः किम्? व्रीडा चेद् भूषणैः किम्, यदि सुकविता अस्ति राज्येन किम् फलमस्ति।

टिप्पणी

हिन्दी - मनुष्यों के पास यदि क्षमा है तो कवच की क्या आवश्यकता, यदि क्रोध है तो शत्रुओं से क्या लाभ, यदि बन्धुजन है तो अग्नि भी क्या बिगाड़ लेगी, यदि सन्मित्र है तो दिव्य औषधि की क्या आवश्यकता, यदि दुर्जन (पास) है तो सर्प क्या बिगाड़ लेंगे, यदि निर्मल विद्या है तो धन की क्या आवश्यकता, यदि लज्जा है तो आभूषणों की क्या आवश्यकता और यदि सुन्दर कविता है तो राज्य की क्या आवश्यकता।

दाक्षिण्यं स्वजने, दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जने,
प्रीतिः साधुजने, नयो नृपजने, विद्वज्जनेष्वार्जवम्।
शौर्यं शत्रुजने, क्षमा गुरुजने, नारीजने धूर्तता,
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः॥21॥

('विषय में' के अर्थ में सप्तमी विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः स्वजने दाक्षिण्यं, परिजने दया, दुर्जने सदा शाठ्यं, साधुजने प्रीतिः नृपजने नयः, विद्वज्जनेषु आर्जवं, शत्रुजने शौर्यं, गुरुजने क्षमा, नारीजने धूर्तता ये च पुरुषाः एवं कलासु कुशलाः तेषु एव लोकस्थितिः (अस्ति)।

हिन्दी - बन्धुवर्ग में उदारता, सेवकों पर दया, दुष्टों के प्रति कुटिलता, साधुजनों से प्रेम, राजा के प्रति नीतिपूर्वक व्यवहार, विद्वानों के साथ सरलता, शत्रुओं पर पराक्रम, गुरुजनों के प्रति क्षमा, स्त्रियों के प्रति छल (सत्य को छिपाना) - जो व्यक्ति इन कलाओं में पटु हैं उन्हीं पर संसार की सफलता स्थिर है।

जाड्यं धियो हरति, सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति, पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति, दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥22॥

(लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन के विविध प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः कथय सत्सङ्गतिः पुंसा किं न करोति? (सा) धियो जाड्यं हरति, वाचि सत्यं सिञ्चति, मानोन्नतिं दिशति, पापमपाकरोति, चेतः प्रसादयति, दिक्षु कीर्तिं तनोति।

हिन्दी - बताओ, सत्सङ्गति मनुष्यों का क्या-क्या (हित-संपादन) नहीं करती? (अर्थात् सभी कुछ करती है वह) बुद्धि की मूर्खता को दूर करती है, वाणी में सत्य का सञ्चार करती है, सम्मान-वृद्धि करती है, पाप को दूर करती है और दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥23॥

(यहां लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का प्रयोग द्रष्टव्य है)

टिप्पणी

अन्वयः सुकृतिनः रससिद्धाः ते कवीश्वराः जयन्ति येषां यशःकाये जरा मरणजं भयं न अस्ति।

हिन्दी - वे पुण्यात्मा रस-सिद्ध काव्य के नव रसों में सिद्ध कविश्रेष्ठ विजयी होते हैं जिनको यश रूपी शरीर की प्राप्ति हो जाने पर वृद्धावस्था और मरण से उत्पन्न भय नहीं रहता।

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा, स्वामी प्रसादोन्मुखः,
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो, निष्क्लेशलेशं मनः।
आकारो रुचिरः, स्थिरश्च विभवो, विद्यावदातं मुखं,
तुष्टे विष्टपकष्टहारिणि हरौ संप्राप्यते देहिना॥24॥

(प्रथमान्त और सप्तम्यन्त विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः विष्टपकष्टहारिणि हरौ तुष्टे देहिना सच्चरितः सूनुः, सती प्रियतमा, प्रसादोन्मुखः स्वामी, स्निग्धं मित्रम्, अवञ्चकः परिजनः, निष्क्लेशलेशं मनः, रुचिरः आकारः, स्थिरः, च विभवः, विद्यावदातं च मुखं सम्प्राप्यते।

हिन्दी - संसार के कष्टों का निराकरण करने वाले विष्णु के प्रसन्न होने पर मनुष्य सदाचारी पुत्र, साध्वी स्त्री, प्रसन्न स्वामी, स्नेही मित्र, न ठगने वाला परिजन, प्रसन्न मन, सुन्दर आकार, अचञ्चल ऐश्वर्य और विद्या से निर्मल मुख प्राप्त करता है।

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः, सत्यवाक्यं,
काले शक्त्या प्रदानं, युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्।
तृष्णास्रोतोविभङ्गो, गुरुषु च विनयः, सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः॥25॥

[सप्तमी विभक्ति के प्रकट व परोक्ष (समस्त पद में) प्रयोग द्रष्टव्य]

अन्वयः प्राणाघातात् निवृत्तिः, परधनहरणे संयमः, सत्यवाक्यं, काले शक्त्या प्रदानं, परेषां युवतिजनकथामूकभावः, तृष्णास्रोतोविभङ्गः, गुरुषु च विनयः, सर्वभूतानुकम्पा एष सर्वशास्त्रेषु अनुपहतविधिः सामान्यः श्रेयसां पन्थाः।

हिन्दी - प्राणवध से दूर रहना, दूसरे के धन के हरण में संयम, सत्यभाषण, यथोचित-समय पर सामर्थ्यानुसार दान, परस्त्रीचर्चा में मौन, लोभ की धारा को तोड़ना, गुरुओं के प्रति विनम्रता, सभी प्राणियों पर दया - यह सभी शास्त्रों में अनवरुद्ध विधान वाला कल्याण का सर्वसामान्य मार्ग है।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति॥26॥

(कर्तृवाच्य एवं कर्मवाच्य के एकत्र प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः नीचैः विघ्नभयेन न प्रारभ्यते खलु, मध्याः प्रारभ्य विघ्नविहताः विरमन्ति, उत्तमजनाः विघ्नैः पुनः पुनः प्रतिहन्यमानाः अपि (कार्यं) प्रारभ्य न परित्यजन्ति।

हिन्दी - अधम मनुष्य बाधाओं के भय से कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते, मध्यम स्वभाव के मनुष्य बाधा पड़ने पर प्रारम्भ किये कार्य को छोड़ देते हैं परन्तु उत्तम स्वभाव के

मनुष्य बार-बार विघ्नों से प्रताड़ित होने पर भी कार्य को प्रारंभ करके बिना समाप्त किये नहीं छोड़ते।

असन्तो नाऽभ्यर्थ्याः, सुहृदपि न याच्यः कृशधनः,
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम्।
विपद्युच्चैः स्थेयं, पदमनुविधेयं च महतां,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्॥27॥

(त्रिलिङ्ग में विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः असन्तो न अभ्यर्थ्याः, कृशधनः सुहृद् अपि न याच्यः, न्याय्या वृत्तिः प्रिया, असुभङ्गेऽपि मलिनम् असुकरम्, विपदि उच्चैः स्थेयम्, महतां पदम् अनुविधेयम्, इदम् विषमम् असिधाराव्रतं सतां केन उद्दिष्टम्।

हिन्दी - दुर्जनों से याचना न करना, दरिद्र मित्र से भी याचना न करना, न्यायपूर्ण वृत्ति का प्रिय होना, प्राणसङ्कट से भी दुष्कर्म को न करना, विपत्ति में उच्चभाव से स्थिर रहना, सज्जनों के मार्ग का अनुसरण - इस कठिन तलवार की धार जैसे तीक्ष्ण नियम का सज्जनों को किसने उपदेश किया है? (अर्थात् किसी ने नहीं वे स्वभावतः इसका आचरण करते हैं)।

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोऽपि कष्टां दशा-
मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भपिशितग्रासैकबद्धस्पृहः
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी॥28॥

(इन्नन्त शब्द 'केसरिन्' के विभिन्न विशेषण प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः क्षुत्क्षामोऽपि, जराकृशः, अपि, शिथिलप्रायः अपि, कष्टां दशाम् आपन्नः अपि, विपन्नदीधितिः अपि मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भपिशितग्रासैकबद्धस्पृहः मानमहताम् अग्रेसरः केसरी प्राणेषु नश्यत्सु अपि किं जीर्णं तृणमत्ति?

हिन्दी - भूख से दुर्बल, वृद्धावस्था से क्षीण, शक्तिहीन, विपन्नावस्था में पड़ा और तेजोविहीन भी मदमत्त हाथियों के कपोल को फाड़कर मांस खाने की एकमात्र रुचि वाला तथा आत्मसम्मानियों में अग्रगण्य सिंह क्या प्राणों के नष्ट होने की अवस्था में भी सूखी घास खाता है? अर्थात् नहीं।

स्वल्पंस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थिकं
श्वा लब्ध्वापरितोषमेति, न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये।
सिंहो जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं,
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम्॥29॥

('क्त्वा' प्रत्यय प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः श्वा स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमपि अस्थि लब्ध्वा परितोषम् एति। तत् तु तस्य क्षुधाशान्तये न। सिंहः अङ्कमागतमपि जम्बुकं त्यक्त्वा द्विपं निहन्ति। कृच्छ्रगतोऽपि सर्वः जनः सत्त्वानुरूपं फलं वाञ्छति।

टिप्पणी

टिप्पणी

हिन्दी - जिसमें अल्पमात्र स्नायु और मेद बचा है ऐसी हड्डी को पाकर भी कुत्ता सन्तुष्ट हो जाता है यद्यपि वह उसकी भूख मिटाने के लिए पर्याप्त नहीं है, पर सिंह गोद में आये गीदड़ को छोड़कर भी हाथी को मारता है। ठीक ही है, सङ्कट में पड़ा प्रत्येक प्राणी भी अपने पराक्रम के अनुरूप फल चाहता है।

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं,
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते, गजपुङ्गवस्तु
धीरं विलोकयति, चाटुशतैश्च भुङ्क्ते॥30॥

('ल्यप्' प्रत्यय प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः श्वा पिण्डदस्य (पुरतः) लांगूलचालनम् अधः चरणावपातं भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च कुरुते। गजपुङ्गवः तु धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते।

हिन्दी - कुत्ता अन्नदाता के सामने पूँछ हिलाता है, नीचे पैर में गिरता है और भूमि पर गिरकर मुख तथा पेट दिखाता है परन्तु श्रेष्ठ हाथी (भोजन सामने आने पर भी) गम्भीरता से देखता है और सैकड़ों अनुनय-विनय करने पर ही खाता है।

परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्॥31॥

(इन्नन्त विशेषण प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः परिवर्तिनि संसारे कः (वा) न मृतः (कः) वा न जायते। स एव जातः येन जातेन वंशः समुन्नतिं याति।

हिन्दी - इस परिवर्तनशील संसार में कौन (व्यक्ति) मरता नहीं और कौन उत्पन्न नहीं होता। (वस्तुतः) उत्पन्न वही है जिसके उत्पन्न होने से वंश की उन्नति होती है।

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य, शीर्यते वन एव वा॥32॥

('द्वय' शब्द का स्त्रीलिङ्ग विशेषण के रूप में प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः मनस्विनः कुसुमस्तबकस्य इव द्वयी वृत्तिः (भवति) सर्वलोकस्य मूर्ध्नि वा (तिष्ठति), वन एव वा शीर्यते।

हिन्दी - मनस्वी (स्वाभिमानी, धीर) पुरुषों की पुष्प-गुच्छ की भांति दो प्रकार की वृत्ति (व्यवहार) होती है - या तो वे सभी संसार के सिर पर (आदरयुक्त) रहेंगे या फिर वन (एकान्त) में जीर्ण हो जायेंगे।

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः सम्भाविताः पञ्चषा-
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते।
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भास्करौ
भ्रातः! पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषाकृतिः॥33॥

('वैर' संज्ञाशब्द का नामधातु प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः हे भ्रातः! पश्य, बृहस्पतिप्रभृतयः अन्येऽपि पञ्चषाः सम्भाविता (ग्रहाः) सन्ति (किन्तु) विशेषविक्रमरुचिः शीर्षावशेषाकृतिः (अपि) दानवपतिः एष राहुः तान् प्रति न वैरायते। भास्करौ दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ द्वावेव पर्वणि ग्रसते।

हिन्दी - हे भाई! देखो, बृहस्पति आदि अन्य पाँच-छः प्रधान ग्रह भी हैं किन्तु विशेष पराक्रम प्रदर्शित करने की रुचि वाला शीर्षमात्र जिसका आकार बचा है, ऐसा भी यह राक्षसराज राहु उनसे शत्रुता नहीं करता अपितु ग्रहण पर्व के आने पर तेजस्वी सूर्य और चन्द्रमा को ही ग्रसता है।

वहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफलकस्थितां,
कमठपतिना मध्ये पृष्ठं सदा स च धार्यते।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
ददहह! महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः॥34॥

(इकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्द का कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः शेषः फणाफलकस्थितां भुवनश्रेणीं वहति। स च कमठपतिना सदा मध्ये पृष्ठं धार्यते। तमपि पयोधिः अनादरात् क्रोडाधीनं कुरुते। अहह! महतां चरित्रविभूतयः निःसीमानः (भवन्ति)।

हिन्दी - शेषनाग पृथ्वी श्रेणी को फण रूपी फलक पर धारण करते हैं। उन शेषनाग को कच्छप रूपी भगवान् सदा अपनी पृष्ठ के मध्यभाग में धारण करते हैं और उस कछुए को भी समुद्र अनायास ही बिना प्रयास के अपनी गोद में धारण करते हैं। आश्चर्य है! महापुरुषों के आचरण की कोई सीमा नहीं होती है।

वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः।
तुषाराऽद्रेः सूनोरहह! पितरि क्लेशविवशे
न चासौ सम्पातः पयसि पयसां पत्युरुचितः॥35॥

(ऋकारान्त 'पितृ' का भावे सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः उद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः समदमघवन्मुक्तकुलिशप्रहारैः तुषाराद्रेः सूनोः पक्षच्छेदः वरम् (आसीत्, किन्तु) अहह! पितरि क्लेशविवशे पयसां पत्युः पयसि असौ सम्पातः नोचितः।

हिन्दी - गर्वयुक्त इन्द्र के द्वारा छोड़े गये वज्र के प्रहारों से जो ऊपर उठती हुई अत्यधिक अग्नि के कारण असहनीय हैं, उनसे हिमालय के पुत्र मैनाक के पंखों का कट जाना (या मर जाना) श्रेयस्कर था। किन्तु हाय! पिता (हिमालय) के क्लेश से विवश हो जाने पर पिता को छोड़कर (अर्थात् पंख कटने से कष्टान्वित हो जाने पर) उसका समुद्र में गिरना (छिपना) कदापि उचित नहीं था।

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतविकृतिं कथं सहते॥36॥

(परस्मैपद व आत्मनेपद के क्रिया प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः अचेतनोऽपि इनकान्तः सवितुः पादैः स्पृष्टः यत् प्रज्वलति तत् तेजस्वी पुरुषः परकृतविकृतिं कथं सहते।

हिन्दी - यदि निर्जीव भी सूर्यकान्तमणि सूर्य के पैरों (किरणों) का स्पर्श प्राप्त करके तेज उगलने लगती है तो भला तेजस्वी पुरुष कैसे दूसरे द्वारा किये गये तिरस्कार को सहन कर सकता है?

टिप्पणी

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः॥37॥

(सप्तमी बहुवचनान्त विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः शिशुः अपि सिंहः मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु निपतति, सत्त्ववतां इयं प्रकृतिः। तेजसो हेतुः वयः न खलु।

हिन्दी - सिंह का बालक भी मद जल में सिक्त गण्डस्थल वाले (अर्थात् प्रौढ) हाथियों पर आक्रमण करता है। बलशालियों का यही स्वभाव है अवस्था अर्थात् आयु निश्चित रूप से तेज का कारण नहीं होती है।

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतु,
शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं,
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे॥38॥

('विना' के योग में तृतीया प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः जातिः रसातलं यातु, गुणगणः तत्राप्यधो गच्छतु। शीलं शैलतटात् पततु, अभिजनं वह्निना संदह्यतां, वैरिणि शौर्ये आशु वज्रं निपततु। नः केवलम् अर्थः अस्तु येन एकेन विना इमे समस्ताः गुणाः तृणलवप्रायाः (सन्ति)।

हिन्दी - जाति रसातल में चली जाए, गुणसमूह उससे भी नीचे चले जाए, सदाचार पर्वत के तट से गिर जाए, कुलीनता अग्नि से जल जाए, शत्रु भूत पराक्रम पर तत्काल वज्रपात हो जाए। हमारे पास केवल धन रहे क्योंकि जिसके बिना ये सभी गुण तिनके के समान निरर्थक हो जाते हैं।

तानीन्द्रियाण्यविकलानि, तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहता, वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव,
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥39॥

(त्रिलिङ्ग विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः अविकलानि तानि इन्द्रियाणि, तदेव नाम, अप्रतिहता सा बुद्धिः, तदेव वचनम् अर्थोष्मणा विरहितः स एव तु पुरुषः क्षणेन अन्यः भवति एतत् विचित्रम्।

हिन्दी - ये ही विकाररहित हुई इन्द्रियाँ हैं, वही नाम है, वही अकुण्ठित (तीव्र) बुद्धि है, वही वाणी है पर यह विचित्र बात है कि धन की गर्मी से रहित वही पुरुष क्षणमात्र में बदल जाता है, भिन्न व्यवहार वाला हो जाता है, उपेक्षणीय हो जाता है।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः, स श्रुतवान्गुणज्ञः।

स एव वक्ता, स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।।40।।

(प्रथमैकवचन विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः यस्य वित्तमस्ति स नरः कुलीनः, सः पण्डितः सः श्रुतवान् (सः) गुणज्ञः, स एव वक्ता, सः दर्शनीयः च सर्वे गुणाः काञ्चनम् आश्रयन्ति।

हिन्दी - (धनलोलुप संसार की दृष्टि में) जिसके पास धन है वही मनुष्य उच्च वंश में उत्पन्न है, वही विद्वान् है, वही शास्त्रज्ञ है, वही गुणवान् है, वही वक्ता और वही देखने योग्य है क्योंकि सभी गुण स्वर्ण (धन) का ही आश्रय ग्रहण करते हैं।

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति, यतिः सङ्गात्सुतो लालना-
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः, स्नेहः प्रवासाश्रया-
न्मैत्री चाऽप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम्।।41।।

(कारणे पञ्चमी विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः नृपतिः दौर्मन्त्र्यात्, यतिः सङ्गात्, सुतः लालनात्, विप्रः अनध्ययनात्, कुलं कुतनयात्, शीलं खलोपासनात्, ह्रीः मद्यात्, कृषिः अपि अनवेक्षणात्, स्नेहः प्रवासात्, मैत्री च अप्रणयात्, समृद्धिः अनयात्, धनं त्यागात् प्रमादात् (च विनश्यति)

हिन्दी - बुरी मन्त्रणा से राजा, आसक्ति से संन्यासी, वेदादि के न पढ़ने से ब्राह्मण, कुपुत्र से वंश, दुष्टों के संग से सदाचार, मद्यपान से लज्जा, न देखे जाने से खेती, प्रवास से प्रेम, प्रेम के अभाव से मित्रता, नीति के अभाव से ऐश्वर्य तथा (व्यर्थ) त्याग और प्रमाद से धन, नष्ट हो जाते हैं।

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति।।42।।

(संख्यावाची विशेषण प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः वित्तस्य दानं, भोगः, नाशः, तिस्रः गतयः भवन्ति, यः न ददाति न च भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिः भवति।

हिन्दी - दान, उपभोग और नाश धन की ये तीन गतियाँ/दशाएँ होती हैं, जो पुरुष न तो दान करता है और न भोग ही करता है उसके धन की तीसरी (नाश की) गति होती है।

मणिः शाणोल्लीढः, समरविजयी हेतिदलितो,
मदक्षीणो नागः, शरदि सरितः श्यानपुलिनाः।
कलाशेषश्चन्द्रः, सुरतमृदिता बालवनिता-
स्तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु जनाः।।43।।

(त्रिलिङ्गी विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः शाणोल्लीढः मणिः, हेतिदलितः समरविजयी, मदक्षीणः नागः, शरदि श्यानपुलिनाः सरितः, कलाशेषः चन्द्रः, सुरतमृदिता बालवनिता, अर्थिषु गलितविभवा नराः च स्तनिम्ना शोभन्ते।

टिप्पणी

हिन्दी - सान पर चमकाई गई मणि, शस्त्रों से घायल युद्ध-विजयी, मद से हीन हाथी, शरद् ऋतु में सूखे किनारे वाली नदियाँ, कला मात्र अवशिष्ट (द्वितीया का) चन्द्रमा, काम-क्रीड़ा में मर्दित की गयी नवयुवती तथा याचकों को देने के कारण नष्ट संपत्तिवाले मनुष्य - ये सभी कृशता से भी शोभित होते हैं।

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये,
स पश्चात्सम्पूर्णः कलयति धरित्रीं तृणसमाम्
अतश्चानैकान्त्याद् गुरुलघुतयाऽर्थेषु धनिना-
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च, सङ्कोचयति च।।44।।

(द्वितीया एकवचन में स्त्रीलिङ्ग विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः कश्चित् परिक्षीणः यवानां प्रसृतये स्पृहयति, सः पश्चात् संपूर्णः धरित्रीं तृणसमां कलयति। अतः च अर्थेषु गुरुलघुतया अनैकान्त्यात् धनिनाम् अवस्था वस्तूनि प्रथयति च संकोचयति च।

हिन्दी - द्ररिद्रावस्था में तो कोई एक अञ्जलि भर जौ को ही बहुत मानकर कामना करता है और वही संपन्न होने पर संपूर्ण पृथ्वी को ही तृणसमान गिनता है। धन के विषय में गुरुता और लघुता की भावना की अनिश्चितता के कारण धनिकों की अवस्था ही वस्तुओं को बड़ा और छोटा बनाती है।

राजन्! दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां,
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे,
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः।।45।।

(भावे सप्तमी प्रयोगान्तर्गत सर्वनाम-विशेषण प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः राजन्! यदि एनां क्षितिधेनुं दुधुक्षसि तेन वत्सम् इव अमुं लोकं पुषाण। तस्मिन् च सम्यक् अनिशं परिपोष्यमाणे सति भूमिः कल्पलता इव नानाफलैः फलति।

हिन्दी - हे राजन्! यदि तुम गौ की भाँति इस पृथ्वी को दुहना चाहते हो तो बछड़े की भांति इस प्रजा के लोगों का सदैव भलीभांति पालन-पोषण करो। उस प्रजावर्ग के सतत तथा भलीभांति परिपाल्यमान होते रहने पर पृथ्वी कल्पलता के समान विविध फलों को प्रदान करती है।

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च,
हिंस्रा दयालुरपि चाऽर्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च,
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा।।46।।

(प्रथमा एकवचन के स्त्रीलिङ्ग विशेषणों के ग्यारह प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः सत्या अनृता च, परुषा प्रियवादिनी च, हिंस्रा दयालुः अपि च, अर्थपरा वदान्या, नित्यव्यया प्रचुरधनागमा च नृपनीतिः वाराङ्गना इव अनेकरूपा भवति।

हिन्दी - राजनीति वेश्या की ही भांति-सत्य तथा असत्य, कटुभाषिणी तथा प्रियभाषिणी, हिंसामय तथा दयामय, धनार्जनमयी तथा बहुदानमयी एवं नित्यव्ययशीला तथा पर्याप्त धन की प्राप्तिवाली - इस प्रकार से बहुत रूपों वाली होती है।

टिप्पणी

आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां,
दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः,
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण॥47॥

(हेत्वर्थ में 'कोऽर्थ' के योग में प्रयोजन मूलक-तृतीया प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः आज्ञा, कीर्तिः, ब्राह्मणानां पालनं, दानं, भोगः, मित्रसंरक्षणम् एते षड्गुणाः येषां न प्रवृत्ताः तेषां पार्थिवोपाश्रयेण कः अर्थः (अस्ति)।

हिन्दी - शासन, यश, ब्राह्मणों का पालन, दान देना, भोग करना और मित्र की रक्षा करना - ये छः गुण जिनमें (राजाओं में) नहीं आये उन राजाओं के आश्रय से क्या लाभ?

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं,
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम्।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः,
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम्॥48॥

(सप्तमी विभक्ति के 'विषयार्थ' आदि विभिन्न प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महत् वा यत् धनम् (अस्ति) तत् (मनुष्यः) मरुस्थले अपि नितरां प्राप्नोति। ततः अधिकं मेरौ (अपि) न (प्राप्नोति)। तत् (हे मनुष्य) धीरः भव। वित्तवस्तु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः। पश्य, घटः कूपे पयोनिधौ अपि तुल्यं जलं गृह्णाति।

हिन्दी - विधाता ने जो मस्तक में थोड़ा या अधिक धन लिख दिया है उसे मनुष्य रेगिस्तान में भी पूर्णतः प्राप्त कर लेता है और उससे अधिक मेरुपर्वत (स्वर्ण पर्वतमेरु) पर भी नहीं पाता। अतः हे मनुष्य! धैर्यवान् बनो। धनिकों के प्रति व्यर्थ दयनीय आचरण मत करो। देखो! घड़ा कुएँ में और समुद्र में (दोनों स्थानों में) भी समान जल ग्रहण करता है।

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः।
किमम्भोदवराऽस्माकं कार्पण्योक्तिं प्रतीक्षसे॥49॥

(षष्ठी व सप्तमी तत्पुरुष के विशेषण प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वय - (हे) अम्भोदवर! त्वम् एव चातकाधारः असि इति केषां गोचरः न (अस्ति)। (अतः) अस्माकं कार्पण्योक्तिं किं प्रतीक्षसे?

हिन्दी - हे श्रेष्ठ मेघ! तुम्ही चातकों के जीवन के आधार हो यह किसे ज्ञान नहीं हैं। अतः हम लोगों के दीन वचनों की प्रतीक्षा क्यों कर रहे हो? (बिना माँगे चातक को भी जल देने वाले जलधर हम जैसे ज़रूरतमंदों को भी बिना माँगे जल दोगे, तभी तुम्हारी उदारता सार्थक होगी।)

टिप्पणी

रे रे चातक! सावधानमनसा मित्र! क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवो हि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीं गर्जन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः॥50॥

('पुरतः योगे षष्ठी' तथा विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः रे रे मित्र चातक! सावधानमनसा क्षणं श्रूयताम्। गगने बहवः अम्भोदाः वसन्ति सर्वे अपि एतादृशाः न (सन्ति) केचित् धरणीं वृष्टिभिः आर्द्रयन्ति, केचित् वृथा गर्जन्ति (त्वं) यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतः दीनं वचः मा ब्रूहि।

हिन्दी - हे मित्र पपीहे! सावधान मन से थोड़ी देर के लिए सुनो। आकाश में बहुत से बादल रहते हैं। पर वे सभी ऐसे उदार जलदाता नही हैं। कुछ तो वर्षा के जल से पृथ्वी को गीला कर देते हैं और कुछ व्यर्थ की गर्जना करते हैं। अतः जिस-जिस मेघ को देखो उसी के सामने दीन वचन मत बोलो।

अकरुणत्वमकारणविग्रहः,
परधने परयोषिति च स्पृहा।
स्वजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्॥51॥

(विषयार्थक सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः अकरुणत्वम्, अकारणविग्रहः, परधने परयोषिति च स्पृहा, स्वजनबन्धुजनेषु असहिष्णुता इदं दुरात्मनाम् प्रकृतिसिद्धं हि।

हिन्दी - कठोरता, बिना कारण झगड़ा करना, दूसरों के धन और स्त्री में इच्छा रखना, तथा सज्जनों एवं परिवार जनों के प्रति असहनशीलता - ये सब दुष्टों के स्वभाव सिद्ध लक्षण हैं।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः?॥52॥

(स्त्रीलिङ्ग व पुँल्लिङ्ग में करण कारक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः दुर्जनः विद्यया अलंकृतः सन् अपि परिहर्तव्यः। मणिना भूषितः (अपि) असौ सर्पः भयङ्करः न किम्?

हिन्दी - दुष्ट व्यक्ति विद्या से सुशोभित होते हुए भी त्याज्य है। क्या (शिरो) मणि से युक्त सर्प खतरनाक नहीं होता?

जाड्यं ह्रीमति गण्यते, व्रतरुचौ दम्भः, शुचौ कैतवं,
शूरे निर्घृणता, मुनौ विमतिता, दैन्यं प्रियालापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता, मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे,
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः॥53॥

(सप्तमी विभक्ति के निरन्तर नौ प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः ह्रीमति जाड्यं, व्रतरुचौ दम्भः, शुचौ कैतवं, शूरे निर्घृणता, मुनौ विमतिता, प्रियालापिनि दैन्यं, तेजस्विनि अवलिप्तता, वक्तरि मुखरता, स्थिरे अशक्तिः गण्यते। तत् गुणिनां सः कः नाम गुणः भवेत् यः दुर्जनैः न अङ्कितः।

हिन्दी - लज्जावान् को मूर्ख समझना, व्रतप्रेम में पाखण्ड, पवित्रता में छलकपट, पराक्रम में क्रूरता, मुनि में बुद्धिहीनता, प्रियभाषी में दीनता, तेजस्वी में घमण्ड, भाषणपटु में व्यर्थ का बोलना और स्थिर पुरुष में अक्षमता मानना दुर्जनों का व्यवहार होता है। अतः गुणवानों का भला कौन सा ऐसा गुण है जो दुष्टजनों द्वारा कलङ्कित न किया गया हो?

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः?
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः?
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना॥54॥

(प्रयोजन मूलक 'किम्' के योग में तृतीया विभक्ति के विभिन्न आकर्षक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः लोभः चेत् (अस्ति तर्हि) अगुणेन किं, यदि पिशुनता अस्ति पातकैः किं, सत्यं चेत् तपसा च किं, यदि शुचि मनः अस्ति तीर्थेन किं, यदि सौजन्यम् गुणैः किं, यदि सुमहिमा अस्ति मण्डनैः किम्, यदि सद्विद्या (अस्ति) धनैः किं, यदि अपयशः अस्ति मृत्युना किम्?

हिन्दी - यदि लालच है तो अवगुणों की क्या आवश्यकता, यदि चुग़लख़ोरी या दुष्टता है तो पापों की क्या आवश्यकता, यदि सत्य है तो तप की क्या आवश्यकता, यदि मन पवित्र हो तो तीर्थ की क्या आवश्यकता, यदि सज्जनता है तो गुणों की क्या आवश्यकता, यदि सुकीर्ति है तो आभूषणों की क्या आवश्यकता, यदि ज्ञान है तो धन की क्या आवश्यकता और यदि अपयश है तो मृत्यु की क्या आवश्यकता?

शशी दिवसधूसरो, गलितयौवना कामिनी,
सरो विगतवारिजं, मुखमनक्षरं स्वाकृतेः।
प्रभुर्धनपरायणः, सततदुर्गतः सज्जनो,
नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे॥55॥

(विशेषण-विशेष्य के सप्त-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः दिवसधूसरः शशी, गलितयौवना कामिनी, विगतवारिजं सरः, स्वाकृतेः अनक्षरं मुखं, धनपरायणः प्रभुः, सततदुर्गतः सज्जनः, नृपाङ्गणगतः खलः (एतानि) सप्त मे मनसि शल्यानि सन्ति।

हिन्दी - ये सातों (स्थितियां) मेरे हृदय में शूल के समान (कष्ट प्रदान करते हैं) लगती हैं - दिन में निस्तेज चन्द्रमा, नष्ट यौवन वाली स्त्री, कमलविहीन सरोवर, सुन्दर पुरुष का शास्त्रज्ञान-विरहित मुख, वित्तलोभी राजा, सदैव विपत्ति में पड़ा सज्जन व्यक्ति तथा राजगृह में रहने वाला दुष्ट व्यक्ति।

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम्।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः॥56॥

(ऋकारान्त विशेष्य के लिए विशेषण प्रयोग में द्वितीया विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः चण्डकोपानां भूभुजां कश्चित् अपि न आत्मीयः नाम। पावकः स्पृष्टः (सन्) जुह्वानं होतारम् अपि दहति।

हिन्दी - प्रचण्ड क्रोधवाले राजाओं का कोई भी आत्मीय नहीं होता। स्पर्श किये जाने पर अग्नि आहुति दे रहे यजमान को भी जला देती है।

मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा,
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा, दूरतश्चाऽप्रगल्भः।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाऽभिजातः,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः॥57॥

(कारण/हेतु में क्रमशः पञ्चमी एवं तृतीया विभक्ति के प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः (सेवको मनुष्यः) मौनात् मूकः, प्रवचनपटुः वातुलः जल्पकः वा (यदि) च सदा पार्श्वे वसति (तर्हि) धृष्टः (यदि) च दूरतः (वसति तर्हि) अप्रगल्भः, परमगहनः सेवाधर्मः योगिनाम् अपि अगम्यः (अस्ति)।

हिन्दी - यदि सेवक चुप रहता है तो गूंगा, यदि भाषण-कुशल है तो वाचाल, यदि समीप रहता है तो ढीठ, यदि दूर रहता है तो अकुशल, यदि क्षमाशील है तो डरपोक और यदि असहनशील है तो अकुलीन माना जाता है। इस प्रकार परम कठिन सेवाधर्म योगियों को भी अगम्य है।

उद्भासिताऽखिलखलस्य विशृङ्खलस्य
प्राग्जातविस्मृतनिजाऽधमकर्मवृत्तेः।
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य
नीचस्य गोचरगतैः, सुखमाप्यते कैः॥58॥

(षष्ठी विभक्ति का प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः उद्भासिताऽखिलखलस्य विशृङ्खलस्य प्राग्जातविस्मृतनिजाधमकर्मवृत्तेः दैवात् अवाप्तविभवस्य गुणद्विषः अस्य नीचस्य गोचरगतैः कैः सुखम् आप्यते?

हिन्दी - समस्त दोषों को प्रकाशित करने वाले, अपने पूर्व के अधमकर्म-पूर्ण आचरणों को भूलने वाले और भाग्यवश ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले गुणद्वेषी नीच के सामने पड़ने पर किन मनुष्यों के द्वारा सुख प्राप्त किया जा सकता है?

आरम्भगुर्वी, क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा, वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्ध-परार्धभिन्ना
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥59॥

(ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग के विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः खलसज्जनानां मैत्री आरम्भगुर्वी क्रमेण क्षयिणी पुरा लघ्वी पश्चात् च वृद्धिमती (अतः) पूर्वार्धपरार्धभिन्ना दिनस्य छाया इव (भवति)।

हिन्दी - दुष्टों तथा सज्जनों की मित्रता (क्रमशः) दिन के पूर्वार्ध तथा परार्ध की परछाईं के समान अलग-अलग होती है (खलों की मित्रता) पहले बड़ी तथा बाद में क्रमशः छोटी होती है और (सज्जनों की मित्रता) पहले छोटी तथा बाद में बढ़ती है।

टिप्पणी

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम्।

लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति॥60॥

(इन्नन्त विशेष्य बहुवचनान्त प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः जगति लुब्धकधीवरपिशुनाः तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनां मृगमीनसज्जनानां निष्कारणवैरिणः (भवन्ति)।

हिन्दी - संसार में घास, जल और सन्तोष के आधार पर जीवन-यापन करने वाले पशु, मछली और सज्जनों के अकारण ही शत्रु व्याध, मछली पकड़ने वाले और स्वभाव से चुग़लख़ोर मनुष्य होते हैं।

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता,
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले,
येष्वेते निवसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः॥61॥

(सप्तमी विभक्ति के अनेक चित्ताकर्षक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः सज्जनसङ्गमे वाच्छा, परगुणे प्रीतिः, गुरौ नम्रता, विद्यायां व्यसनं, स्वयोषिति रतिः, लोकापवादात् भयं, शूलिनि भक्तिः, आत्मदमने शक्तिः, खले संसर्गमुक्तिः, एते निर्मलगुणाः येषु निवसन्ति तेभ्यः नरेभ्यः नमः।

हिन्दी - जिन मनुष्यों में सज्जनों से संपर्क की इच्छा, दूसरों के गुणों में प्रेम, गुरुजनों के प्रति विनम्रता, विद्या में आसक्ति, स्वस्त्री के प्रति प्रेम, लोक निन्दा से भय, त्रिशूलधारी शङ्कर में आस्थाभाव, अपनी इन्द्रियों को वश में करने की शक्ति, दुष्टों से संपर्कत्याग - ये निर्मल गुण हैं उन्हें नमस्कार है।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः।
यशसि चाऽभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥62॥

(सप्तमी विभक्ति के अनेक चित्ताकर्षक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः विपदि धैर्यम्, अथ अभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः, यशसि च अभिरुचिः श्रुतौ व्यसनम् हि इदं महात्मनां प्रकृतिसिद्धम् (वर्तते)।

हिन्दी - विपत्ति में धैर्य, समृद्धि में सहनशीलता, विद्वत्समाज में वाणी की निपुणता, युद्ध में पराक्रम, यश में रुचि और वेदशास्त्रों में आसक्ति निश्चित रूप से सज्जनों के ये स्वाभाविक गुण हैं।

प्रदानं प्रच्छन्नं, गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः,
प्रियं कृत्वा मौनं, सदसि कथनं नाप्युपकृतेः।

अनुत्सेको लक्ष्म्यामनभिभवगन्धाः परकथाः,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्॥63॥

(विविध विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः प्रदानं प्रच्छन्नं, गृहम् उपगते संभ्रमविधिः, प्रियं कृत्वा मौनं, सदसि न उपकृतेः कथनं, लक्ष्म्याम् अनुत्सेकः, परकथाः अनभिभवगन्धाः इदं विषमम् असिधाराव्रतं सतां केन उद्दिष्टम्।

हिन्दी - गुप्तदान, गृह में आने पर सत्कार करना, प्रिय अथवा हितकारी कार्य करके शांत रहना, उपकार करके सभा में न कहना, सम्पत्ति में गर्वहीनता, दूसरे की चर्चा में निन्दा का लेश मात्र भी न करना - सज्जनों के लिये तलवार की धार की तरह कठोर नियम का किसके द्वारा उपदेश दिया गया है।

करे श्लाघ्यस्त्यागः, शिरसि गुरुपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी, विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम्।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः, श्रुतमधिगतं च श्रवणयो-
र्विनाऽप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम्॥64॥

(विभिन्न सप्तमीगत व विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः करे श्लाघ्यः त्यागः, शिरसि गुरुपादप्रणयिता, मुखे सत्या वाणी, भुजयोः विजयि अतुलं वीर्यं, हृदि स्वच्छा वृत्तिः, श्रवणयोः च अधिगतं श्रुतम्- इदम् ऐश्वर्येण विना अपि प्रकृतिमहतां मण्डनम् (अस्ति)।

हिन्दी - स्वाभाविक सत्पुरुषों के हाथ में प्रशंसनीय दान, सिर पर गुरुओं के चरणों में की गई विनम्रता, मुख में सत्यवचन, भुजाओं में विजयशील निरुपम पराक्रम, हृदय में निर्मल भाव और कानों में प्राप्त शास्त्र ज्ञान ये संपत्ति के बिना ही आभूषण हैं।

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम्॥65॥

(तकारान्त स्त्रीलिङ्ग सप्तमी बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः महतां चित्तं सम्पत्सु उत्पलकोमलम्, आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशं भवति।

हिन्दी - महापुरुषों का चित्त संपत्तियों में कमल के समान कोमल होता है और विपत्तियों में विशाल पर्वत की चट्टान के समान शिला-समूह के समान अत्यन्त कठोर होता है।

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताऽकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते॥66॥

(सकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'पयस्' शब्द के विभिन्न विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः संतप्तायसि संस्थितस्य पयसः नाम अपि न ज्ञायते। तत् एव नलिनीपत्रस्थितं मुक्ताकारतया राजते। तत् स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं मौक्तिकं जायते। प्रायेण अधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतः जायते।

हिन्दी - गर्म लोहे पर गिरे हुए जल का नाम भी नहीं जाना जाता और वही जल कमलपत्र पर पड़ते ही मोती के आकार में शोभित होता है तथा वही यदि स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में पड़ जाए तो सचमुच का मोती बन जाता है। (वस्तुओं का) नीच, मध्यम और उत्तम गुण प्रायः संसर्ग से होता है।

टिप्पणी

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो
यद् भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं
यद् एतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते॥67॥

(ऋकारान्त पद में षष्ठी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः यः सुचरितैः पितरं प्रीणाति स (एव) पुत्रः, यद् भर्तुः हितम् इच्छति तत् एव कलत्रम्, यद् आपदि सुखे च समक्रियं तत् (एव) मित्रम्-एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतः लभन्ते।

हिन्दी - अपने अच्छे आचरण से पिता को प्रसन्न करने वाला पुत्र, पति की ही हितैषिणी पत्नी तथा सुख और विपत्ति में समान व्यवहार वाला मित्र - इन तीनों को संसार में पुण्यवान् जन प्राप्त करते हैं।

एको देवः केशवो वा शिवो वा,
ह्येकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा।
एको वासः पत्तने वा वने वा,
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा॥68॥

(संख्यावाची 'एक' शब्द के त्रिलिङ्ग प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः केशवः वा शिवः वा एकः देव (आश्रयणीयः)। भूपतिः यतिः या एकं मित्रं (कर्त्तव्यम्)। पत्तने वा वने वा एकः वासः (कर्त्तव्यः)। एका नारी सुन्दरी वा दरी वा (कर्त्तव्या)।

हिन्दी - मनुष्य को विष्णु या शिव किसी एक देव का आश्रयण करना चाहिए। राजा या संन्यासी में से किसी एक को मित्र बनाना चाहिए। एक ही घर बनाना चाहिए चाहे नगर में या जङ्गल में और एक ही पत्नी रखनी चाहिए, चाहे सुन्दरी स्त्री या पर्वत की गुफा में निवास करने वाली।

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्गुणान्ख्यापयन्तः,
स्वार्थान्सम्पादयन्तो विततपृथुतरारम्भयत्नाः परार्थे।
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः॥69॥

(शतृ-प्रत्ययान्त विभिन्न विशेषण प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः नम्रत्वेन उन्नमन्तः, परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः, परार्थे विततपृथुतरारम्भयत्नाः (सन्तः) स्वार्थान् संपादयन्तः आक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् क्षान्त्या एव दूषयन्तः साश्चर्यचर्याः बहुमताः सन्तः जगति कस्य न अभ्यर्चनीयाः?

टिप्पणी

हिन्दी - विनम्रता से उन्नति करते हुए, दूसरों के गुणों को कहने से अपने गुणों को प्रकट करते हुए, परोपकार में प्रयत्नशील तथा अपने कार्यों को सम्पन्न करने वाले तथा निन्दापूर्ण व कटुवचन बोलने वाले दुष्टों को क्षमा से दूषित करते हुये, ऐसे अद्‌भुत आचरणवाले सज्जन संसार में किसके लिए वन्दनीय नहीं हैं अर्थात् सभी के लिए वन्दनीय हैं।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्‌गमैः
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥70॥

(पुल्लिङ्ग व स्त्रीलिङ्ग में तृतीया बहुवचन/करण प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः तरवः फलोद्‌गमैः नम्राः भवन्ति, घनाः नवाम्बुभिः दूरविलम्बिनः भवन्ति, सत्पुरुषाः समृद्धिभिः अनुद्धताः भवन्ति। एष परोपकारिणां स्वभावः एव।

हिन्दी - वृक्ष फलों के आगमन से झुक जाते हैं, बादल नये जलों से दूर प्रदेश तक झुकते हुए फैल जाते हैं और सज्जन समृद्धि (सम्पत्ति) में गर्वहीन हो जाते हैं, यह परोपकारियों का स्वभाव है।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन,
दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।
विभाति कायः करुणापराणां
परोपकारैर्न तु चन्दनेन॥71॥

(करण कारक के विभिन्न प्रभावी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः श्रोत्रं श्रुतेन विभाति कुण्डलेन न (विभाति), पाणिः दानेन (विभाति) तु कङ्कणेन न (विभाति), करुणापराणां कायः परोपकारैः (विभाति) चन्दनेन तु न (विभाति)।

हिन्दी - दयालु सज्जनों के कान शास्त्रों के श्रवण से सुशोभित होते हैं (स्वर्णनिर्मित) कुण्डल से नहीं, हाथ दान से शोभित होता है कंगन से नहीं और शरीर परोपकार से शोभित होता है चन्दन के लेप से नहीं।

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति, गुणान्प्रकटीकरोति।
आपद्‌गतं च न जहाति, ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥72॥

(द्वितीया विभक्ति के विभिन्न-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः पापात् निवारयति, हिताय योजयते, गुह्यं निगूहति, गुणान् प्रकटीकरोति, आपद्‌गतं च न जहाति, काले ददाति सन्तः इदं सन्मित्रलक्षणं प्रवदन्ति।

हिन्दी - सत्पुरुष लोग अच्छे मित्रों का स्वरूप इस प्रकार बताते हैं - वह पापाचरण से दूर करता है, हितकारी कार्यों में लगाता है, छिपाने योग्य बातों को छिपाता है, गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति में साथ नहीं छोड़ता और यथोचित समय में (धनादिक) देता है।

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति,
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति,
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः॥73॥

टिप्पणी

(कर्ता-कर्म प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः नाभ्यर्थितः दिनकरः पद्माकरं विकचीकरोति चन्द्रः कैरवचक्रवालं विकासयति (नाभ्यर्थितः) जलधरः अपि जलं ददाति। सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः (भवन्ति)।

हिन्दी - सूर्य बिना याचना किये ही कमल को विकसित करता है और चन्द्रमा भी बिना याचना के ही कुमुदिनी के समूह को विकसित करता है तथा मेघ भी बिना याचना के ही जल वृष्टि करता है क्योंकि सज्जन व्यक्ति स्वयं परोपकार में प्रयासरत होते हैं।

एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहिते ते के न जानीमहे॥74॥

(तत्-यत्-किम् के सार्वनामिक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः ये स्वार्थं परित्यज्य परार्थघटकाः ते एते सत्पुरुषाः, ये स्वार्थाविरोधेन परार्थम् उद्यमभृतः (ते) तु सामान्याः, ये स्वार्थाय परहितं निघ्नन्ति ते अमी मानुषराक्षसाः (किन्तु) ये निरर्थकं परहितं निघ्नन्ति ते के (इति वयं) न जानीमहे।

हिन्दी - उत्तमकोटि के सज्जन तो वे हैं जो स्वार्थ का त्याग कर परोपकार का कार्य संपादन करते हैं और सामान्य (मध्यम कोटि के) वे हैं जो स्वार्थ का अविरोध करते हुए परोपकार का कार्य करते हैं तथा राक्षस स्वभाव वाले मनुष्य अर्थात् अधमकोटि के वे पुरुष हैं जो स्वार्थ के लिये परार्थ की हानि करते हैं। पर वे (परमनीच) मनुष्य कौन हैं, जो निरर्थक परार्थ का नाश करते हैं, यह हम नहीं जानते।

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुतः।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं
युक्तं तेन जलेन शाम्यति, सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी॥75॥

(कर्मवाच्य विभिन्न प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः पुरा क्षीरेण आत्मगतोदकाय अखिलाः ते गुणाः दत्ताः, तेन पयसा क्षीरोत्तापम् अवेक्ष्य स्वात्मा कृशानौ हुतः, तत् (क्षीरं) तु मित्रापदं दृष्टवा पावकं गन्तुम् उन्मनः अभवत्, तेन जलेन युक्तं (सत्) शाम्यति। तु पुनः सतां मैत्री ईदृशी भवति।

हिन्दी - पहले जब जल दूध से मिला तो दूध ने उसे अपने सभी गुण दे दिये। जब जल ने दूध के दाह को देखा तो पहले अपने को ही अग्नि में होम कर दिया। दूध भी मित्र के इस दुःख को देखकर अग्नि में जाने के लिए उद्यत हो गया। फिर जल का छींटा मिलने से शान्त हो जाता है। ठीक ही है सज्जनों की मित्रता ऐसी ही होती है।

टिप्पणी

इतः स्वपिति केशवः, कुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते।
इतोऽपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकै-
रहो विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः॥76॥

(विविध-कर्तृ-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः इतः केशवः, स्वपिति, इतः तदीयद्विषां कुलं (तिष्ठति) इतः च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते, इतः अपि समस्तसंवर्तकैः सह वडवानलः (तिष्ठति) अहो सिन्धोः वपुः विततम्, ऊर्जितं भरसहं च (अस्ति)।

हिन्दी - समुद्र में एक ओर भगवान् विष्णु शयन करते हैं, एक ओर उनके शत्रु राक्षसों का समूह है, एक ओर शरणागत पर्वतों का समूह है तथा एक ओर प्रलयकालिक मेघों के साथ वडवाग्नि रहता है। आश्चर्य है समुद्र का शरीर इतना विस्तृत, बलशाली तथा भार को सहने में समर्थ है।

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय प्रश्रयं
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम्॥77॥

(द्वितीया विभक्ति/कर्मकारक के विभिन्न प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः (हे मनुष्य!) तृष्णां छिन्धि, क्षमां भज, मदं जहि, पापे रतिं मा कृथाः सत्यं ब्रूहि, साधुपदवीम् अनुयाहि विद्वज्जनं सेवस्व, मान्यान् मानय विद्विषः अपि अनुनय, प्रश्रयं प्रख्यापय, कीर्तिं पालय, दुःखिते दयां कुरु। एतत् सतां चेष्टितम् (अस्ति)।

हिन्दी - हे मनुष्य! लोभ को छोड़ो, क्षमा का सेवन करो, घमण्ड का त्याग करो, पाप में प्रेम मत करो, सत्य बोलो, सज्जनों के मार्ग का अनुगमन करो, विद्वानों का सेवन करो, माननीयों का सम्मान करो, शत्रुओं से भी विनय करो, विनम्रता को द्योतित करो, यश की रक्षा करो और दुःखी जनों पर दया करो - यह सज्जनों का आचरण है।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥78॥

(शतृ-प्रत्ययान्त विभिन्न विशेषण-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः, उपकारश्रेणिभिः, त्रिभुवनं प्रीणयन्तः नित्यं परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य निजहृदि विकसन्तः सन्तः कियन्तः सन्ति।

हिन्दी - हृदय, वचन और शरीर में पुण्यरूपी अमृत से पूर्ण, उपकारसमूहों से तीनों लोकों को तृप्त कर रहे तथा दूसरों के सूक्ष्म गुणों को भी महान् बता कर अपने हृदय में संतुष्ट हो रहे सज्जन कितने हैं? अर्थात् बहुत ही अल्प हैं।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवाः
न भेजिरे भीमविषेण भीतिम्।

सुधां विना न प्रययुर्विरामं
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः॥79॥

(करण-कारक एवं विना योगे द्वितीया प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः देवाः महार्हैः रत्नैः न तुतुषुः भीमविषेण भीतिं न भेजिरे, सुधां विना विरामं न प्रययुः, धीराः निश्चितार्थात् न विरमन्ति।

हिन्दी - देवगण क्षीरसागर के बहुमूल्य रत्नों से संतुष्ट नहीं हुए और भयंकर विष से भी नहीं डरे तथा अमृत प्राप्ति के बिना विश्राम को प्राप्त नहीं हुए क्योंकि धैर्यशाली पुरुष अपने निश्चित लक्ष्य से विराम नहीं लेते।

क्वचिद्भूमौ शय्या, क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः,
क्वचिच्छाकाहारी, क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।
क्वचित्कन्थाधारी, क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं च न सुखम्॥80॥

(क्वचित् के द्विप्रयोग के द्वारा विशाल अन्तर-प्रदर्शन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः कार्यार्थी मनस्वी क्वचित् भूमौ शय्या अपि च क्वचित् पर्यङ्क-शयनः, क्वचित् शाकाहारः अपि च शाल्योदनरुचिः, कन्थाधारी अपि च क्वचित् दिव्याम्बरधरः सन् दुःखं न गणपति सुखं च न गणयति।

हिन्दी - कार्य-साधन का इच्छुक मनस्वी व्यक्ति कहीं तो भूमि पर सोता है और कहीं पलङ्ग पर, कहीं साग-पात का भोजन ही करता है और कहीं बढ़िया चावल का भात खाता है, कहीं जीर्ण वस्त्र पहनता है तो कहीं दिव्य वस्त्र धारण करता है। इस प्रकार रहते हुए वह सुख और दुःख को नहीं गिनता।

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता, शौर्यस्य वाक्संयमो,
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता,
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्॥81॥

(विभिन्न सम्बन्ध प्रयोगेषु षष्ठी द्रष्टव्य)

अन्वयः ऐश्वर्यस्य सुजनता विभूषणं, शौर्यस्य वाक्संयमः, ज्ञानस्य उपशमः, श्रुतस्य विनयः, वित्तस्य पात्रे व्ययः, तपसः अक्रोधः, प्रभवितुः क्षमा, धर्मस्य निर्व्याजता (विभूषणं) सर्वकारणम् इदं शीलं सर्वेषां परं भूषणम् (अस्ति)।

हिन्दी - वैभव का सज्जनता आभूषण है, पराक्रम का वाणी व संयम आभूषण है, ज्ञान का आभूषण विषयेच्छा से निवृत्ति है, धन का विभूषण सत्पात्र को दान है, तपस्या का विभूषण क्रोध का अभाव है, प्रभुत्व का विभूषण क्षमा है, धर्म का विभूषण दम्भ या छल का अभाव है और सभी का (शोभावर्धक) कारण (मूल) यह सदाचार सर्वोत्कृष्ट विभूषण है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु, गच्छतु वा यथेष्टम्।

अद्यैव वा मरणमस्तु, युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥82॥

(लोट् लकार के प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः नीतिनिपुणाः निन्दन्तु यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु या यथेष्टम् गच्छतु, अद्य एव मरणम् अस्तु युगान्तरे (वा) अस्तु, धीराः न्याय्यात् पथः पदं न प्रविचलन्ति।

हिन्दी - आलस्य निश्चयरूप से मनुष्य के शरीर में रहने वाला महान् शत्रु है। परिश्रम के समान अन्य कोई बन्धु नहीं है। उद्यम करता हुआ मनुष्य विनाश को प्राप्त नहीं करता।

छिन्नोऽपि रोहति तरुः, क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न विप्लुता लोके॥83॥

(पूर्वरूप व यण् सन्धि प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः तरुः छिन्नः अपि रोहति, चन्द्रः क्षीणः अपि पुनः उपचीयते इति विमृशन्तः सन्तः विप्लुताः अपि लोके न सन्तप्यन्ते।

हिन्दी - कटा वृक्ष पुनः उग जाता है और क्षीण चन्द्रमा भी पुनः बढ़ जाता है यह विचार कर सज्जन संसार में दुःख प्राप्त होने पर भी दुःखी नहीं किए जा सकते।

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं, सुराः सैनिकाः,
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः।
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभिद् भग्नः परैः सङ्गरे,
तद्व्यक्तं ननु दैवमेव शरणं, धिग्धिग्वृथा पौरुषम्॥84॥

(धिग् योगे द्वितीया प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः यस्य नेता बृहस्पतिः, प्रहरणं वज्रं, सैनिकाः सुराः, दुर्गं स्वर्गः, अनुग्रहः हरेः, किल वारणः ऐरावतः इति ऐश्वर्यबलान्वितः अपि बलभित् सङ्गरे परैः भग्नः। तत् व्यक्तं ननु दैवम् एव शरणं, वृथा पौरुषं धिक् धिक्।

हिन्दी - जिसके पथ प्रदर्शक बृहस्पति हैं, शस्त्र वज्र है, सैनिक देवगण हैं, किला स्वर्ग है, कृपा भगवान् विष्णु की है और हाथी ऐरावत है, ऐसे वैभव तथा शक्ति से संपन्न इन्द्र भी युद्ध में शत्रुओं से पराजित हो गये। अतः भाग्य ही प्रधान है। व्यर्थभूत पौरुष को धिक्कार है।

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथाऽपि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता॥85॥

(भाववाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः पुंसां फलं कर्मायत्तं, बुद्धिः (च) कर्मानुसारिणी (भवति) अपि सुधिया सुविचार्य एव कुर्वता भाव्यम्।

हिन्दी - यद्यपि मनुष्यों के (सुखदुःखादिरूप कर्म) फल पूर्वकृत कर्म के अधीन हैं तथा बुद्धि भी कर्म का ही अनुसरण करने वाली है तथापि बुद्धिमान् मनुष्य को भलीभांति विचारपूर्वक ही कर्म करने चाहिए।

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्तापितो मस्तके,
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः,
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः॥86॥

टिप्पणी

(सविशेषण कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः खल्वाटः दिवसेश्वरस्य किरणैः मस्तके संतापितः सन् अनातपं देशं वाञ्छन् विधिवशात् तालस्य मूलं गतः। तत्र अपि पतता महाफलेन तस्य शिरः सशब्दं भग्नम्। प्रायः भाग्यरहितः यत्र गच्छति तत्र एव आपदः यान्ति।

हिन्दी - गंजा व्यक्ति सूर्य की किरणों से मस्तक के तपने पर छाया युक्त स्थान को खोजते हुए भाग्यवश ताड़ के वृक्ष के नीचे पहुँच गया। वहाँ भी पेड़ से गिर रहे बड़े फल से उसका मस्तक आवाज़ करते हुये टूट गया। प्रायः भाग्यहीन जहाँ जाता है वहीं विपत्तियाँ भी चली जाती हैं।

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं
गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो! बलवानिति मे मतिः॥87॥

(षष्ठी द्विवचन प्रयोग)

अन्वयः शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनम्, गजभुजङ्गमयोः अपि बन्धनं, मतिमतां च दरिद्रतां विलोक्य अहो! विधिः बलवान् इति मे मतिः (अस्ति)।

हिन्दी - चन्द्रमा और सूर्य का राहु से ग्रस्त होना, हाथी और सर्प का बन्धन तथा बुद्धिमानों की निर्धनता देखकर, अरे! भाग्य ही बलवान् है ऐसा मेरी बुद्धि कहती है।

सृजति तावदशेषगुणाकरं
पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गिं करोति चे-
दहह कष्टमपण्डितता विधेः॥88॥

(द्वितीय विभक्ति में इन्नन्त नपुंसकलिङ्ग प्रयोग एवं तल् प्रत्यय प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः (विधिः) अशेषगुणाकरं भुवः अलङ्करणं पुरुषरत्नं सृजति तावत् तदपि तत् क्षणभङ्गिं चेत् करोति। अहह! विधेः अपण्डितता कष्टम्।

हिन्दी - विधाता समस्तगुणों से विभूषित तथा पृथ्वी के अलङ्कारभूत श्रेष्ठ पुरुष की सृष्टि करते हैं तथा उसे क्षणभंगुर बनाते हैं। हाय! ब्रह्मा की मूर्खता दुःखदायक है।

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं,
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा, सूर्यस्य किं दूषणम्।
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे, मेघस्य किं दूषणं,
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः॥89॥

(किम् के सुन्दर प्रयोग तथा तुमुन् प्रत्यय के साथ 'क्षमः' का प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः यदा करीरविटपे पत्रं न एव (तर्हि) वसन्तस्य दोषः किम्? यदि उलूको दिवा अपि न अवलोकते (तर्हि) सूर्यस्य किं दूषणम्? यदि चातकमुखे धाराः नैव पतन्ति (तर्हि) मेघस्य किम् दूषणम्? पूर्वं यत् विधिना ललाटलिखितं तत् मार्जितुं कः क्षमः?

टिप्पणी

हिन्दी - यदि (वसन्त ऋतु में) करीरवृक्ष पर पत्र नहीं होते तो इसमें वसन्त का क्या दोष? यदि उल्लू दिन में भी नहीं देखता तो इसमें सूर्य का क्या दोष और यदि मेघ की जलधाराएँ चातक पक्षी के मुख में नहीं पड़तीं तो इसमें मेघ का क्या दोष? (वास्तविकता तो यह है कि) ब्रह्मा ने जो पहले ललाट पर लिख दिया है उसे कौन मिटा सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा,
विधिर्वन्द्यः, सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः।
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः, किं च विधिना,
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति॥90॥

(नमः योगे चतुर्थी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः देवान् नमस्यामः। ननु ते अपि हतविधेः वशगाः। विधिः वन्द्यः (किन्तु) सः अपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः। यदि फलं कर्मायत्तं (तर्हि) अमरैः किं विधिना च किम्? तत् कर्मभ्यः नमः विधिः अपि येभ्यः न प्रभवति।

हिन्दी - देवताओं को हम नमस्कार करते हैं। किन्तु वे देव भी निश्चय ही दुष्ट विधि के (ब्रह्मा) अधीन हैं (अतः) ब्रह्मा वन्दनीय हैं। किन्तु वे ब्रह्मा भी कर्मानुसार निश्चित फल देने वाले हैं। तो यदि फल कर्मों के अधीन है तो देवताओं से क्या प्रयोजन और ब्रह्मा से क्या प्रयोजन, अतः कर्मों को नमस्कार है जिन पर ब्रह्मा का भी वश नहीं चलता।

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे,
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः,
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने, तस्मै नमः कर्मणे॥91॥

(नमः योगे चतुर्थी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः येन ब्रह्मा ब्रह्माण्डभाण्डोदरे कुलालवन्नियमितः येन विष्णुः दशावतारगहने महासङ्कटे क्षिप्तः, येन रुद्रः कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः (येन) सूर्यो नित्यमेव गगने भ्राम्यति। तस्मै कर्मणे नमः।

हिन्दी - जिस कर्म ने ब्रह्मा को ब्रह्माण्ड रूपी पात्र के भीतर कुम्हार की भांति (सृष्टिकार्य में) नियुक्त किया, जिस कर्म ने भगवान विष्णु को दस अवतार लेने के महान् कष्टप्रद कार्य में नियुक्त किया, जिस कर्म ने शंकर को कपाल हाथ में धारण करके भिक्षा याचन रूपी कार्य कराया और जो कर्म सूर्य को आकाश में सतत विचरण कराता है, उस कर्म को नमस्कार है।

नैवाऽऽकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं,
विद्यापि नैव न च यत्नकृताऽपि सेवा।

भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥92॥

(नपुंसकलिङ्ग कर्तृ प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः (पुरुषस्य) आकृतिः नैव फलति, कुलं नैव, शीलं न, विद्या अपि नैव, च यत्नकृता अपि सेवा न। (किन्तु) पूर्वतपसा संचितानि पुरुषस्य भाग्यानि यथा एव वृक्षा (तथा एव) काले फलन्ति खलु।

हिन्दी - मनुष्य का शारीरिक सौन्दर्य फल नहीं देता, न श्रेष्ठ कुल, न सदाचार, न विद्या तथा न प्रयत्नपूर्वक की गई सेवा भी फल देती है, किन्तु पूर्व की गई तपस्या से संचित भाग्य ही यथोचित समय पर फल प्रदान करते हैं। जैसे वृक्ष यथोचित समय पर फल देते हैं।

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा,
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि॥93॥

(नपुंसकलिङ्ग कर्तृ प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः पुराकृतानि पुण्यानि वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे, पर्वतमस्तके वा सुप्तं, प्रमत्तं, विषमस्थितं वा (अपि) रक्षन्ति।

हिन्दी - पूर्वजन्म के पुण्य कर्म जंगल में, युद्ध में, शत्रु में, जल एवं अग्नि के बीच, महासागर में या पर्वत शिखर पर सोये हुए, असावधान या संकटग्रस्त मनुष्य की (भी) रक्षा करते हैं।

या साधूंश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः,
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात्।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं,
हे साधो! व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः॥94॥

(कर्मकारक के प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः हे साधो! या खलान् साधून्, मूर्खान् विदुषः, द्वेषिणः हितान् करोति, परोक्षं प्रत्यक्षं, हालाहलं तत्क्षणम् अमृतं कुरुते, तां भगवतीं सत्क्रियाम् वाञ्छितं फलं भोक्तुं आराधय। व्यसनैः विपुलेषु गुणेषु वृथा आस्थां मा कृथाः।

हिन्दी - हे सज्जनो! सत्कर्म दुष्टों को सज्जन, मूर्खों को विद्वान्, शत्रुओं को हितैषी मित्र, परोक्ष को प्रत्यक्ष तथा हालाहल विष को उसी समय अमृत बना देता है। अतः अभीष्ट फल पाने के लिये उसी सत्कर्म का सेवन करो। दुःखपूर्ण अन्य गुणों में व्यर्थ में आसक्ति मत करो।

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं,
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः॥95॥

(सविशेषण कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः गुणवत् अगुणवत् वा कार्यजातं कुर्वता पण्डितेन परिणतिः यत्नतः अवधार्या। अतिरभसकृतानां कर्मणां विपाकः आविपत्तेः शल्यतुल्यः हृदयदाही भवति।

हिन्दी - गुणयुक्त या गुणहीन कार्य-समूह को करते समय विद्वान् को परिणाम का विचार प्रयत्नपूर्वक कर लेना चाहिए क्योंकि अत्यन्त शीघ्रता में किये गये कार्यों का परिणाम मृत्युपर्यन्त कांटे के समान हृदय को जलाने वाला होता है।

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति तिलखलीमिन्धनैश्चन्दनौघैः
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः।
छित्त्वा कर्पूरखण्डान् वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां समन्तात्,
प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मन्दभाग्यः॥96॥

(सप्तमी, तृतीया, द्वितीया व षष्ठी के एकत्र प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः यः मन्दभाग्यः मनुजः इमां कर्मभूमिं प्राप्य तपः न चरति (सः) वैदूर्यमय्यां स्थाल्यां चन्दनैः इन्धनैः तिलखलीं पचति, अर्कमूलस्य हेतोः सौवर्णैः लाङ्गलाग्रैः वसुधां विलिखति, कर्पूरखण्डान् छित्त्वा समन्तात् कोद्रवाणां वृतिं कुरुते।

हिन्दी - जो भाग्यहीन मनुष्य इस कर्मभूमि (मर्त्यलोक) को प्राप्त कर तप का अनुष्ठान नहीं करता वह वैदूर्यमणि के पात्र में चन्दन की लकड़ी के ईन्धन से तिल के दानों को पकाता है। आक (मन्दार) की जड़ को पाने के लिए सोने के बने हल की नोक से पृथ्वी को जोतता है तथा कपूर के टुकड़े कर कोदों (सस्ते किस्म के चावलों) के चारों ओर बड़ा (घेरा) लगाता है।

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रुञ्जयत्वाहवे,
वाणिज्यं कृषिसेवने च सकला विद्याः कलाः शिक्षताम्।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं,
नाऽभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः॥97॥

(लोट् लकार के विविध प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः (मनुष्यः) अम्भसि मज्जतु, मेरुशिखरं यातु, आहवे शत्रून् जयतु, वाणिज्यं कृषिसेवने सकलाः विद्याः कलाः च शिक्षताम्, परं प्रयत्नं कृत्वा खगवत् विपुलम् आकाशं प्रयातु (तथापि) इह कर्मवशतः अभाव्यं न भवति भाव्यस्य नाशः कुतः भवति।

हिन्दी - मनुष्य चाहे जल में मग्न हो या सुमेरुपर्वत के शिखर पर चला जाए, युद्ध में शत्रुओं को पराजित करे, व्यवसाय, कृषि, सेवा और समस्त विद्याओं का अभ्यास करे तथा महान् प्रयत्न करके पक्षी के समान आकाश में चला जाए, किन्तु इस सृष्टि में कर्मों के प्रभाव से जो नहीं होने वाला है वह नहीं होगा और जो होने वाला है उसका नाश नहीं होगा।

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं,
सर्वे जनाः सुजनतामुपयान्ति तस्य।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा,
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य॥98॥

(लट् लकार प्रयोग-चतुष्टय द्रष्टव्य)

अन्वयः यस्य नरस्य विपुलं पूर्वसुकृतम् अस्ति तस्य भीमं वनं प्रधानं पुरं भवति, तस्य सर्वे जनाः स्वजनताम् उपयाति, तस्य कृत्स्ना भूः च सन्निधिरत्नपूर्णा भवति।

हिन्दी - जो मनुष्य पूर्व कर्मों के विशाल पुण्यों से युक्त है उसके लिये भयंकर जंगल 'प्रधान नगर (राजधानी)' हो जाता है, सभी मनुष्य स्वजन बन जाते हैं और समस्त भूमि महान् निधियों और रत्नों से परिपूर्ण हो जाती है।

टिप्पणी

को लाभो गुणिसङ्गमः, किमसुखं प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः,
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः।
कः शूरो विजितेन्द्रियः, प्रियतमा काऽनुव्रता, किं धनं
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं, राज्यं किमाज्ञाफलम्॥99॥

('किम्' के त्रिलिङ्ग प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः लाभः कः? गुणिसङ्गमः, असुखं किं? प्राज्ञेतरैः (सह) संगतिः, हानिः का? समयच्युतिः, निपुणता का? धर्मतत्त्वे रतिः, शूरः कः? विजितेन्द्रियः, प्रियतमा का? अनुव्रता, धनं कि? विद्या, सुखं किं? अप्रवासगमनं, राज्यं कि? आज्ञाफलम्।

हिन्दी - लाभ क्या है? गुणवानों की सङ्गति, दुःख क्या है? मूर्खों से सम्पर्क, हानि क्या है? समय की बर्बादी, दक्षता क्या है? धर्मतत्त्व में प्रेम, वीर कौन है? जितेन्द्रिय, प्रियतमा कौन है? अनुगामिनी, धन क्या है? विद्या, सुख क्या है? स्वदेश निवास और राज्य क्या है? आज्ञा का पालन।

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनधनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा॥100॥

(करण प्रयोग/कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः अप्रियवचनदरिद्रैः, प्रियवचनधनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः परपरिवादनिवृत्तैः सज्जनैः वसुधा क्वचित् क्वचित् मण्डिता (अस्ति)।

हिन्दी - कटुवचन से विहीन, प्रियवचन से संपन्न, स्वपत्नी से संतुष्ट तथा परनिन्दा से विरत सज्जनों से पृथ्वी कहीं-कहीं ही अलंकृत है। (अर्थात् वे पृथ्वी पर अल्प ही हैं)।

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते-
र्नशक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने-
र्नाऽधः शिखा याति कदाचिदेव॥101॥

(सविशेषण षष्ठी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः कदर्थितस्य अपि हि धैर्यवृत्तेः (पुरुषस्य) धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुं न शक्यते। अधोमुखस्य कृतस्य अपि वह्नेः शिखा कदाचिदेव अधः न याति।

हिन्दी - कष्ट में भी स्थित हुए धैर्यवान् व्यक्ति का धैर्य नष्ट नहीं किया जा सकता। अग्नि का मुख नीचे कर देने पर भी उसकी ज्वाला कभी भी नीचे नहीं जाती।

टिप्पणी

कान्ताकटाक्षविशिखा न लुनन्ति यस्य
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशैः
लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः॥102॥

(लट् लकार प्रयोग चतुष्टय द्रष्टव्य)

अन्वयः यस्य चित्तं कान्ताकटाक्षविशिखाः न लुनन्ति, कोपकृशानुतापः न निर्दहति, भूरिविषयाश्च लोभपाशैः न कर्षन्ति स धीरः इदं कृत्स्नं लोकत्रयं जयति।

हिन्दी - जिस धैर्यवान् पुरुष के मन को स्त्रियों के कटाक्षरूपी तीक्ष्ण बाण नहीं छेदते, क्रोधाग्नि नहीं जलाती तथा नाना विषय-भोग लोभ रूपी पाशों के द्वारा (बांध कर) नहीं आकर्षित करते, वह इस समस्त तीन भुवनों को जीत लेता है।

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम्।
क्रियते भास्करेणेव स्फारस्फुरिततेजसा॥103॥

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः हि स्फारस्फुरिततेजसा भास्करेण इव एकेन अपि शूरेण महीतलं पादाक्रान्तं क्रियते।

हिन्दी - जैसे अत्यन्त तेजोयुक्त सूर्य अकेले ही संपूर्ण जगत् को अपनी किरणों से व्याप्त कर लेता है उसी प्रकार अत्यन्त पराक्रमयुक्त वीर अकेले ही पृथ्वीतल को अपने चरणों से आक्रान्त कर लेता है।

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणा-
न्मेरुः स्वल्पशिलायते, मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते।
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥104॥

(नामधातु के प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः यस्य अङ्गे अखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति तस्य (पुरः) वह्निः जलायते, जलनिधिः तत्क्षणात् कुल्यायते, मेरुः स्वल्पशिलायते, मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते, व्यालः माल्यगुणायते तथा विषरसः पीयूषवर्षायते।

हिन्दी - जिस सत्पुरुष के शरीर में सकल संसार का प्रियतम सदाचार सुशोभित होता है उसके लिये अग्नि जल के समान आचरण करता है, समुद्र छोटी नदी हो जाता है, मेरु पाषाणखण्ड हो जाता है, व्याघ्र तुरन्त हिरण के समान हो जाता है, सर्प पुष्पमाला की तरह आचरण करता है और विषरस अमृत बन जाता है।

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम्।
तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति,
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम्॥105॥

(कर्मकारक के द्विलिङ्ग-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः सत्यव्रतव्यसनिनः तेजस्विनः असून् अपि सुखं संत्यजन्ति (किन्तु) लज्जागुणौघजननीम् अत्यन्तशुद्धहृदयाम् अनुवर्तमानां स्वां जननीमिव प्रतिज्ञां पुनः न (संत्यजन्ति)।

हिन्दी - सत्यव्रत में तत्पर रहने वाले तेजस्वी पुरुष प्राणों का त्याग तो सुख पूर्वक कर देते हैं, किन्तु लज्जा आदि गुणों की उत्पादिका, निर्मल स्वभाव वाली और अनुकूल माता तुल्य अपनी प्रतिज्ञा को कभी भी नहीं छोड़ते।

टिप्पणी

गद्य–पद्य मिश्रित अनुवाद अभ्यास (हितोपदेशम् से)

अथ प्रासादपृष्ठे सुखोपविष्टानां राजपुत्राणां पुरस्तात् प्रस्तावक्रमेण स पण्डितोऽब्रवीत् - भो राजपुत्राः शृणुत!

अनुवाद- [राजपुत्रों को (विष्णुशर्मा के समीप) समर्पित करने के पश्चात्] राजमहल के ऊपर छत पर सुखपूर्वक बैठे हुए राजपुत्रों के समक्ष अवसर पाकर विष्णुशर्मा पण्डित ने कहा - हे राजपुत्रो! सुनो।

काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥1॥

अन्वयः- धीमतां कालः काव्यशास्त्र विनोदेन गच्छति, मूर्खाणां तु (कालः) व्यसनेन निद्रया कलहेन वा (गच्छति)॥

अनुवाद- बुद्धिमान मनुष्यों का समय काव्य-शास्त्रादि सम्बन्धी चर्चाओं एवं काव्यगोष्ठियों में व्यतीत होता है। इसके विपरीत मूर्ख लोगों के जीवन का समय दुर्व्यसनों (जैसे - जुआ खेलना, शराब पीना आदि) में, सोने में अथवा व्यर्थ के विवाद एवं झगड़ों में व्यतीत होता है।

तद् भवतां विनोदाय काककूर्मादीनां विचित्रां कथां कथयिष्यामि। राजपुत्रैरुक्तम् आर्य! कथ्यताम्। विष्णुशर्मोवाच शृणुत यूयम्, सम्प्रति मित्रलाभः प्रस्तूयते, यस्याऽयमाद्यः श्लोकः-

अनुवाद- बुद्धिमान् मनुष्यों का समय काव्यशास्त्रादि के विनोद से व्यतीत होता है इसलिए आप लोगों के (राजकुमारों के) मनोरंजन के लिए मैं (विष्णु शर्मा) कौए एवं कछुए आदि की आश्चर्यजनक कथा कहूँगा। राजपुत्रों ने कहा - आर्य! कहिए। विष्णु शर्मा ने कहा - आप लोग सुनिए, इस समय मित्र-लाभ नाम का प्रसंग प्रस्तुत करता हूँ, जिसका यह प्रथम श्लोक है -

असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः।
साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत्॥2॥

(विभिन्न विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- असाधनाः वित्तहीनाः बुद्धिमन्तः, सुहृत्तमाः काककूर्ममृगाऽऽखुवत् कार्याणि आशु साधयन्ति॥

अनुवाद- अनेक प्रकार के साधनों से रहित तथा धन से हीन भी बुद्धिमान श्रेष्ठ मित्रगण परस्पर मिलकर कार्यों को उसी प्रकार शीघ्र ही सम्पादित कर लेते हैं, जिस प्रकार कौआ,

कछुआ, हिरण एवं चूहे ने साधनरहित एवं धनहीन होने पर भी अपनी बुद्धि एवं मित्रता से असाध्य कार्य को सफल बना डाला था।

टिप्पणी

राजपुत्राः ऊचुः - कथमेतत्? सोऽब्रबीत्

अनुवाद- राजपुत्रों ने कहा - यह किस प्रकार? उसने (विष्णु शर्मा ने) कहा -

(कथा 1)

अस्ति गोदावरी तीरे विशालः शाल्मलीतरुः। तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचिद् अवसन्नायां रात्रौ अस्ताचलचूडाऽवलम्बिनि भगवते कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि, लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयमटन्तं पाशहस्तं व्याधम् अपश्यत्। तम् आलोक्याचिन्तयत् - 'अद्य प्रातरेवाऽनिष्टदर्शनं जातम्, न जाने किम् अनभिमतं दर्शयिष्यति' इत्युक्त्वा तदनुसरणक्रमेण व्याकुलश्चलितः।

अनुवाद- गोदावरी नामक नदी के किनारे पर विशाल सेमल का वृक्ष है। वहाँ अर्थात् उस वृक्ष पर विविध दिशाओं एवं स्थानों से आकर रात्रि में पक्षी निवास करते हैं। इसके बाद किसी दिन रात्रि समाप्त होने तथा कुमुदिनी नायक चन्द्रमा के अस्ताचल को प्राप्त होने पर, लघुपतनक नामक कौए ने जागते ही द्वितीय यमराज के समान घूमते हुये व्याध (शिकारी) को देखा। उसे देखकर (उसने) विचार किया - 'आज प्रातःकाल में ही अमाङ्गलिक (अशुभसूचक) दर्शन हुआ, न मालूम यह किस प्रकार का अनिष्ट (विपत्ति) दिखाएगा' इतना कहकर उस शिकारी के पीछे-पीछे वह काक व्याकुल होकर चल दिया।

यतः- शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥3॥

(कर्मकारक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च दिवसे दिवसे मूढम् आविशन्ति, न तु पण्डितम्।।

अनुवाद- क्योंकि मूर्ख व्यक्ति को दिन-प्रतिदिन शोक के हज़ारों एवं भय के सैकड़ों कारण प्राप्त होते हैं, विद्वान् को नहीं। (अर्थात् शोक एवं भय के जो निमित्त होते हैं उनमें व्यक्ति का स्वभाव ही प्रधान कारण होता है। वस्तुतः शोक व भय संबंधी अनेक कारणों का प्रभाव मूर्खों पर अधिक होता है, विद्वज्जनों पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता।)

अन्यच्च विषयिणामिदमवश्यं कर्त्तव्यम् -
उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं महद् भयमुपस्थितम्।
मरणव्याधिशोकानां किमद्य निपतिष्यति॥4॥

(निर्धारणे षष्ठी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- उत्थाय उत्थाय अद्य मरणाव्याधिशोकानां किं निपतिष्यति (इति यद्) महद् भयम् उपस्थितम् (तत्) बोद्धव्यम्।।

अनुवाद- और भी - सांसारिक विषयों में आसक्ति रखने वाले लोगों का यह कर्त्तव्य है कि -

''प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर मृत्यु, रोग एवं दुःख इन तीनों में से जो आज आने वाला हो, उस पर भली प्रकार विचार करके तब महान् भय जो कि उपस्थित होने वाला है, उसे दूर करने में प्रयासशील बनें।

टिप्पणी

अथ तेन व्याधेन तण्डुलकणान् विकीर्य जालं विस्तीर्णम्। स च तत्र प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः। अस्मिन्नेव काले चित्रग्रीवनामा कपोतराजः सपरिवारो वियति विसर्पंस्तां-स्तण्डुलकणान् अवलोकयामास। ततः कपोत-राजस्तण्डुलकणलुब्धान् कपोतान् प्राह-कुतोऽत्र निर्जने वने तण्डुलकणानां सम्भवः। तन्निरूप्यतां तावत्, भद्रमिदं न पश्यामि प्रायेणाऽनेन तण्डुलकण-लोभेनाऽस्माभिरपि तथा भवितव्यम्-

अनुवाद- इसके बाद उस शिकारी ने चावल के कणों को पृथ्वी पर बिखेर कर ऊपर से जाल को फैला दिया और वह स्वयं वहाँ छिप कर बैठ गया। इसी समय 'चित्रग्रीव' नामक कबूतरों के राजा ने परिवार सहित आकाश में उड़ते हुए उन चावल के कणों को देखा। तब कबूतरों के राजा ने चावलों के कणों के लोभी उन कबूतरों से कहा - 'इन निर्जन वन में चावल के कणों की उत्पत्ति कैसे सम्भव है? (अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता) अतः सर्वप्रथम तो यही विचारणीय है। इसमें मैं अपना कल्याण नहीं देख रहा हूँ। इन चावलों के कणों के लोभ से अपने को भी वैसा ही होना पड़ेगा।

कङ्कणस्य तु लोभेन मग्नः पङ्के सुदुस्तरे।
वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः पथिकः स मृतो यथा।5।।

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- कङ्कणस्य तु लोभेन सुदुस्तरे पङ्के मग्नः पथिकः वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः, यथा स मृतः।।

अनुवाद- सोने के कड़े के लोभ से तैरने में अत्यन्त कठिन कीचड़ में डूबा हुआ यात्री जिस प्रकार उस वृद्ध व्याघ्र को प्राप्त होकर मारा गया था (उसी प्रकार हमें भी मरना होगा)।

कपोताः ऊचुः - कथमेतत्। सोऽब्रवीत् -

अनुवाद- कबूतरों ने कहा - यह कैसे हुआ? चित्रग्रीव ने कहा -

अहमेकदा दक्षिणारण्ये चरन्नपश्यम् - एको वृद्धो व्याघ्रः स्नातः कुशहस्तः सरस्तीरे ब्रूते - 'भो भोः पान्थाः! इदं सुवर्णकङ्कणं गृह्यताम्।' ततो लोभाकृष्टेन केनचित्पान्थेन आलोचितम् - भाग्येन एतत् सम्भवति, किन्तु अस्मिन् आत्मसन्देहे प्रवृत्तिर्न विधेया।

अनुवाद- मैंने एक बार दक्षिण दिशा के एक जंगल में घूमते हुए देखा कि - एक वृद्ध व्याघ्र स्नान करके हाथ में कुशा लिए हुए तालाब के किनारे (बैठा हुआ) कह रहा था - 'हे! हे! पथिको! यह सोने का कड़ा ग्रहण कर लो।' तब लोभ से आकर्षित होकर एक यात्री ने विचार किया - भाग्य से ऐसा भी संभव हो सकता है। परन्तु इस जान जोखिम वाले कार्य में साहस की प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए, अर्थात् ऐसे कार्य में शीघ्र ही नहीं कूद पड़ना चाहिए। क्योंकि -

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा।
यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे॥6॥

(अपादान-कारक प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- अनिष्टाद् इष्टलाभे अपि शुभा गतिः न जायते। यत्र विषसंसर्गः आस्ते तद् अमृतम् अपि मृत्यवे (भवति)।।

अनुवाद- अनिष्ट से यदि इच्छित फल की सिद्धि हो जाए तो भी उसका परिणाम अच्छा नहीं होता क्योंकि जिस (पात्र) में विष का संयोजन हुआ रहता है, उसमें यदि अमृत भी रख दिया जाय तो वह भी मृत्यु का कारण हो जाता है।

किन्तु सर्वत्रार्थार्जने प्रवृत्तिः संदेह एव। तथा चोक्तम् -
न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति, पश्यति॥7॥

(रुह्-योगे द्वितीया प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- नरः संशयम् अनारुह्य भद्राणि न पश्यति, पुनः संशयम् आरुह्य यदि जीवति, (तदा) पश्यति।।

अनुवाद- परन्तु धन प्राप्ति में सर्वत्र शंका विद्यमान रहती है। ऐसा कहा भी गया है - 'मनुष्य जब तक जीवन-मृत्यु सम्बन्धी जोखिम नहीं उठाता है, तब तक उसका कल्याण नहीं होता है। एक बार यदि अपने आपको खतरे में डालकर जीवित रहता है, तब कल्याण देखता है। उसे शुभ फलों की प्राप्ति होती है।'

तन्निरूपयामि तावत्। प्रकाशं ब्रूते - 'कुत्र तव कङ्कणम्'? व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य दर्शयति। पान्थोऽवदत् - 'कथं मारात्मके त्वयि विश्वासः'। व्याघ्र उवाच - 'शृणु रे पान्थ, प्रागेव यौवनदशायामतिदुर्वृत्त आसम्। अनेकगोमानुषाणां वधान्मे पुत्राः मृताः दाराश्च। वंशहीनश्चाहम्। ततः केनचिद्धार्मिकेणाहमुपदिष्टः - 'दानधर्मादिकं चरतु भवान्' इति। तदुपदेशादिदानीमहं स्नानशीलो दाता वृद्धो गलितनखदन्तः न कथं विश्वासभूमिः? यतः-

अनुवाद- तो 'सोने का कंगन है अथवा नहीं' (- इस बात का) पहले निश्चय कर लूँ। (ऐसा विचार कर) उसने प्रकाश रूप में कहा - 'तुम्हारा कंगन कहाँ है?' बाघ ने हाथ फैलाकर कंगन को दिखाया। पथिक ने कहा - 'तुम जैसे हिंसक जीव पर कैसे विश्वास किया जाए? व्याघ्र बोला - ओ पथिक, सुनो! पहले ही यौवन काल में मैं अत्यन्त दुष्ट प्रवृत्ति का था। अनेक गायों व मनुष्यों को मारने से मेरे पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गये तथा स्त्री भी चल बसी, इस समय मैं वंशहीन हूँ। इसके बाद किसी महात्मा ने मुझे उपदेश दिया कि 'तुम दान-धर्म करो'। उसके उपदेश से इस समय मैं प्रतिदिन स्नान करके दान देता हूँ। मैं वृद्ध हूँ, मेरे नाखून एवं दांत गल चुके हैं, क्षीण हो चुके हैं। फिर भी क्या मैं विश्वास का पात्र नहीं हूँ? क्योंकि -

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥8॥

(विसर्ग-सन्धि नियम द्रष्टव्य)

अन्वयः- इज्या-अध्ययन-दानानि, तपः, सत्यं, धृतिः, क्षमा (च) अलोभः इति धर्मस्य अयम् अष्टविधः मार्गः स्मृतः।

अनुवाद- (विद्वानों द्वारा) धर्म के आठ मार्ग बताये गये हैं - यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तपस्या, सत्य, धैर्य, क्षमा एवं सन्तोष।

टिप्पणी

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति॥9॥

(सप्तमी विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- तत्र पूर्वः चतुर्वर्गः दम्भार्थमपि सेव्यते, उत्तरः चतुर्वर्गः तु महात्मनि एव तिष्ठति।

अनुवाद- धर्म के उन आठ मार्गों में प्रथम चार (अर्थात् यज्ञ, स्वाध्याय, दान एवं तप) दुनिया में अपना यश एवं प्रतिष्ठा बढ़ाने की दृष्टि से भी किये जा सकते हैं। किन्तु अन्तिम चार (सत्य, धैर्य, क्षमा एवं सन्तोष) तो महात्माओं अर्थात् महापुरुषों में ही निवास करते हैं।

मम चैतावान् लोभविरहः, येन स्वहस्तस्थमपि सुवर्णकङ्कणं यस्मै कस्मैचिद् दातुमिच्छामि तथाऽपि व्याघ्रो मानुषं खादति इति लोकाऽपवादो दुर्निवारः।

अनुवाद- लोभ का तो मैंने यहां तक त्याग कर दिया है कि अपने हाथ में स्थित सोने का कंगन भी जिस किसी मनुष्य को देना चाहता हूँ। तो भी 'व्याघ्र मनुष्यों को खा जाता है' ऐसा लोकापवाद (अथवा किंवदन्ती) मिटाने से भी नहीं मिटता।

यतः-

गताऽनुगतिको लोकः कुट्टनीमुपदेशिनीम्।
प्रमाणयति नो धर्मे यथा गोघ्नमपि द्विजम्॥10॥

(पुं. स्त्री. विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- गताऽनुगतिकः लोकः धर्मे गोघ्नं द्विजमपि यथा, (तथा) उपदेशिनी 'कुट्टनी' नो प्रमाणयति।

अनुवाद- क्योंकि इस सृष्टि के सभी लोग एक-दूसरे का अनुसरण करने वाले (भेड़चाल वाले) हैं। यह जगत् पूर्व में किए गए कार्य का अनुसरण करने वाले के क्रम से उपदेश देने वाली व्यभिचारिणी स्त्री को भी उपदेश देने की अधिकारिणी नहीं मान सकते, (क्योंकि धर्म के वास्तविक स्वरूप पर इसकी आस्था नहीं होती।) किंतु गोवध करने वाले ब्राह्मण को प्रमाण मान लेते हैं।

मया च धर्मशास्त्राणि अधीतानि। शृणु -

अनुवाद- मैंने धर्मशास्त्र ग्रन्थ पढ़े हैं। सुनो -

मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः क्षुधार्ते भोजनं तथा।
दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन॥11॥

(सप्तमी विभक्ति प्रसंग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- हे पाण्डुनन्दन! यथा मरुस्थल्यां वृष्टिः, (सफला भवति तथा च) क्षुधार्ते भोजनम्, (सफलं भवति) तथा दरिद्रे (यत्) दानं दीयते, (तत्) सफलं भवति।

अनुवाद- हे युधिष्ठिर! जिस प्रकार मरुभूमि (रेगिस्तान) में जलवृष्टि होना सार्थक होता है तथा भूखे को भोजन देना सार्थक होता है, वैसे ही निर्धन को धन दान देना सफल माना जाता है। (व्याघ्र कहता है कि ऐसा मानकर ही मैं तुम्हें दान दे रहा हूँ, अतः तुम दान ले लो।)

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः॥12॥

(दया-योगे सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- यथा आत्मनः प्राणाः अभीष्टाः (भवन्ति) तथा भूतानामपि ते (भवन्ति)। साधवः आत्मौपम्येन भूतानामपि दयां कुर्वन्ति॥

अनुवाद- अपने प्राण जैसे अपने को अत्यन्त प्रिय हैं, वैसे ही दूसरे सभी प्राणियों को भी अपने प्राण प्यारे होते हैं। ऐसा मानते हुए सज्जन लोग सभी प्राणियों पर दया करते है।

अपरं च-

प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति॥13॥

(विषयार्थिका सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- पुरुषः प्रत्याख्याने दाने च सुखदुःखे प्रियाऽप्रिये च आत्मौपम्येन च प्रमाणमधिगच्छति।

अनुवाद- और भी - अपनी निन्दा अथवा अपना अपमान होने में, दान में, सुख एवं दुःख में, प्रिय तथा अप्रिय में जैसा अपने को सुख दुःखादि का अनुभव होता है, वैसा ही सब प्राणियों को होता है, ऐसा जो व्यक्ति समझता है, वही प्रामाणिक पुरुष है।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥14॥

(विषयार्थिका सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- यः परदारेषु मातृवत्, परद्रव्येषु लोष्ठवत्, सर्वभूतेषु आत्मवत् पश्यति, सः पण्डितः॥

अनुवाद- जो दूसरे की स्त्री को माता के समान, पराए धन को मिट्टी के ढेले की तरह तथा अपने समान ही सब प्राणियों के सुख दुःख समझता है, वही विद्वान् है।

त्वं चातीव दुर्गतस्तेन तत्तुभ्यं दातुं सयत्नोऽहम्। तथा चोक्तम्-

अनुवाद- तुम अत्यन्त दुःखी दिखाई दे रहे हो, इसीलिए मैं तुम्हें स्वर्ण कंगन देने के लिए उद्यत हूँ। जैसा कि कहा भी गया है -

दरिद्रान् भर कौन्तेय! मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः॥15॥

(कृते-अध्याहार में षष्ठी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- हे कौन्तेय! दरिद्रान् भर, ईश्वरे धनं मा प्रयच्छ, (यतः) व्याधितस्य औषधं पथ्यं भवति, नीरुजस्य औषधैः किम्?

अनुवाद- हे युधिष्ठिर! तुम निर्धनों का पालन-पोषण करो- (उन्हें धनादि वांछित वस्तु प्रदान करो)। धनवान् व्यक्ति को धन प्रदान मत करो क्योंकि रोगी, मनुष्य के लिए ही औषधि कल्याणकारी होती है, जो रोगरहित है, उसको औषधि देने से क्या लाभ?

टिप्पणी

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणि।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः॥16॥

(विषयार्थिका सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- दातव्यमिति यद् दानं देशे काले च अनुपकारिणि पात्रे दीयते, तद्दानं सात्विकं विदुः।।

अनुवाद- दिया जाने वाला धनादि दान यदि ऐसे प्राणी को दिया जाता है जिससे कि किसी प्रकार के प्रत्युपकार (स्वार्थ) की आशा न हो तथा जो उचित स्थान, समय एवं पात्र के अनुरूप हो, उसी दान को शास्त्रों में पुण्यदायक दान कहा गया है।

तदत्र सरसि स्नात्वा सुवर्णकङ्कणं गृहाण। ततो यावदसौ तद्वचः प्रतीतो लोभात्सरः स्नातुं प्रविष्टः, तावन्महापङ्के निमग्नः पलायितुमक्षमः। तं पङ्के पतितं दृष्ट्वा व्याघ्रोऽवदत् - 'अहह! महापङ्के पतितोऽसि! अतस्त्वामहमुत्थापयामि' इत्युक्त्वा शनैः शनैरुपगम्य तेन व्याघ्रेण धृतः स पान्थोऽचिन्तयत्-

अनुवाद- इसलिए, इस तालाब में स्नान करके यह सुवर्ण कंगन ग्रहण करो। इसके बाद जैसे ही वह उसके वचन में विश्वास करके सरोवर में स्नान करने के लिए प्रविष्ट हुआ वैसे ही भयानक दलदल में फंसकर भागने में असमर्थ हो गया। उसे कीचड़ में फंसा हुआ देखकर व्याघ्र ने कहा - 'ओ हो हो'! तुम भयानक कीचड़ में फंस गये हो, अभी मैं तुम्हें बाहर निकालता हूँ - यह कहकर धीरे-धीरे यात्री के पास पहुंचकर उसे पकड़ लिया। व्याघ्र द्वारा पकड़े गये उस यात्री ने विचार किया-

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं,
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते,
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः॥17॥

(तृतीया उपपद-विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- दुरात्मनः (कृते), धर्मशास्त्रं पठति इत्यपि कारणं न (भवति)। वेदाध्ययनमपि (कारणं) न च (भवति), किन्तु अत्र (धर्माचरणे) तथा स्वभाव एव अतिरिच्यते, यथा गवां पयः प्रकृत्या मधुरं भवति।।

अनुवाद- यह धर्मशास्त्र अथवा वेद का अध्ययन करता है इसलिए यह दुष्ट व्यक्ति सज्जन प्रकृति का हो गया है, ऐसा समझना भूल है क्योंकि स्वभाव सर्वोपरि है, सबसे बढ़कर हेतु है। (वेद एवं धर्मशास्त्र के अध्ययन से स्वभाव परिवर्तन कदापि संभव नहीं है।) जैसे गाय का दूध स्वभाव से ही मीठा होता है।

अवशेन्द्रियचित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाऽऽभरणप्रायो ज्ञानं भारः क्रियां विना॥18॥

(विना योगे द्वितीया द्रष्टव्या)

टिप्पणी

अन्वयः- अवशेन्द्रियचित्तानां क्रिया हस्तिस्नानमिव (निष्फला भवति) क्रियां विना ज्ञानं दुर्भगाऽऽभरणप्रायः भारः (भवति।)

अनुवाद- और - जिन मनुष्यों की इन्द्रियाँ व चित्त वश में नहीं हैं, उनकी सभी क्रियाएँ हाथी के स्नान की तरह रहती हैं। क्रिया ठीक न रहने पर ज्ञान भी विधवा स्त्री के आभूषणों की तरह भार स्वरूप ही प्रतीत होता है।

तन्मया भद्रं न कृतम्, यदत्र मारात्मके विश्वासः कृतः। तथा चोक्तम् -

अनुवाद- इसलिए मैंने यह अच्छा नहीं किया, जो इस जीवघाती व्याघ्र पर विश्वास किया। कहा भी है -

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च॥19॥

(वि/श्वस् योगे सप्तमी द्रष्टव्या)

अन्वयः- नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां तथा शृङ्गिणां स्त्रीषु राजकुलेषु च विश्वासो नैव कर्तव्यः।

अनुवाद- नदियों, शस्त्रधारी व्यक्तियों, नाखून धारण करने वाले जीवों, सींग धारण करने वाले पशुओं, स्त्रियों एवं राजकुल में उत्पन्न व्यक्तियों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। (ये सभी विश्वास के योग्य नहीं होते है, कभी भी धोखा दे सकते हैं।)

सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणाः।
अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते॥20॥

(कर्म-वाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- सर्वस्य स्वभावाः हि परीक्ष्यन्ते इतरे गुणाः न (परीक्ष्यन्ते) हि सर्वान् गुणान् अतीत्य स्वभावः मूर्ध्नि वर्तते।।

अनुवाद- और भी, सभी लोगों के स्वभाव की ही परीक्षा की जाती है, (दयादाक्षिण्यादि) अन्य सभी गुणों की नहीं। क्योंकि सब गुणों को दबाकर स्वभाव सब के सिर पर बैठा रहता है, अर्थात् स्वभाव सर्वगुणोपरि है।

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी,
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी।
विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणाऽसौ,
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः॥21॥

(विषयार्थिका सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी असौ विधुरपि विधियोगाद् राहुणा ग्रस्यते। इह ललाटे लिखितम् प्रोज्झितुं कः समर्थः (अस्ति)।

अनुवाद- और भी - वह चन्द्रमा जो कि आकाश में विहार करता है, सभी पापों अथवा अन्धकार को नष्ट करता है, जिसकी हज़ारों किरणें हैं तथा जो नक्षत्र-मण्डल के मध्य में रहता है, दैव योग से वह चंद्रमा भी राहु के द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। अतः सारांश यह है कि भाग्य में विधाता ने जो लिख दिया है, उसे अन्यथा करने में कौन समर्थ है?

टिप्पणी

इति चिन्तयन्नेवासौ व्याघ्रेण खादितश्च। अतोऽहं ब्रवीमि - 'कङ्कणस्य तु लोभेन इत्यादि। अतः सर्वथाऽविचारितं कर्मम् न कर्तव्यम्।

अनुवाद- ऐसा विचार करते हुए ही वह पथिक व्याघ्र द्वारा खा लिया गया। अतः मैं कहता हूँ - कंगन के लोभ से तो ---- आदि। इसलिए कभी भी बिना विचारे कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः,
सुशासिता स्त्रीः नृपतिः सुसेवितः।
सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं,
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्।।22।।

(त्रिलिङ्ग विशेषण-विशेष्य-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- सुजीर्णम् अन्नम्, सुविचक्षणः सुतः, सुशासिता स्त्री, सुसेवितः नृपतिः, सुचिन्त्य च उक्तम्, सुविचार्य यत् कृतम्, (तत्) सुदीर्घकालेऽपि विक्रियाम् न याति।।

अनुवाद- अच्छी प्रकार से पचाया हुआ भोजन, विद्वान् पुत्र, अच्छी तरह शासित स्त्री, भली प्रकार सेवित राजा, अत्यधिक सोचकर कही हुई बात तथा भली-भाँति विचार कर किया हुआ काम बहुत दिनों तक विकार भाव को प्राप्त नहीं होता है।

एतद्वचनं श्रुत्वा कश्चित्कपोतः सदर्पमाह - आः, किमेवमुच्यते -

अनुवाद- यह बात सुनकर किसी कबूतर ने साभिमान कहा - 'अरे, ऐसा क्यों कह रहे हो'-

वृद्धानां वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते।
सर्वत्रैवं विचारेण भोजनेऽप्यप्रवर्तनम्।।23।।

(भावे सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- आपत्काले उपस्थिते हि वृद्धानां वचनं ग्राह्यम्, सर्वत्र एवं विचारेण भोजनेऽपि अप्रवर्तनम् (स्यात्)।।

अनुवाद- विपत्ति का समय उपस्थित होने पर निश्चय ही वृद्ध पुरुषों की बात माननी चाहिए। (परन्तु) यदि सब जगह ऐसा विचार किया जाए, तब तो भोजन मिलना भी कठिन हो जाए अर्थात् भोजन जैसा सामान्य कार्य भी स्वतन्त्रतापूर्वक सम्भव नहीं हो सकेगा।

शङ्काभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले।
प्रवृत्तिः कुत्र कर्त्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा।।24।।

(तव्यत् प्रत्यय द्विलिङ्ग प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- भूतले शङ्काभिः अन्नं पानंच सर्वम् आक्रान्तम्, कुत्र प्रवृत्तिः कर्त्तव्या कथं नु वा जीवितव्यम्।।

अनुवाद- क्योंकि पृथ्वी पर अन्न-जलादि सभी वस्तुएँ आशंकाओं से व्याप्त हैं। सर्वत्र किसी न किसी प्रकार का सन्देह रहता ही है। ऐसी स्थिति में कोई कहाँ प्रवृत्ति करे तथा कैसे अपना जीवन यापन करे?

टिप्पणी

तथा चोक्तम्-

ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः।।25।।

(इन्नन्त और अकारान्त कर्तृ-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- ईर्ष्यी घृणी तु असन्तुष्टः क्रोधनः नित्यशङ्कितः परभाग्योपजीवी च एते षट् दुःखभागिनः (भवन्ति)।।

अनुवाद- जैसा कि कहा गया है - ईर्ष्या करने वाला, घृणा भाव रखने वाला, असन्तोष रखने वाला, क्रोधी, सदा सन्देही प्रवृत्ति वाला तथा दूसरे के भाग्य पर जीवित रहने वाला– ये छह प्रकार के लोग सर्वदा दुःख प्राप्त करते हैं।

एतच्छ्रुत्वा तण्डुलकणलोभेन नभोमण्डलादवतीर्य सर्वे कपोतास्तत्रोपविष्टाः। यतः-

अनुवाद- यह सुनकर चावल के दानों के लालच से आकाश मण्डल से उतरकर वे सभी कबूतर वहाँ बैठ गये। क्योंकि-

सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्तो बहुश्रुताः।
छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्ते लोभमोहिताः।।26।।

(तकारान्त नपुंसकलिङ्ग विशेषण प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- सुमहान्ति शास्त्राणि धारयन्तः बहुश्रुताः संशयानां च छेत्तारः अपि लोभमोहिताः क्लिश्यन्ते।।

अनुवाद- (वेदवेदाङ्गादि) महान् शास्त्रों का ज्ञान रखने वाले, बहुश्रुत तथा संशयों का निराकरण करने वाले विद्वान् भी लोभ के वशीभूत हो दुःख प्राप्त करते हैं।

अन्यच्च-

लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रजायते।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम्।।27।।

(अपादान कारक प्रयोग द्रष्टव्य)

अनुवाद- और भी-

लोभ से क्रोध होता है, लोभ से ही विविध काम भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, लोभ से ही व्यक्ति अविवेक की ओर बढ़ता है तथा लोभ से विनाश भी हो जाता है। अतः लोभ सभी अनर्थों का प्रधान कारण है।

असंभवं हेममृगस्य जन्म
तथापि रामो लुलुभे मृगाय।

प्रायः समापन्नविपत्तिकाले
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति॥28॥

(बहुवचनान्त स्त्रीलिङ्ग विशेषण प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- हेममृगस्य जन्म असंभवम् (वर्तते) तथापि रामः मृगाय लुलुभे। समापन्नविपत्तिकाले पुंसां धियः अपि प्रायः मलिनाः भवन्ति॥

अनुवाद- सुवर्ण का मृग होना असम्भव है, फिर भी भगवान् राम स्वर्ण मृग देखकर लोभ के वशीभूत हो गए। प्रायः विपत्तिकाल के उपस्थित हो जाने पर बुद्धिमान् व्यक्तियों की भी बुद्धि मोहित हो जाती है।

अनन्तरं ते सर्वे जालनिबद्धाः बभूवुः। ततो यस्य वचनात्तत्रावलम्बितास्तं सर्वे तिरस्कुर्वन्ति स्म।

अनुवाद- इसके बाद वे सब कबूतर जाल में फंस गये। तदनन्तर जिस कबूतर की बात मानकर वे उतरे थे, उसका निरादर करने लगे।

यतः-

न गणस्याग्रतो गच्छेत् सिद्धे कार्ये समं फलम्।
यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते॥29॥

(भावे सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- (कश्चित्) गणस्य अग्रतः न गच्छेत् कार्ये सिद्धे फलं समं (भवति), यदि कार्यविपत्तिः स्यात्, तत्र मुखरः हन्यते॥

अनुवाद- किसी भी कार्य में अथवा किसी दल का अगुआ होकर नहीं रहना चाहिए। क्योंकि यदि कार्य सफल हो जाता है तो सभी समानता के फलभागी बनते हैं परन्तु यदि कार्य में विपत्ति उपस्थित हो जाती है तो नेता ही मारा जाता है अर्थात् अपमानित होता है।

तस्य तिरस्कारं श्रुत्वा चित्रग्रीव उवाच - 'नाऽयमस्य दोषः'।

अनुवाद- उस नेतृत्व करने वाले कबूतर के तिरस्कार को सुनकर चित्रग्रीव ने कहा - 'यह इसका दोष नहीं है।' क्योंकि -

आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम्।
मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने॥30॥

(षष्ठी विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- हितः अपि आपतन्तीनाम् आपदां हेतुतां आयाति, हि मातृजङ्घा वत्सस्य बन्धने स्तम्भीभवति॥

अनुवाद- सर्वदा हित चाहने वाला व्यक्ति भी अवश्य आने वाली विपत्तियों में विपत्ति का कारण बन जाता है क्योंकि (दूध दुहते समय) माता की जांघ ही बछड़े को बांधने के खंभे का काम करने लग जाती है।

स बन्धुर्यो विपन्नानामापदुद्धरणक्षमः।
न तु भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः॥31॥

(विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- यः विपन्नानाम् आपदुद्धरणक्षमः (भवति) स बन्धुः। भीतपरित्राण-वस्तूपालम्भपण्डितः तु न (बन्धुः भवति)॥

अनुवाद- जो विपत्ति में पड़े हुए बन्धु को आपत्ति से बाहर निकाल सके; वही सच्चा बन्धु है। विपत्तियों के आने पर रक्षण न करके केवल उलाहना देने में जो पुरुष कुशल है, वह बन्धु नहीं है।

विपत्काले विस्मय एव कापुरुषलक्षणम्, तदत्र धैर्यमवलम्ब्ययतः प्रतीकारश्चिन्त्यताम्। यतः-

अनुवाद- विपत्ति के समय व्याकुल होना नपुंसकता अथवा कायरता का लक्षण है। अतएव इस विषय में धैर्य धारण करके उसके निवारण का उपाय सोचना चाहिए। क्योंकि-

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धिमिदं हि महात्मनाम्॥32॥

(अधिकरण कारक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- विपदि धैर्यम्, अभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः, यशसि चाभिरुचिः, श्रुतौ व्यसनम्, इदं हि महात्मनां प्रकृतिसिद्धम्॥

अनुवाद- आपत्ति में धीरता, उन्नति के समय क्षमा, सभा में वाणी की दक्षता, संग्राम में पराक्रम, यश में रुचि, शास्त्रों में प्रेम - ये सब बातें महापुरुषों में स्वभावतः रहती हैं।

सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च भीरुत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम्॥33॥

(अधिकरण कारक-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- सम्पदि यस्य हर्षो न (भवति), विपदि विषादो न (भवति), रणो च भीरुत्वं (न भवति), तं भुवनत्रयतिलकं सुतं (काचित्) जननी विरलं जनयति। अन्यच्च-

अनुवाद- सम्पत्ति के प्राप्त होने पर जिसे प्रसन्नता नहीं होती, विपत्ति आने पर जिसको दुःख नहीं होता तथा युद्ध के समय भय नहीं होता है, ऐसे गुणों से युक्त त्रिभुवन श्रेष्ठ विरले ही मनुष्य को माता उत्पन्न करती है। कहा भी गया है-

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधः आलस्यं दीर्घसूत्रता॥34॥

(तव्यान्त विशेषण-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- इह भूतिमिच्छता पुरुषेण निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधः आलस्यं दीर्घसूत्रता (इति) षड् दोषाः हातव्याः।।

अनुवाद- इस संसार में वैभव चाहने वाले मनुष्य को निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य एवं दीर्घकालीन योजना इन छह दोषों को त्याग देना चाहिए।

टिप्पणी

इदानीमप्येवं क्रियताम् - सर्वैन्द्रेकचित्तीभूय जालमादायोड्डीयताम्।।

अनुवाद- अब ऐसा करो कि सब कबूतर एक होकर इस जाल को लेकर उड़ चलो। क्योंकि -

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः।।35।।

(तृतीया बहुवचनान्त विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका (भवति, यथा) गुणत्वमापन्नैः तृणैः मत्तदन्तिनो बध्यन्ते।।

अनुवाद- छोटी से छोटी वस्तु भी एकत्रित करने पर कार्य सिद्ध करने में सहायक होती है। जैसे कि साधारण तिनकों के समुदाय से बनी रस्सी द्वारा मतवाले हाथी भी बाँध दिए जाते हैं।

संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि।
तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः।।36।।

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- पुंसाम् अल्पकैः अपि स्वकुलैः सह संहतिः श्रेयसी, तुषेणापि परित्यक्ता, तण्डुलाः न प्ररोहन्ति।।

अनुवाद- अपना कुल छोटा ही क्यों न हो, वह यदि संगठित रहता है तो बड़ा लाभ होता है। जैसे कि धान में से केवल भूसी निकल जाने पर वह उगने में समर्थ नहीं होते।

इति विचिन्त्य पक्षिणः सर्वे जालमादायोत्पतिताः। अनन्तरं स व्याधः सुदूराज्जालापहारकान् तानवलोक्य पश्चाद्धावन्नचिन्तयत् -

अनुवाद- ऐसा विचार कर वे सभी कबूतर जाल लेकर उड़ गये। इसके पश्चात् वह बहेलिया भी दूर ही से उन जाल लेकर उड़कर जाते हुए पक्षियों को देखकर पीछे-पीछे दौड़ता हुआ विचार करने लगा -

संहतास्तु हरन्त्येते मम जालं विहंगमाः।
यदा तु निपतिष्यन्ति वशमेष्यन्ति मे तदा।।37।।

(लृट् लकार बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- एते विहङ्गमास्तु संहताः मम जालं हरन्ति, तु यदा निपतिष्यन्ति, तदा मे वशम् एष्यन्ति।।

अनुवाद- ये संगठित पक्षी मेरे जाल को लेकर आगे जा रहे हैं, लेकिन जब पृथ्वी पर उतरेंगे तब अवश्य मेरे वश में हो जाएँगे।

टिप्पणी

ततस्तेषु चक्षुर्विषयमतिक्रान्तेषु पक्षिषु स व्याधो निवृत्तः। अथ लुब्धकं निवृत्तं दृष्ट्वा कपोता ऊचुः - 'स्वामिन्! किमिदानीं कर्तुमुचितम्?' चित्रग्रीव उवाच -

अनुवाद- इसके बाद उन पक्षियों के आँखों से ओझल हो जाने पर वह बहेलिया लौट गया। इसके बाद बहेलिए को लौटा देखकर कबूतरों ने कहा - 'अब क्या करना उचित है? इस पर चित्रग्रीव ने कहा -

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयं हितम्।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः॥38॥

(लट् लकार बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- माता मित्रं पिता च इति त्रितयं स्वभावात् हितम् (भवति)। अन्ये च कार्यकारणतः हितबुद्धयः भवन्ति॥

अनुवाद- माता, मित्र और पिता - ये तीनों स्वभावतः शुभचिन्तक होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य लोग कार्य-कारणवश शुभचिन्तक होते हैं। (ऐसे लोग जब तक स्वार्थ होता है तब तक शुभ चिन्तक रहते हैं, स्वार्थ निकल जाने पर बात भी नहीं करते)।

तन्मे मित्रं हिरण्यको नाम मूषकराजो गण्डकीतीरे चित्रवने निवसति, सोऽस्माकं पाशांश्छेत्स्यति।' इत्यालोच्य सर्वे हिरण्यकविवरसमीपं गताः। हिरण्यकश्च सर्वदा अपायशङ्कया शतद्वारं विवरं कृत्वा निवसति। ततो हिरण्यकः कपोतावपातभयाच्चकितः तूष्णीं स्थितः। चित्रग्रीव उवाच- 'सखे हिरण्यक, किमस्मान्न संभाषसे।' ततो हिरण्यकस्तद्वचनं प्रत्यभिज्ञाय ससंभ्रमं बहिर्निसृत्याब्रवीत् - 'आः पुण्यवानस्मि। प्रियसुहृन्मे चित्रग्रीवः समायातः।

अनुवाद- अतः, 'मेरा मित्र हिरण्यक नामक चूहों का राजा गण्डकी नदी के तट पर चित्रवन में निवास करता है। वह हमारे बंधनों को काट डालेगा।' ऐसा विचार कर वे सब हिरण्यक की बिल के पास पहुँचे। हिरण्यक भी सदैव विघ्नों की शंका से सौ द्वारों का बिल बनाकर रहा करता था। वह कबूतरों के उतरने की आवाज से भयभीत होकर चुपचाप बैठ गया। चित्रग्रीव ने कहा - 'मित्र हिरण्यक! हमसे बोलते क्यों नहीं?' हिरण्यक उसकी बोली पहचान कर तुरन्त उत्साहपूर्वक बाहर आया और बोला - 'ओह! मैं बड़ा पुण्यवान हूँ। मेरा प्रिय मित्र चित्रग्रीव आया है।'

यस्य मित्रेण संभाषो यस्य मित्रेण संस्थितिः।
यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान्॥39॥

(षष्ठी विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- यस्य मित्रेण संभाषः, यस्य मित्रेण संस्थिति, यस्य मित्रेण संलापः (भवति), इह ततः पुण्यवान् नास्ति।

अनुवाद- जिसका मित्र के साथ संभाषण होता है, जिसका मित्र के साथ निवास होता है तथा जिसका मित्र के साथ विचार-विमर्श होता रहता है, उससे बढ़कर पुण्यात्मक इस संसार में और कोई नहीं है।

अथ पाशबद्धाँश्चैतान्दृष्ट्वा सविस्मयः क्षणं स्थित्वोवाच - 'सखे किमेतत्?' चित्रग्रीवोऽवदत् - 'सखे, अस्माकं प्राक्तनजन्मकर्मणः फलमेतत्।

अनुवाद- बिल के बाहर आने के बाद जाल में बंधे हुए उन सब को देखकर हिरण्यक ने आश्चर्ययुक्त क्षण भर के लिए स्थित होकर कहा - 'मित्र! यह क्या?' चित्रग्रीव ने उत्तर दिया - 'मित्र! यह हमारे पूर्व जन्म के कर्मों का फल है।'

टिप्पणी

यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च,
यावच्च यच्च च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च,
तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति।।40।।

(यस्मात्, येन, यथा, यदा, यत्, यत्र, तस्मात्, तथा, तदा आदि प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वय - यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च यावत् च यत्र च शुभाशुभम् आत्मकर्म (भवति), विधातृवशात् तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तावत् च तत्र च तच्च उपैति।।

अनुवाद- जिस कारण, जिसके द्वारा, जिस तरह, जिस समय, जो जितना और जिस स्थान पर प्राणी ने शुभ या अशुभ कर्म किया होता है। उसी कारण, उसी के द्वारा, उसी तरह, उसी समय, वहीं, उतना ही और उसी स्थान में भाग्यवश पुण्य व पापरूपी फल को प्राप्त करता है।

रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि च।
आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम्।।41।।

(कर्मभाव द्रष्टव्य)

अन्वयः- रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि एतानि च देहिनाम् आत्मापराधवृक्षाणां फलानि (फलन्ति)।।

अनुवाद- रोग, शोक, सन्ताप, बन्धन एवं व्यसन - ये सब मनुष्यों के अपने ही दुष्ट कर्म रूपी वृक्ष के फल हैं।

एतच्छ्रुत्वा हिरण्यकश्चित्रग्रीवस्य बन्धनं छेत्तुं सत्वरमुपसर्पति। चित्रग्रीव उवाच - 'मित्र! मा मैवं कुरु। प्रथममस्मदाश्रितानामेतेषां तावत् पाशांश्छिन्धि, मम पाशं पश्चाच्छेत्स्यसि।'' हिरण्यकोऽप्याह - 'अहमल्पशक्तिः, दन्ताश्च मे कोमलाः, तदेतेषां पाशाँश्छेत्तुं कथं समर्थो भवामि? तद्यावन्मे दन्ता न त्रुट्यन्ति तावत्तव पाशं छिनद्मि। तदनन्तरमेषामपि बन्धनं यावच्छक्यं छेत्स्यामि।' चित्रग्रीव उवाच - अस्त्वेवम्। तथापि यथाशक्त्येतेषां बन्धनं खण्डय।' हिरण्यकेनोक्तम् - 'आत्मपरित्यागेन यदाश्रितानां परिरक्षणं तन्न नीतिविदां सम्मतम्। यतः-

अनुवाद- यह सुनकर हिरण्यक तुरन्त चित्रग्रीव का बन्धन काटने के लिए आगे बढ़ा। यह देख चित्रग्रीव ने कहा - 'मित्र! ऐसा मत करो। पहले हमारे आश्रित इन सब कबूतरों के बन्धन काट दो, इसके बाद मेरा बन्धन काटना। तब हिरण्यक ने कहा- 'मैं अल्पशक्ति वाला हूँ, मेरे दांत भी कोमल हैं। इसलिए इन सबके बन्धनों को मैं कैसे काट सकूँगा। इसलिए मेरे दाँत जब तक नहीं टूटते हैं, तब तक मैं तुम्हारा बन्धन काट देता हूँ। इसके

टिप्पणी

पश्चात् इनके बन्धन भी यथाशक्ति काट दूंगा।' तब चित्रग्रीव ने कहा - 'ऐसे ही सही, परन्तु यथाशक्ति इनके बन्धन पहले काटो।' हिरण्यक ने कहा - 'अपने विषय में इस तरह उदासीन होकर आप अपने आश्रितों की रक्षा का विचार कर रहे हैं, वह नीतिज्ञों को सम्मत नहीं है।' क्योंकि -

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।।42।।

(विधिलिङ् लकार प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- आपदर्थे धनं रक्षेत्, धनैरपि दारान् रक्षेत्। दारैरपि, धनैरपि आत्मानं सततं रक्षेत्।।

अनुवाद- दुर्भिक्ष आदि आपत्तियों से बचने के लिए धन की रक्षा करे अर्थात् धन को बचाकर रखे। धन से भी स्त्री की रक्षा करे तथा स्त्री एवं धन से भी उत्तम समझकर स्वयं अपनी रक्षा करे।

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः।
तान् निघ्नता किन्न हतं रक्षता किं न रक्षितम्।।43।।

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- प्राणाः धर्मार्थकाममोक्षाणां संस्थितिहेतवः (भवन्ति) तान् निघ्नता (जनेन) किं न हतम् (भवति) रक्षता (च) किं न रक्षितं (भवति)।।

अनुवाद- प्राण ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का प्रमुख कारण हैं। अतः प्राणों की हत्या करने वाले मनुष्य ने किसकी हत्या नहीं की तथा प्राणों की रक्षा करने वाले ने किसकी रक्षा नहीं की? (अर्थात् सभी की रक्षा कर ली)।

चित्रग्रीव उवाच - 'सखे, नीतिस्तावत् ईदृश्येव किन्त्वहमस्मदाश्रितानां दुःखं सोढुं सर्वथाऽसमर्थस्तेन ब्रवीमि।

अनुवाद- चित्रग्रीव ने कहा - 'जैसा तुमने कहा नीति तो वैसी ही है, लेकिन क्या करूँ, मैं अपने आश्रितों का दुःख सहने में सर्वथा असमर्थ हूँ, इसलिए ऐसा कह रहा हूँ।

यतः-

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति।।44।।

अन्वयः- प्राज्ञः परार्थे एव धनानि जीवितञ्च उत्सृजेत्, विनाशे नियते सति सन्निमित्ते त्यागः वरम्।।

अनुवाद- बुद्धिमान् मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह धन और अपने प्राणों को दूसरों की भलाई के लिए त्याग दे क्योंकि धन एवं जीवन का जब विनाश निश्चित है, तब उत्तम कार्य के लिए धन एवं शरीर त्याग देना श्रेष्ठ है।

अयमपरश्चासाधारणो हेतुः

अनुवाद- फिर यह एक ओर असाधारण कारण है -

जातिद्रव्यगुणानां च साम्यमेषां मया सह।
मत्प्रभुत्वफलं ब्रूहि कदा किं तद्भविष्यति।।45।।

(साम्यार्थे तृतीया प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- मया सह एषां जातिद्रव्यगुणानां च साम्यम्, तत् ब्रूहि मत्प्रभुत्वफलं किं कदा भविष्यति?

अनुवाद- इनकी जाति, सम्पत्ति और गुणों की मेरे साथ समता है। (अर्थात् इन सब बातों में हम और ये समान हैं) अब कहिए यदि मैं इनका इस समय रक्षण न करूँ, तो दूसरा इन पर मेरे आधिपत्य का कौन-सा फल होगा अर्थात् कोई नहीं।

विनावर्तनमेवैते न त्यजन्ति ममान्तिकम्।
तन्मे प्राणत्ययेनापि जीवयैतान्ममाश्रितान्।।46।।

(कर्मकारक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- एते वर्तनं विना ममान्तिकं नैव त्यजन्ति, तत् मे प्राणव्ययेनाऽपि एतान् ममाश्रितान् जीवय।।

अनुवाद- ये सभी कबूतर बिना वेतन लिए ही मेरा साथ नहीं छोड़ते हैं अर्थात् सदैव सेवा में तल्लीन रहते हैं। इसलिए मेरे प्राणों के बदले पहले मेरे इन आश्रित जनों की रक्षा करो (इन्हें पहले जीवनदान दो)।

मांसमूत्रपुरीषाऽस्थिपूरितेऽत्र कलेवरे।
विनश्वरे विहायाऽऽस्थां यशः पालय मित्र मे।।47।।

(आस्था/विश्वास योगे सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- मित्र! मांसमूत्रपुरीषाऽस्थिपूरिते विनश्वरे अत्र कलेवरे आस्थां विहाय, मे यशः पालय।।

अनुवाद- हे मित्र! मांस, मूत्र, मल एवं हड्डी से बने हुये शरीर में आस्था त्यागकर मेरे यश की रक्षा करो। शरणागत की रक्षा करके मेरे यश को बचा लो।

अपरं च पश्य

यदि नित्यमनित्येन निर्मलं मलवाहिना।
यशः कायेन लभ्येत् तन्न लब्धं भवेन्नु किम्।।48।।

(तृतीयान्त विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- यदि अनित्येन मलवाहिना कायेन नित्यं निर्मलं यशः लभ्येत्, नु तत् किं लब्धं न भवेत्?

अनुवाद- और देखो- यदि इस अनित्य तथा मलवाही शरीर से नित्य और निर्मल यश प्राप्त हो जाए तो फिर और क्या पाना शेष रहा? (अर्थात् सब कुछ तो मिल गया।)

शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम्।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः।।49।।

(इन्नन्त-पुं.-नपुं. विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- शरीरस्य गुणानाञ्च अन्तरम् अत्यन्तं दूरं (भवति) शरीरं क्षणविध्वंसि (भवति), गुणाः कल्पान्तस्थायिनः (भवन्ति)।

टिप्पणी

अनुवाद- शरीर एवं गुणों में बहुत बड़ा अन्तर है क्योंकि शरीर नश्वर है, क्षण में विनष्ट होने वाला है, किन्तु गुण युगों-युगों के अन्त तक स्थिर रहने वाले हैं।

इत्याकर्ण्य हिरण्यकः प्रहृष्टमनाः पुलकितः सन् अब्रवीत् - 'साधु मित्र! साधु, अनेनाऽऽश्रितवात्सल्येन त्रैलोक्यस्याऽपि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते।' एवमुक्त्वा तेन सर्वेषां कपोतानां बन्धनानि छिन्नानि। ततो हिरण्यकः सर्वान् सादरं सम्पूज्य आह - 'सखे? चित्रग्रीव! सर्वथाऽत्र जालबन्धनविधौ सति दोषमाशङ्क्य आत्मनि अवज्ञा न कर्त्तव्या। यतः-

अनुवाद- चित्रग्रीव का कथन सुनकर बड़े प्रसन्न मन से पुलकित होकर हिरण्यक ने कहा - 'हे मित्र चित्रग्रीव! तुमने ठीक कहा, आश्रितों के प्रति इतने अधिक वात्सल्यभाव के कारण तुम तीनों लोकों के प्रभु हो सकते हो।' ऐसा कहकर उस हिरण्यक ने सब कबूतरों के बन्धन काट दिये। तत्पश्चात् हिरण्यक ने उन सबका सत्कार करके कहा - 'मित्र चित्रग्रीव! जाल में बंध जाने के दोष पर विचार कर आत्मग्लानि नहीं करनी चाहिए।'

योऽधिकाद् योजनशतात् पश्यतीहामिषं खगः।
स एव प्राप्तकालस्तु पाशबन्धं न पश्यति॥50॥

(अन्तरालयोगे पञ्चमी-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- इह यः खगः योजनशतात् अधिकाद् आमिषं पश्यति, स एव प्राप्तकालस्तु पाशबन्धं न पश्यति॥

अनुवाद- इस संसार में जो पक्षी (श्येन) सौ योजन से भी अधिक दूरी पर विद्यमान मांस के टुकड़ों को देख लेता है, वही पक्षी समय आ जाने पर जाल के बन्धन को नहीं देख पाता - (उसमें फंस ही जाता है)।

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम्
गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो बलवानिति मे मतिः॥51॥

(तकारान्त षष्ठी बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम् गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनं च मतिमतां दरिद्रतां विलोक्य मे मतिः (वर्तते) 'अहो! विधिः बलवान्' इति॥

अनुवाद- और भी - सूर्य एवं चन्द्रमा का ग्रह (राहु) द्वारा ग्रसन (पीड़ा), हाथी एवं कराल विषधारी सर्पों का बन्धन तथा बुद्धिमान् मनुष्यों की निर्धनता देखकर तो यही समझा जा सकता है कि भाग्य बहुत प्रबल होता है।

व्योमैकान्तविहारिणोऽपि विहगाः सम्प्राप्नुवन्त्यापदं,
बध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलान्मत्स्याः समुद्रादपि।
दुर्नीतं किमिहास्ति किं सुचरितं कः स्थानलाभे गुणः,
कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि॥52॥

(इन्नन्त विशेषण तथा कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- व्योमैकान्तविहारिणः अपि विहगाः आपदं सम्प्राप्नुवन्ति, निपुणैः अगाधसलिलात् समुद्राद् अपि मत्स्याः बध्यन्ते। इह किं दुर्नीतम् अस्ति? किं सुचरितम्? कः स्थानलाभे गुणः? हि व्यसनप्रसारितकरः कालः दूरादपि गृह्णाति।

टिप्पणी

अनुवाद- आकाश के एक छोर में विहार करने वाले पक्षी भी विपत्तियों को प्राप्त करते हैं, अथाह जल में रहने वाली मछलियाँ भी (चतुर धीवरों द्वारा) पकड़ ली जाती हैं। ऐसी स्थिति में कौन कह सकता है कि संसार में क्या दुष्कर्म है और क्या सुकर्म? साथ ही उत्तम स्थान मिलने पर भी क्या लाभ हो सकता है? कोई नहीं। क्योंकि काल (मृत्यु) विपत्ति रूपी हाथों को फैलाकर दूर से ही जिसको चाहता है, ग्रहण कर लेता है।

इति प्रबोध्य आतिथ्यं कृत्वा आलिङ्ग्य च तेन संप्रेषितश्चित्रग्रीवोऽपि सपरिवारो यथेष्टदेशान् ययौ, हिरण्यकोऽपि स्वविवरं प्रविष्टः।

अनुवाद- इस प्रकार समझकर, अतिथि सत्कार करके परस्पर स्नेहभावपूर्वक गले मिलना आदि करके हिरण्यक ने चित्रग्रीव को विदा किया। चित्रग्रीव भी अपने साथियों के साथ अपनी अभीष्ट दिशा की ओर चला गया तथा हिरण्यक भी अपने बिल में घुस गया।

यानि कानि च मित्राणि कर्त्तव्यानि शतानि च।
पश्य मूषिकमित्रेण कपोता मुक्तबन्धनाः।।53।।

(विशेषण-विशेष्य एवं बहुव्रीहि प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वय - (मनुष्येण) यानि कानि च शतानि मित्राणि च कर्त्तव्यानि, कपोताः मूषिकमित्रेण मुक्तबन्धनाः (जाताः) पश्य।।

अनुवाद- मनुष्य को (अपने जीवन में) जिस किसी भी प्रकार के (छोटे या बड़े) सैकड़ों मित्र बनाने चाहिए। देखो, एक साधारण मित्र चूहे द्वारा सभी कबूतर बन्धन रहित हो गए।

अथ लघुपतनकनामा काकः सर्ववृत्तान्तदर्शी साश्चर्यम् इदमाह- 'अहो हिरण्यक! श्लाघ्योऽसि, अतोऽहमपि त्वया सह मैत्रीं कर्त्तुमिच्छामि, अतस्त्वं मां मैत्र्येणाऽनुग्रहीतुमर्हसि' एतच्छ्रुत्वा हिरण्यकोऽपि विवराऽभ्यन्तरादाह - 'कस्त्वम्?' स ब्रूते - लघुपतनकनामा वायसोऽहम्। हिरण्यको विहस्याऽऽह - 'का त्वया सह मैत्री'?

अनुवाद- इसके बाद लघुपतनक नामक कौआ - जो कि चित्रग्रीव और हिरण्यक की सब बातें सुन रहा था - आश्चर्यचकित होकर बोला - 'अहो हिरण्यक! तुम प्रशंसा के पात्र हो। इसलिए मैं भी तुम्हारे साथ मित्रता करना चाहता हूँ। मेरे साथ मैत्री करके मुझे अनुग्रहीत करो। यह सुनकर बिल के भीतर ही से हिरण्यक चूहे ने कहा - 'तुम कौन हो?' वह बोला - मैं लघुपतनक नामक कौआ हूँ।' हिरण्यक ने हँसकर कहा - 'तुम्हारे साथ मेरी मित्रता कैसी?'

यद् येन युज्यते लोके बुधस्तत् तेन योजयेत्।
अहमन्नं भवान् भोक्ता कथं प्रीतिर्भविष्यति।।54।।

(करणकारक-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- लोके येन यत् युज्यते, बुधः ततः तेन सह योजयेत्, अहं अन्नम् (अस्मि), भवान् भोक्ता (अस्ति), प्रीतिः कथं भविष्यति?

अनुवाद- क्योंकि - संसार में जो जिसके (साथ) जोड़ने योग्य होता है, बुद्धिमान मनुष्य उसी के साथ उसे जोड़ता है। मैं (चूहा) तुम्हारा भोजन हूँ और तुम मेरे भक्षक हो। अब तुम्हारे साथ कैसे प्रेम हो सकता है?

टिप्पणी

भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिर्विपत्तिरेव कारणम्।
शृगालात्पाशबद्धोऽसौ मृगः काकेन रक्षितः॥55॥

(षष्ठी द्विवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिर्विपत्तेः कारणं मतम्, शृगालात् पाशबद्धः असौ मृगः काकेन रक्षितः।।

अनुवाद- भक्ष्य और भक्षक की मैत्री विपत्ति का कारण बन जाती है सियार के कार्यों से पाश में बंधे हुये मृग को कौए ने बचाया।

वायसोऽब्रवीत् - 'कथमेतत्'? हिरण्यकः कथयति -

अनुवाद- कौए ने कहा - 'यह कैसे'? हिरण्यक कहता है -

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नाम अरण्यानी। तस्यां चिरात् महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः। स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टाङ्गः केनचित् शृगालेनाऽवलोकितः। तं दृष्ट्वा शृगालोऽचिन्तयत् 'आ! कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि? भवतु, विश्वासं तावदुत्पादयामि।' इत्यालोच्य उपसृत्याब्रवीत् - 'मित्र! कुशलं ते?' मृगेणोक्तम् - 'कस्त्वम्?' स ब्रूते 'क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बुकोऽहम्। अत्रारण्ये बन्धुहीनो मृतवत् एकाकी निवसामि इदानीं त्वां मित्रमासाद्य पुनः सबन्धुर्जीवलोकं प्रविष्टोऽस्मि। अधुना तवानुचरेण मया सर्वथा भवितव्यम्।' मृगेणोक्तम् - 'एवमस्तु।'

अनुवाद- मगधदेश में चम्पकवती नामक बड़ा जंगल है। उसमें बहुत समय से प्रेम के साथ कौआ एवं मृग-दोनों रहते थे। शरीर से हृष्ट-पुष्ट घूमते हुए उस मृग को किसी सियार ने देख लिया। उसे देखकर सियार ने सोचा - 'आहा! यह सुन्दर मांस कैसे खाने को मिले।' अच्छा, सर्वप्रथम इसमें विश्वास पैदा करता हूँ।' ऐसा विचार कर उसके समीप जाकर कहा - 'मित्र! कुशल से तो हो?' हिरण ने कहा - 'तुम कौन हो?' उसने कहा - 'मैं क्षुद्रबुद्धि नामक सियार हूँ। यहाँ इस जंगल में बन्धु रहित मरे हुए के समान रह रहा हूँ। अब तुम्हें मित्र के रूप में प्राप्त कर पुनः बन्धु सहित जीवलोक में प्रविष्ट हुआ हूँ। अब तुम्हारा अनुचर बनकर मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगा।' हिरण ने कहा - 'ऐसा ही हो'।

ततः पश्चादस्तङ्गते सवितरि भगवति मरीचिमालिनि तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ। तत्र चम्पकवृक्षशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्रं निवसति। तौ दृष्ट्वा काकोऽवदत् सखे चित्राङ्ग कोऽयं द्वितीयः, मृगो ब्रूते - 'जम्बुकोऽयम्। अस्मत्सख्यमिच्छन्नागतः।' काको ब्रूते - 'मित्र, अकस्मादागन्तुना सह मैत्री न युक्ता। तथा चोक्तम्-

अनुवाद- इसके पश्चात् किरणमण्डलयुक्त भगवान् सूर्य के अस्ताचल को चले जाने पर ये दोनों मृग के निवास स्थान पर गये। वहाँ चम्पक वृक्ष की शाखा पर उसका पुराना मित्र सुबुद्धि नामक कौआ रहा करता था। उन दोनों को देखकर कौए ने कहा - 'मित्र चित्राङ्ग! यह दूसरा कौन है'? मृग ने कहा - 'यह एक सियार है, मेरे साथ मित्रता करने की अभिलाषा से यहाँ आया है।' कौए ने कहा - 'मित्र! एकाएक आए हुए प्राणी के साथ मित्रता करना ठीक नहीं है। कहा भी गया है-

''अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।
मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रो जरद्गवः''॥56॥

(षष्ठी के योग में 'कृते' के अध्याहार प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- अज्ञातकुलशीलस्य कस्यचित् वासो न देयः, हि मार्जारस्य दोषेण जरद्गवः गृध्रः हतः।।

अनुवाद- जिसका कुल व शील मालूम न हो, उसे आश्रय नहीं देना चाहिए। क्योंकि बिलाव के अपराध से बूढ़ा गीध मारा गया था।

तावाहतुः - 'कथमेतत्'? काकः कथयति -

अनुवाद- उन दोनों ने कहा - 'सो कैसे?' कौआ कहने लगा।

अस्ति भागीरथीतीरे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान् पर्कटीवृक्षः। तस्य कोटरे दैवदुर्विपाकाद्गलितनखनयनो जरद्गवनामा गृध्रः प्रतिवसति। अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वऽऽहारात्किञ्चित् किंचिदुद्धृत्य तस्मै ददति, तेनाऽसौ जीवति, तेषां शावकरक्षां च करोति। अथ कदाचित् दीर्घकर्णनामा मार्जारः पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्रागतः। ततस्तमायान्तं दृष्ट्वा पक्षिशावकैर्भयार्तैः कोलाहलः कृतः। तच्छ्रुत्वा जरद्गवेन उक्तम्-कोऽयमायाति? दीर्घकर्णो गृध्रमवलोक्य सभयमाह - 'हा! हतोऽस्मि' यतोऽयं मां व्यापादयिष्यति।

अनुवाद- गंगा के तट पर, गृध्रकूट नामक पर्वत पर एक बड़ा भारी पाकड़ का वृक्ष है। उसके एक कोटर (खोखले) में जरद्गव नाम का एक गीध रहा करता था। दुर्भाग्यवश उसके नाखून तथा नेत्र गल गये थे। उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षी दया करके अपने भोजन में से थोड़ा-थोड़ा निकालकर उसे दिया करते थे। उसी से वह जीवन यापन कर रहा था तथा उनके बच्चों की रक्षा करता था। एक बार 'दीर्घकर्ण' नामक बिलाव उन पक्षियों के बच्चों को खाने की इच्छा से वहाँ आया। उसे आते देखकर पक्षियों के भयभीत बच्चों के द्वारा शोर किया गया। वह (शोर) सुनकर जरद्गव ने गम्भीर स्वर में कहा - 'कौन आ रहा है?' दीर्घकर्ण ने गृध्र को देख भय के साथ मन में कहा - हाय, हाय, मैं मारा गया, क्योंकि यह गीध मुझे मार डालेगा।

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद् यथोचितम्॥57॥

(हेतोः के योग में पञ्चमी विभक्ति प्रयोग में 'हेतोः अध्याहार-योग प्रयोग द्रष्टव्य, अन्यथा भय-योगे पञ्चमी)

अन्वयः- यावत् भयम् अनागतं (भवति) तावत् भयस्य भेतव्यम् तु भयम् आगतं वीक्ष्य, नरः यथोचितं कुर्यात्।।

अनुवाद- जब तक भय न आया हो तब तक भय से डरना चाहिए। लेकिन जब भय सामने उपस्थित हो जाए तो उसको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

अधुनास्य संनिधाने पलायितुमक्षमः। तद्यथा भवित्वयं तद्भवतु। तावद्विश्वासमुत्पाद्यास्य समीपमुपगच्छामि।' इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत् - 'आर्य, त्वामभिवन्दे।' गृधोऽवदत् - 'कस्त्वम्'। सोऽवदत् - 'मार्जारोऽहम्।' गृध्रो ब्रूते - 'दूरमपसर। नो चेद्धहन्तव्योऽसि

मया।' मार्जारोऽवदत्- 'श्रूयतां तावदस्मद्वचनम्। ततो यद्यहं वध्यस्तदा हन्तव्यः।' यतः-

टिप्पणी

अनुवाद- अब इसके समीप से भाग भी नहीं सकता अस्तु, जो होना है, हो जाए। तब तक विश्वास उत्पन्न कराकर इसके पास तो जाऊँ। ऐसा विचार कर उसके समीप जाकर कहा - आर्य! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।' गृध्र ने कहा - 'तू कौन है?' उसने कहा - 'मैं बिलाव हूँ।' गृध्र ने कहा - 'दूर हट, नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगा।' बिलाव ने कहा - 'पहले मेरी बात सुनिए, इसके बाद यदि मैं मारने योग्य होऊँ तो मार डालिए।' क्योंकि-

जातिमात्रेण किं कश्चिद् वध्यते पूज्यते क्वचित्।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत्॥58॥

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वय - (जनैः) क्वचित् कश्चित् जातिमात्रेण वध्यते पूज्यते किम्? अथवा व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्यः भवेत्।।

अनुवाद- किसी भी स्थल पर क्या कोई जाति मात्र से ही मारा जाता है या सम्मानित किया जाता है? व्यवहार को जानकर तदनुसार मारने योग्य अथवा स्तुति करने योग्य होता है।

गृध्रो ब्रूते - 'ब्रूहि किमर्थमागतोऽसि', सोऽवदत् - अहमत्र गङ्गातीरे नित्यस्नायी निरामिषाशी ब्रह्मचारी चान्द्रायणव्रतमाचरंस्तिष्ठामि। यूयं धर्मज्ञानरताः विश्वासभूमय इति पक्षिणः सर्वे सर्वदा ममाग्रे प्रस्तुवन्ति। अतो भवद्भय विद्यावयोवृद्धेभ्यो धर्मं श्रोतुमिहागतः। भवन्तश्चैतादृशा धर्मज्ञाः, यन्मामतिथिं हन्तुमुद्यताः?' गृहस्थधर्मश्च एषः-

अनुवाद- गृध्र ने कहा - 'तो बताओ, तुम यहाँ किस कार्य से आये हो?' उसने कहा - 'मैं यहाँ गङ्गा के तट पर रहकर नित्य स्नान करता हूँ। मांसादि नहीं खाता हूँ तथा ब्रह्मचर्य धारण करके चान्द्रायण व्रत कर रहा हूँ। आप धर्म सम्बन्धी ज्ञान में रुचि रखने वाले धर्मात्मा तथा विश्वास पात्र हैं - ऐसा यहाँ के सब पक्षी सदैव मेरे पास आकर कहते है। इसीलिए आप जैसे विद्वान एवं वयोवृद्ध से धर्म की बातें सुनने आया हूँ। परन्तु आप तो ऐसे धर्मज्ञ निकले कि मुझ अतिथि को भी मारने के लिए उद्यत हो गये। गृहस्थों का तो यह धर्म है कि -

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुः पार्श्वगताच्छायां नोपसंहरते द्रुमः॥59॥

(भावे सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- गृहम् आगते अरौ अपि उचितम् आतिथ्यं कार्यम्, द्रुमः पार्श्वगतात् छेत्तुः छायां न उपसंहरते।।

अनुवाद- अपने घर में आये हुये शत्रु का भी समुचित अतिथि सत्कार करना चाहिए। क्योंकि जब वृक्ष को काटने वाला भी वृक्ष के समीप पहुँचता है तो वह उसके ऊपर से अपनी छाया नहीं हटाता है।

किञ्च - यदि अन्नं नास्ति तदा सुप्रीतेनाऽपि वचसा तावदतिथिः पूज्य एव।

अनुवाद- और यदि घर में अन्न न हो तो उस समय केवल मधुर वाणी से ही अतिथि सत्कार करने योग्य है।

तथा चोक्तम्

टिप्पणी

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥60॥

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- तृणानि भूमिः उदकं चतुर्थी सुनृता वाक् च एतानि अपि सतां गेहे कदाचन न उच्छिद्यन्ते।।

अनुवाद- और कहा भी गया है कि तृणों का बनाया हुआ आसन, भूमि, जल एवं चौथी सुमधुर वाणी – ये सब अच्छे पुरुषों के घर से नष्ट नहीं होते अर्थात् सदैव उनके घर में अवश्य रहते हैं।

बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याऽभ्यागतो गुरुः॥61॥

(तव्यान्त विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- बालो वा यदि वा वृद्धः युवा वा गृहम् आगतः, तस्य पूजा विधातव्या, अभ्यागतः सर्वस्य, गुरुः।

अनुवाद- बालक, वृद्ध अथवा युवक, जो कोई भी घर पर आया हुआ अतिथि है, उसका सत्कार करना चाहिए क्योंकि अतिथि सबके लिए गुरुवत् माननीय है।

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः॥62॥

(दया-योगे सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- साधवः निर्गुणेषु अपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति, चन्द्रः चाण्डालवेश्मनः ज्योत्स्नां न हि संहरते।

अनुवाद- साधु जन निर्गुण जीवों पर भी दया करते हैं, क्योंकि चन्द्रमा चाण्डाल के घर से भी अपनी चांदनी दूर नहीं करता।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥63॥

(चतुर्थी-पञ्चमी-षष्ठी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- यस्य गृहात् अतिथिः भग्नाशः प्रति निवर्तते सः तस्मै (स्वस्य) दुष्कृतं दत्त्वा (चतस्य) पुण्यम् आदाय गच्छति।।

अनुवाद- जिसके (गृहस्थ के) घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, तो वह अतिथि उस गृहस्थ को अपना पाप देकर तथा उसके पुण्य लेकर चला जाता है।

उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः।
पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः॥64॥

(अनीयर्-प्रत्ययान्त व अन्य विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- उत्तमस्य वर्णस्य गृहं, आगतः नीचः अपि यथायोग्यं पूजनीयः, (यतः) सर्वदेवमयः अतिथिः।।

टिप्पणी

अनुवाद- श्रेष्ठ वर्ण अर्थात् ब्राह्मणादि के घर पर आया हुआ निकृष्ट वर्ण (शूद्र आदि) का भी अतिथि यथोचित सत्कार करने योग्य है क्योंकि अतिथि सभी देवताओं के सदृश पूजनीय माना गया है।

गृध्रोऽवदत्–'मार्जारो हि मांसरुचिः। पक्षिशावकाश्चात्र निवसन्ति। तेनाहमेवं ब्रवीमि।' तच्छ्रुत्वा मार्जारो भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णौ स्पृशति। ब्रूते च–'मया धर्मशास्त्रं श्रुत्वा वीतरागेणेदं दुष्करं व्रतं चान्द्रायणमध्यवसितम्। परस्परं विवदमानानामपि धर्मशास्त्राणाम् 'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यत्रैकमत्यम्।

अनुवाद- गिद्ध बोला- 'बिलाव की मांस में ही रुचि होती है और यहाँ पक्षियों के छोटे-छोटे बच्चे रहते हैं, इसलिए मैं ऐसे कहता हूँ।' यह सुन कर बिलाव ने भूमि को छूकर कानों को छुआ और बोला- 'मैंने धर्मशास्त्र सुन कर और विषयवासना को छोड़ यह कठिन चान्द्रायण व्रत किया है। आपस में धर्मशास्त्रों का विरोध होने पर भी 'हिंसा न करना यही उत्तम धर्म है' इस मंतव्य में सबका एकमत है-

यतः,-

सर्वहिंसानिवृत्ता ये नराः सर्वसहाश्च ये।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः।।65।।

(इन्नन्त व अन्य विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- ये नराः सर्वहिंसानिवृत्ताः च ये सर्वसहाः च सर्वस्य (जनस्य) आश्रयभूताः (सन्ति) ते (एव) स्वर्गगामिनः (भवन्ति)।।

अनुवाद- क्योंकि- जो मनुष्य सब प्रकार के क्रूर कृत्यों से रहित हैं, सब (असह्य) को सहते हैं और सबको सहारा देते हैं वे ही स्वर्ग को जाते हैं।।65।।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति।।66।।

('समम्' योगे तृतीया प्रयोग व कर्मकारक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- एक सुहृद्-धर्मः एव यः निधने अपि अनुयातिः, सर्वम् अन्यत् तु शरीरेण समं नाशं गच्छति।।

अनुवाद- एक धर्म ही मित्र है जो मरने पर भी (आत्मा के) साथ जाता है, अन्य सब वस्तुएं शरीर के साथ (यहां) ही नष्ट हो जाती हैं।।

योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयोः पश्यतान्तरम्।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्विमुच्यते।।67।।

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- यः यस्य मांसम् अत्ति, उभयोः अन्तरं पश्यत; एकस्य क्षणिका प्रीतिः (भवति) अन्यः प्राणैः विमुच्यते।।

अनुवाद- जो प्राणी जिस समय, जिस प्राणीका मांस खाता है उन दोनों में अंतर देखो- एक की तो केवल क्षण भर की तृप्ति होती है और दूसरा प्राणों से जाता है।।

मर्तव्यमिति यद्दुःखं पुरुषस्योपजायते।
शक्यते नानुमानेन परेण परिवर्णितुम्।।68।।

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- मर्तव्यम् इति पुरुषस्य यद् दुःखम् उपजायते, परेण (तत्) अनुमानेन परिवर्णितुं न शक्यते।।

अनुवाद- 'मुझे अवश्य मरना होगा' ऐसी चिन्ता से मनुष्य को जो (प्रत्यक्ष) दुःख होता है वह दुःख (केवल) अनुमान से दूसरा मनुष्य वर्णन नहीं कर सकता है।।

शृणु पुनः-

स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनापि प्रपूर्यते।
अस्य दग्धोदरस्यार्थे कः कुर्यात्पातकं महत्?।।69।।

(कर्मवाच्य तथा 'अर्थे' प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- स्वच्छन्द वनजातेन शाकेन अपि (यत्) प्रपूर्यते, अस्य दग्धोदरस्य अर्थे कः महत् (हिंसात्मकं) पापंकुयत्।।

अनुवाद- फिर सुनो- जो पेट अपने आप उगी हुई हरी सब्जियों से भी भरा जा सकता है, उस जले पेट के लिए ऐसा बड़ा (जीवहिंसा का) पाप कौन करे?

एवं विश्वास्य स मार्जारस्तरुकोटरे स्थितः।

अनुवाद- इस प्रकार विश्वास पैदा कर वह बिलाव वृक्ष के खोखल में रहने लगा।

ततो दिनेषु गच्छत्सु पक्षिशावकानाक्रम्य कोटरमानीय प्रत्यहं खादति। येषामपत्यानि खादितानि तैः शोकार्तैर्विलपद्भिरितस्ततो जिज्ञासा समारब्धा। तत्परिज्ञाय मार्जारः कोटरान्निःसृत्य बहिः पलायितः। पश्चात्पक्षिभिरितस्ततो निरूपयद्भिस्तत्र तरुकोटरे शावकास्थीनि प्राप्तानि। अनन्तरं त ऊचुः–"अनेनैव जरदन्वेनास्माकं शावकाः खादिताः" इति सर्वैः पक्षिभिर्निश्चत्य गृध्रो व्यापादितः। अतोऽहं ब्रवीमि-"अज्ञातकुलशीलस्य-" इत्यादि'।। इत्याकर्ण्य स जम्बुकः सकोपमाह–'मृगस्य प्रथमदर्शनदिने भवानप्यज्ञातकुलशील एव, तत्कथं भवता सहैतस्य स्नेहानुवृत्तिरुत्तरोत्तरं वर्धते?

अनुवाद- और थोड़े दिन बीत जाने पर वह पक्षियों के बच्चों को पकड़कर कोटर में लाकर नित्य खाने लगा। जिन पक्षियों के बच्चे खाए गए थे वे शोक से व्याकुल होकर रोते हुए इधर-उधर ढूंढने लगे। बिलाव यह जान कर कोटर से निकल कर बाहर भाग गया। उसके पीछे इधर-उधर ढूँढ़ते हुए पक्षियों ने उस पेड़ की खोखल में बच्चों की हड्डियाँ पाईं। फिर उन्होंने कहा कि- 'इस जरद्गव ने ही हमारे बच्चे खाये हैं'। यह बात सब पक्षियों ने निश्चय करके उस बूढ़े गिद्ध को मार डाला। इसीलिए मैं कहता हूँ कि– 'जिसका कुल और स्वभाव' इत्यादि'। यह सुन वह सियार क्रोधपूर्वक बोला- 'मृग से पहले ही मिलने के दिन तुम्हारे भी तो कुल और स्वभाव को नहीं जाना गया था, फिर किस प्रकार तुम्हारे साथ इसकी गाढ़ी मित्रता क्रम-क्रम से बढ़ती जाती है?

टिप्पणी

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते॥70॥

(नामधातु प्रयोग व अधिकरण-कारक प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- यत्र विद्वज्जनः न अस्ति तत्र अल्पधीः अपि श्लाघ्यः अस्ति (यथा) निरस्तपादपे देशे एरण्डः अपि द्रुमायते॥

अनुवाद- जहां विद्वान नहीं होता है वहां थोड़े पढ़े की भी बड़ाई होती है (अन्धों में काना राजा होता है)। जैसे कि जिस स्थान में दूसरे पेड़ नहीं होते हैं वहां अरण्डी का वृक्ष ही पेड़ गिना जाता है॥

अन्यच्च,-

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥71॥

(सम्बन्ध-प्रयोगः बहुवचने द्रष्टव्यः)

अन्वयः- अयं निजः वा (अयं) परः इति गणना लघुचेतसां (भवति) उदारचरितानां तु वसुधा एव कुटुम्बकम् (अस्ति)।

अनुवाद- और दूसरे

यह अपना है या पराया है, यह अल्पबुद्धियों की गिनती (समझ) है। विशाल हृदय वालों के लिए तो समस्त पृथ्वी ही कुटुंब है॥

यथायं मृगो मम बन्धुस्तथा भवानपि'। मृगोऽब्रवीत्-'किमनेनोत्तरेण? सर्वैरेकत्र विश्रम्भालापैः सुखिभिः स्थीयताम्।

अनुवाद- जैसा यह मृग मेरा बन्धु (दोस्त) है वैसे ही तुम भी हो।' मृग बोला- 'इस उत्तर-प्रत्युत्तर से क्या है? सब एक स्थान में विश्वास की बातचीत कर सुख से रहो।

यतः-

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः।
व्यवहारेण जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा॥72॥

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- न कश्चित् कस्यचित् मित्रं, न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः। मित्राणि तथा रिपवः (तु) व्यवहारेण जायन्ते॥

अनुवाद- क्योंकि- न तो कोई किसी का मित्र है, और न कोई किसी का शत्रु है। व्यवहार से मित्र तथा शत्रु बन जाते हैं'॥

काकेनोक्तम्-'एवमस्तु।' अथ प्रातः सर्वेयथाभिमतदेशं गताः।

अनुवाद- कौवे ने कहा- 'ठीक है'। फिर प्रातःकाल सब अपने-अपने मनमाने देश को गये।

एकदा निभृतं शृगालो ब्रूते-'सखे! अस्मिन्वनैकदेशे शस्यपूर्णक्षेत्रमस्ति। तदहं त्वां नीत्वा दर्शयामि।' तथा कृते सति मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा शस्यं खादति। अथ क्षेत्रपतिना तदृष्टा पाशोयोजितः। अनन्तरं पुनरागतो मृगः पाशैर्बद्धोऽचिन्तयत्-'को

मामितः कालपाशादिव व्याधपाशात्त्रातुं मित्रादन्यः समर्थः? अत्रान्तरे जम्बुकस्तत्रागत्योपस्थितोऽचिन्तयत्-'फलिता तावदस्माकं कपटप्रबन्धेन मनोरथसिद्धिः। एतस्योत्कृत्यमानस्य मांसासृग्लिप्तान्यस्थीनि मयावश्यं प्राप्तव्यानि। तानि बाहुल्येन भोजनानि भविष्यन्ति।' मृगस्तं दृष्ट्वोल्लसितो ब्रूते–'सखे! छिन्धि तावन्मम बन्धनम्, सत्वरं त्रायस्व माम्।

टिप्पणी

अनुवाद- एक दिन एकांत में सियार ने कहा- 'मित्र मृग! इस वन में एक दूसरे स्थान में अनाज से भरा हुआ खेत है, सो चल तुझे दिखाऊँ'। वैसा करने पर मृग वहां जा कर नित्य अनाज खाता रहा। एक दिन उसे खेत वाले ने देख कर फंदा लगाया। इसके अनन्तर जब वहाँ मृग फिर चरने को आया तभी जाल में फंस गया और सोचने लगा- 'मुझे इस काल की फांसी के समान शिकारी के बन्धन से मित्र को छोड़कर कौन बचा सकता है?' इस बीच में शृगाल वहाँ आकर उपस्थित हुआ और सोचने लगा- 'मेरे छल की चाल (सफाई) से मेरा मनोरथ सफल हुआ और इसकी खाल उतारने के बाद मांस और लहू लगी हुई हड्डियाँ मुझे अवश्य मिलेंगी और वे मनमानी खाने के लिए होंगी'। मृग उसे देख प्रसन्न होकर बोला–'हे मित्र! मेरा बन्धन काटो और मुझे शीघ्र बचाओ।

यतः,-

आपत्सु मित्रं जानीयाद्युद्धे शूरमृणे शुचिम्।
भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान्॥73॥

(भावे सप्तमी तथा अन्य सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- आपत्सुमित्रं, युद्धे शूरम्, ऋणे शुचिम्, क्षीणेषु वित्तेषु भार्यां, च व्यसनेषु बान्धवान् जानीयात्।।

अनुवाद- विपत्तिग्रस्त होने पर मित्र, युद्ध में शूर, उधार (ऋण) में सच्चा व्यवहार, निर्धनतमा में स्त्री और दुःख में भाई (या कुटुंबी) परखे जाते हैं।।

अपरं च,-

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः॥74॥

(अधिकरण कारक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- उत्सवे, व्यसने च दुर्भिक्षे, राष्ट्रविप्लवे, राजद्वारे च श्मशाने यः तिष्ठति सः एवबान्धवः (भवति)।।

अनुवाद- और दूसरे-

विवाहादि उत्सव में, आपत्ति में, अकाल में, राज्य के पलटने में, राजद्वार में तथा श्मशान में, जो साथ रहता है वह बान्धव है'।।

जम्बुको मुहुर्मुहुः पाशं विलोक्याचिन्तयत्–'दृढस्तावदयं बन्धः।' ब्रूते च–'सखे! स्नायुनिर्मिता एते पाशाः। तदद्य भट्टारकवारे कथमेतान्दन्तैः स्पृशामि? मित्र! यदि चित्ते नान्यथा मन्यसे तदा प्रभाते यत्त्वया वक्तव्यं तत्कर्तव्यम्।' इत्युक्त्वा तत्समीप आत्मानमाच्छाद्य स्थितः सः। अनन्तरं स काकः प्रदोषकाले मृगमनागतमवलोक्येतस्ततोऽन्विष्य तथाविधं दृष्टोववाच–'सखे! किमेतत्?'। मृगेणोक्तम्-'अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य फलमेतत्।

टिप्पणी

अनुवाद- सियार जाल को बार-बार देख सोचने लगा- 'यह बड़ा मज़बूत बंधन है' और बोला- 'मित्र! ये फंदे तांत के बने हुए हैं, इसलिए आज रविवार के दिन इन्हें दांतों से कैसे छूऊं? मित्र जो बुरा न मानो तो प्रातःकाल जो कहोगे सो करूँगा'। ऐसा कह कर उसके पास ही वह अपने को छिपा कर बैठ गया। इसके बाद वह कौवा सांझ होने पर मृग को देखने आया देख कर इधर-उधर ढूंढ़ते हुए उस प्रकार उसे (बंधन में) देख कर बोला- मित्र! यह क्या है?' मृग ने कहा- मित्र का वचन नहीं मानने का फल है।

तथा चोक्तम्,-

सुहृदां हितकामानां यः शृणोति न भाषितम्।
विपत्संनिहिता तस्य स नरः शत्रुनन्दनः।।75।।

(समीपार्थे षष्ठी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- यः हितकामानां सुहृदां भाषितं न शृणोति, तस्य विपत् सन्निहिता (तिष्ठति), (च) सः नरः शत्रुनन्दनः भवति।।

अनुवाद- कहा भी गया है कि- जो मनुष्य अपने हितकारी मित्रों का वचन नहीं सुनता है उसके पास ही विपत्ति आती है और वह अपने शत्रुओं को प्रसन्न करने वाला होता है'।।

काको ब्रूते-'स वञ्चकः क्वास्ते?'। मृगेणोक्तम्-'मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव'। काको ब्रूते-'उक्तमेव मया पूर्वम्,-

अनुवाद- कौवा बोला-'वह छलकपटी कहां है?' मृग ने कहा- 'मेरे मांस का लोभी यहीं बैठा है।'. कौवा बोला- 'मैंने पहले ही कहा था,-

अपराधो न मेऽस्तीति नैतद्विश्वासकारणम्।
विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि।।76।।

(भीत्रार्थानां भयहेतुः पञ्चमी बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- मे अपराधः न अस्ति इति विश्वासकारणं न भवति। गुणवताम् अपि नृशंसेभ्यः भयं हि विद्यते।।

अनुवाद- 'मेरा कुछ अपराध नहीं है' अर्थात मैंने इसका कुछ नहीं बिगाड़ा है, अतएव यह भी मेरे संग विश्वासघात न करेगा, यह बात कुछ विश्वास का कारण नहीं है। क्योंकि गुण और दोष को बिना सोचे शत्रुता करने वाले दुष्टों से सज्जनों को अवश्य भय होता ही है।।

दीपनिर्वाणगन्धं च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः।।77।।

(यथाक्रम लट् लकार प्र.पु. बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- दीपनिर्वाणगन्धं, सुहृद्वाक्यं च अरुन्धतीम् गतायुषः (जनाः) न जिघ्रन्ति, न शृण्वन्ति (च) न पश्यन्ति।।

अनुवाद- और जिनकी मृत्यु पास आ गई है, ऐसे मनुष्य न तो बुझते हुए दीपक की चिरांध सूंघ सकते हैं, न मित्र का वचन सुनते हैं और न अरुन्धती नामक तारे को देख सकते हैं।।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।78।।

(कर्मकारक व विधिलिङ् प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- परोक्षेकार्यहन्तारं, प्रतयक्षेप्रियवादिनम्, तादृशं विषकुम्भं च पयोमुखं मित्रं वर्जयेत्।।

अनुवाद- पीठ पीछे काम बिगाड़ने वाले और मुख पर मीठी-मीठी बातें करने वाले मित्र को, मुख पर दूध वाले विष के घड़े के समान छोड़ देना चाहिए।।

ततः काको दीर्घे निःश्वस्य 'अरे वञ्चक! किं त्वया पापकर्मणा। कृतम्?

अनुवाद- कौवे ने लंबी सांस भर कर कहा कि- 'अरे छलकपटी! तुझ पापी ने यह क्या किया?

यतः,-

संलापितानां मधुरैर्वचोभि-
र्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम्।
आशावतां श्रद्दधतां च लोके
किमर्थिनां वञ्चयितव्यमस्ति?।।79।।

(विविध षष्ठी बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- लोके मधुरैः वचोभिः संलापितानां, मिथ्योपचारैः च वशीकृतानां, आशावतां च श्रद्दधतां अर्थिनां वञ्चयितव्यं किम् (अवशिष्टम्) अस्ति।।

अनुवाद- क्योंकि संसार में अच्छे प्रकार से बोलने वालों को, मीठे-मीठे वचनों तथा मिथ्या कपट से वश में किए हुओं को, आशा रखने वालों को, भरोसा रखने वालों को और धन के याचकों को धोखा देना क्या बड़ी बात है?

उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्यसंधं भगवति वसुधे! कथं वहसि?।।80।।

(स्त्रीलिङ्ग सम्बोधन तथा सप्तमी विभक्ति नियम प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- उपकारिणि, विश्रब्धे (च) शुद्धमतौ (जनै) यः पापं समाचरति, भगवति वसुधे! तं असत्यसन्धं जनं कथं वहसि?

अनुवाद- हे पृथ्वी! जो मनुष्य उपकारी, विश्वासी तथा भोले भाले मनुष्य के साथ ठगाई करता है उस ठग पुरुष को हे भगवति पृथ्वी! तू कैसे धारण करती है?

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्।।81।।

(समं योगे तृतीया तथा नामधातु प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- दुर्जनेन समं सख्यं च प्रीतिम् अपि न कारयेत् (यतः) उष्णः अङ्गारः दहति च शीतःअङ्गारःकरं कृष्णायते।।

अनुवाद- दुष्ट के साथ मित्रता और प्रीति नहीं करनी चाहिए क्योंकि गरम अंगारा हाथ को जलाता है और ठंडा हाथ को काला कर देता है।।

अथवा स्थितिरयं दुर्जनानाम्-

टिप्पणी

अनुवाद- अथवा दुर्जनों का यही आचरण है-

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति।।82।।

(विभिन्न लट् लकार प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- (मशकः) प्राक् पादयोः पतति, पृष्ठमांसं खादति, कर्णे किमपि विचित्रं कलं शनैः रौति, (च) छिद्रं निरूप्य सहसा अशङ्कः (भूत्वा) प्रविशति (एवं) मशकः खलस्य सर्वं चरितं करोति।।

अनुवाद- मच्छर, दुष्ट के समान सब चरित्र करता है, अर्थात जैसे दुष्ट पहले पैरों पर गिरता है वैसे ही यह भी गिरता है। जैसे दुष्ट पीठ पीछे निन्दा करता है वैसे ही यह भी पीठ में काटता है। जैसे दुष्ट कान के पास मीठी-मीठी बात करता है वैसे ही यह भी कान के पास मधुर विचित्र शब्द करता है और जैसे दुष्ट आपत्ति को देख कर निडर हो बुराई करता है वैसे ही मच्छर भी छिद्र अर्थात् रोम के छेद में प्रवेश कर काटता है।।

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम्।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम्।।83।।

(सप्तमी विभक्ति प्रयोग द्वय द्रष्टव्य)

अन्वयः- दुर्जनः च प्रियवादी एतत् विश्वासस्य कारणं न (अस्ति), (तस्य) जिह्वाग्रेमधुतिष्ठति, हृदि (च) हालाहलंविषम्।।

अनुवाद- और दुष्ट मनुष्य का प्रियवादी होना यह विश्वास का कारण नहीं है। उसकी जीभ के आगे मिठास और हृदय में हालाहल विष भरा है'।।

अथ प्रभाते क्षेत्रपतिर्लगुडहस्तस्तं प्रदेशमागच्छन् काकेनावलोकितः। तमालोक्य काकेनोक्तम्-'सखे मृग! त्वामात्मानं मृतवत्संदर्श्य वातेनोदरं पूरयित्वा पादान्स्तब्धीकृत्य तिष्ठ। यदाहं शब्दं करोमि तदा त्वमुत्थाय सत्वरं पलायिष्यसि।' मृगस्तथैव काकवचनेन स्थितः। ततः क्षेत्रपतिना हर्षोत्फुल्ललोचनेन तथाविधो मृग आलोकितः। 'आः, स्वयं मृतोऽसि' इत्युक्त्वा मृगं बन्धनान्मोचयित्वा पाशान्ग्रहीतुं सयत्नो बभूव। ततः काकशब्दं श्रुत्वा मृगः सत्वरमुत्थाय पलायितः। तमुद्दिश्य तेन क्षेत्रपतिना क्षिप्तेन लगुडेन शृगालो हतः।

अनुवाद- इसके बाद प्रातःकाल होने पर कौवे ने उस खेत वाले को लाठी हाथ में लिए उस स्थान पर आता हुआ देखा। उसे देख कर कौवे ने मृग से कहा-'मित्र हरिण! तू अपने शरीर को मरे के समान दिखा कर पेट को हवा से फुला कर और पैरों को ठिठिया कर लेट जा। जब मैं शब्द करूं तब तू झट उठ कर जल्दी भाग जाना'। मृग उसी प्रकार कौवे के वचन से पड़ गया! तब खेत वाले ने प्रसन्नता से आँख फैला कर उस मृग को इस प्रकार देखा। 'आहा! यह तो आप ही मर गया' ऐसा कह कर मृग के बंधन को खोल कर जाल को समेटने का यत्न करने लगा, तभी कौवे का शब्द सुन कर मृग तुरंत उठ कर भाग गया।

इसको लक्ष्य बनाकर उस खेत वाले ने ऐसी फेंक कर लकड़ी मारी कि उससे सियार मारा गया।

तथा चोक्तम्-

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते॥84॥

('त्रि' संख्यापद के तृतीया विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- त्रिभिःवर्षैः, त्रिभिःमासैः (अथवा) त्रिभिःदिनैः अत्युत्कटैः पापैः (च) पुण्यैः, इह एव (जनः) फलम् अश्नुते।।

अनुवाद- जैसा कहा है-

प्राणी तीन वर्ष, तीन मास, तीन पक्ष और तीन दिन में बहुत अधिक (बेहद) पाप और पुण्य का फल यहां ही भोगता है।।

अतोऽहं ब्रवीमि–"भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिः" इत्यादि'॥

अनुवाद- इसीलिए मैं कहता हूं- "भोजन और भोजन करने वाले की प्रीति" इत्यादि'।

काकः पुनराह–

'भक्षितेनापि भवता नाहारो मम पुष्कलः।
त्वयि जीवति जीवामि चित्रग्रीव इवानघ! ॥85॥

(तृतीयान्त विशेषण-विशेष्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- भवता भक्षितेन अपि मम पुष्कलः आहारः न (भविष्यति)। अनघ! चित्रगीव इव त्वयि जीवति जीवामि।।

अनुवाद- फिर कौवा बोला- 'तुझे खा लेने से भी तो मेरा बहुत भोजन नहीं होगा। मैं निष्कपट चित्रग्रीव के समान तेरे जीने से जीता रहूंगा।।

अन्यञ्च,–

तिरश्चामपि विश्वासो दृष्टः पुण्यैककर्मणाम्।
सतां हि साधुशीलत्वात्स्वभावो न निवर्तते॥86॥

(चकारान्त व नकारान्त षष्ठी बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- पुण्यैककर्मणां तिरश्चाम् अपि (परस्परम्) विश्वासः दृष्टः (भवति) साधुशीलत्वात् सतां स्वभावो न निवर्तते।।

अनुवाद- और भी-

पुण्यात्मा मृग-पक्षियों का भी (परस्पर) विश्वास देखा जाता है; क्योंकि, पुण्य ही करने वाले सज्जनों का स्वभाव सज्जनता के कारण कभी नहीं परिवर्तित होता है।।

किंच,–

साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम्।
न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया।'॥87॥

(शक्यार्थ में तुमुन्-प्रयोग व करण कारक प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- प्रकोपितस्य साधोः मनः विक्रियतां न आयाति (यथा) सागराम्भः तृणोल्कया तापयितुं नहि शक्यः।।

अनुवाद- और -

टिप्पणी

चाहे जैसे क्रोध में क्यों न हो सज्जन का स्वभाव कभी परिवर्तित न होगा, जैसे (जलते हुए) तिनकों की आंच से समुद्र का जल कौन गरम कर सकता है?

हिरण्यको ब्रूते-'चपलस्त्वम्। चपलेन सह स्नेहः सर्वथा न कर्तव्यः।

अनुवाद- हिरण्यक ने कहा- 'तू चंचल है। ऐसे चंचल के साथ स्नेह कभी नहीं करना चाहिए।

तथा चोक्तम्,–

मार्जारो महिषो मेषः काकः कापुरुषस्तथा।
विश्वासात्प्रभवन्त्येते विश्वासस्तत्र नोचितः।।88।।

(हेतु-योगे पञ्चमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- मार्जारः, महिषः, मेषः, काकः तथा कापुरुषः, एते विश्वासात् प्रभवन्ति, तत्र विश्वासः उचितः न (भवति)।।

अनुवाद- जैसा कहा है कि-

बिल्ली, भैंसा, भेड़, काक और ओछा (नीच) आदमी, ये विश्वास करने से अपनी प्रभुता दिखाते हैं, इसलिए इन पर विश्वास करना उचित नहीं है।।

किं चान्यत्, शत्रुपक्षो भवानस्माकम्।

अनुवाद- और दूसरा-तुम मेरे शत्रुओं के पक्ष के हो।

उक्तं चैतत्,–

शत्रुणा न हि संदध्यात् सुश्लिष्टेनापि संधिना।
सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम्।।89।।

(सह-योगे तृतीया प्रयोग- 'सह' अध्याहार अर्थ में द्रष्टव्य)

अन्वयः- सुश्लिष्टेन अपि शत्रुणा सन्धिना नहि सन्दध्यात् (यतः) पानीयं सुतप्तम् अपि पावकं शमयति एव।।

अनुवाद- और यह कहा है कि-

शत्रु चाहे जितना मीठा बन कर मेल करे परंतु उसके साथ मेल न करना चाहिए, क्योंकि पानी चाहे जितना भी गरम हो आग को बुझा ही देता है।।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ।।90।।

(करणकारक प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- विद्यया अलङ्कृतः अपि सन् दुर्जनः परिहर्तव्यः, किं मणिना भूषितः सर्पः भयङ्करः न (भवति)।।

अनुवाद- दुर्जन विद्यावान् भी हो परंतु उसे छोड़ देना चाहिए, क्योंकि रत्न से शोभायमान सर्प क्या भयंकर नहीं होता है?

यदशक्यं न तच्छक्यं यच्छक्यं शक्यमेव तत्।
नोदके शकटं याति न च नौर्गच्छति स्थले॥91॥

(अधिकरण-कारक प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- यत् अशक्य तत् न शक्यम्, यत् शक्यं तत् एव शक्यम् (यथा) उदके शकटं न याति च नौः स्थले न गच्छति॥

अनुवाद- जो बात नहीं हो सकती है वह कदापि नहीं हो सकती है और जो हो सकती है वही हो ही सकती है; जैसे पानी पर गाड़ी नहीं चलती और जमीन पर नाव नहीं चल सकती है॥

अपरं च,–

महताप्यर्थसारेण यो विश्वसिति शत्रुषु।
भार्यासु च विरक्तासु तदन्तं तस्य जीवनम्'॥92॥

(विश्वस् योगे सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- यः महता अर्थसारेण अपि शत्रुषु विश्वसिति, विरक्तासु भार्यासु च (विश्वसिति) तस्य जीवनं तदन्तम्॥

अनुवाद- और दूसरे

जो मनुष्य अधिक प्रयोजन से शत्रुओं और कुलचारिणी स्त्रियों पर विश्वास करता है, उसके जीने का अंत आ पहुंचा है (मृत्यु संनिकट है)'॥

लघुपतनको ब्रूते–'श्रुतं मया सर्वम्। तथापि मम चैतावान्संकल्पः-'त्वया सह सौहृद्यमवश्यं करणीयम्' इति। नो चेदनाहारेणात्मानं व्यापादयिष्यामि।

अनुवाद- लघुपतनक कौवा बोला- 'मैंने सब सुन लिया, तो भी मेरा इतना निश्चय है कि तेरे संग मित्रता अवश्य करनी चाहिए नहीं तो भूखा रहकर आत्महत्या करूँगा।

तथा हि,-

मृद्घटवत् सुखभेद्यो दुःसंधानश्च दुर्जनो भवति।
सुजनस्तु कनकघटवद्दुर्भेद्यश्चाशु संधेयः॥93॥

(तुल्यार्थे 'वत्' प्रत्यय प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- दुर्जनः मृद्घटवद् सुखभेद्यः दुःसन्धानः च भवति (परम्) सुजनः तु कनकघटवद् दुर्भेद्यः च आशु सन्धेयः (भवति)॥93॥

अनुवाद- और देखिए-

दुर्जन मनुष्य मिट्टी के घड़े के समान सहज टूट सकता है और फिर उसका जुड़ना कठिन है और सज्जन सोने के घड़े के समान है कि कभी टूट नहीं सकता और जो टूटे भी तो शीघ्र जुड़ सकता है॥

किंच,–

द्रवत्वात्सर्वलोहानां निमित्तान्मृगपक्षिणाम्।
भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां संगतं दर्शनात्सताम्॥94॥

(हेतु-अर्थ में पञ्चमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- सर्वलोहानां द्रवत्वात्, मृगपक्षिणां निमित्तात्, मूर्खाणां भयलोभात् च सतां दर्शनात् सङ्गतम् (भवति)।।

अनुवाद- और

टिप्पणी

सोना, चांदी आदि धातुओं का गलाने से, पशुपक्षियों का पूर्वजन्म के संस्कार से, मूर्खों का भय और लोभ से और सज्जनों का केवल दर्शन से ही मेल होता है।।

किंच,–

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः।।95।।

(कर्मवाच्य प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- सुहृज्जना नारिकेलसमाकाराः हि दृश्यन्ते, अन्ये बदरिकाकाराः बहिः एव मनोहराः (दृश्यन्ते)।।

अनुवाद- और -

सज्जन पुरुष नारियल के समान बाहर से कठोर दिखाई देते हैं अर्थात् ऊपर से सख्त और भीतर से मीठे और दुर्जन बेरफल के आकार के समान बाहर ही से मनोहर होते हैं।।

स्नेहच्छेदेऽपि साधूनां गुणा नायान्ति विक्रियाम्।
भङ्गेऽपि हि मृणालानामनुबध्नन्ति तन्तवः।।96।।

(भावे-सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- साधूनां गुणाः स्नेहच्छेदे अपि विक्रियाम् न आयान्ति, मृणालानां भङ्गे अपि (तेषां) तन्तवः अनुबध्नन्ति।।

अनुवाद- स्नेह टूट जाये तो भी सज्जनों के गुण नहीं बदलते हैं, जैसे कमल की डंडी के टूटने पर भी उसके तंतु जुड़े ही रहते हैं।।

अन्यच्च,–

शुचित्वं त्यागिता शौर्यं सामान्यं सुखदुःखयोः।
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणाः।।97।।

(त्व-तल्-प्रत्यय प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- शुचित्वं, त्यागिता, शौर्यं, सुखदुःखयोः सामान्यं च दाक्षिण्यं च अनुरक्तिः च सत्यता (एते) सुहृद्गुणाः (सन्ति)।।

अनुवाद- और दूसरे-

पवित्रता अर्थात् निष्कपटता, दानशीलता, पराक्रमशीलता, सुख-दुख में समानता, अनुकूलता, प्रीति और सत्यता ये मित्रों के गुण हैं।।97।।

एतैर्गुणैरुपेतो भवदन्यो मया कः सुहृत्प्राप्तव्यः?' इत्यादि तद्वचनमाकर्ण्य हिरण्यको बहिर्निःसृत्याह–'आप्यायितोऽहं भवतामनेन वचनामृतेन।

अनुवाद- इन गुणों से युक्त तुम्हें छोड़ और किसको मित्र पाऊंगा' उसकी ऐसी (मीठी) बातें सुन कर हिरण्यक बाहर निकल कर बोला- 'तुम्हारे वचन रूपी अमृत से मैं सन्तुष्ट हुआ;

टिप्पणी

तथा चोक्तम्,–

घर्मार्ते न तथा सुशीतलजलैः स्नानं न मुक्तावली
न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यङ्गमप्यर्पितम्।
प्रीत्या सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायो यथा चेतसः
सद्युक्त्या च पुरस्कृतं सुकृतीनामाकृष्टिमन्त्रोपमम्॥98॥

(विविध तृतीया विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- न सुशीतलजलैः स्नानं, न मुक्तावली, (च) न श्रीखण्डविलेपनं घर्मार्ते प्रत्यङ्गम् अर्पितं तथा चेतसः सुखयति यथा प्रायः सुकृतीनाम् आकृष्टिमन्त्रोपमम् च सद्-युक्त्या पुरस्कृतं प्रीत्या सज्जनभाषितं प्रभवति।।

अनुवाद- जैसा कहा है कि- सुन्दर-सुन्दर युक्तियों से शोभायमान, पुण्यात्माओं के आकर्षण मंत्र के समान प्रीति से कहा हुआ सज्जनों का वचन जैसा चित्त को अत्यन्त सुखकारी होता है वैसा शीतल जल से स्नान, मोतियों की माला और अंग-अंग में लगा हुआ लेपन किया हुआ चंदन भी धूप से संतप्त हुए को सुख नहीं देता है।।

अन्यञ्च,–

रहस्यभेदो याञ्चा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता।
क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम्॥99॥

(भावार्थे 'य' और 'तल्' प्रत्यय प्रयोग)

अन्वयः- रहस्यभेदः, याञ्चा, नैष्ठुर्यं, चलचित्तता, क्रोधः, निःसत्यता च द्यूतम् एतत् (सर्वम्) मित्रस्य दूषणम् (अस्ति)।।

अनुवाद- और दूसरे-

गुप्त बात को प्रकट करना, धन आदि की याचना, कठोरता, चित्त की चंचलता, क्रोध, झूठ और जुआ, ये मित्र के दोष हैं।।

अनेन वचनक्रमेण तदेकमपि दूषणं त्वयि न लक्ष्यते।

अनुवाद- सो तुम्हारी बातों के ढंग से उनमें से एक भी दोष तुम में नहीं दिखाई देता है।

यतः,–

पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते।
अस्तब्धत्वमचापल्यं प्रत्यक्षेणावगम्यते॥100॥

(भावार्थे 'त्व' प्रत्यय प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- पटुत्वं (च) सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते, अस्तब्धत्वम् (च) अचापल्यं प्रत्यक्षेण अवगम्यते।।

अनुवाद- क्योंकि-

चातुर्य और सत्य ये बातचीत से जान लिए जाते हैं और नम्रता और शांतता ये प्रत्यक्ष जानी जाती हैं।।

टिप्पणी

अपरं च,–

अन्यथैव हि सौहार्दे भवेत्स्वच्छान्तरात्मनः।
प्रवर्ततेऽन्यथा वाणी शाठ्योपहतचेतसः॥101॥

(हलन्त शब्द में षष्ठी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- स्वच्छान्तरात्मनः च शाठ्योपहहचेतसः वाणी सौहार्दे अन्यथा हि प्रवर्तते॥

अनुवाद- और दूसरे-

निष्कपट चित्त वाले की मित्रता अन्य ही तरह की होती है और जिसका हृदय छलकपट से बिगड़ रहा है उसकी वाणी और ही प्रकार की होती है॥

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत् कार्यमण्यदुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्॥102॥

(सकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों में सप्तमी एकवचन के प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- दुरात्मनां मनसि अन्यत् वचसि अन्यत् (च) कर्मणि अन्यत् (आचरणं भवति परं) महात्मनां मनसि एकम् वचसि एकम् (च) कर्मणि (अपि) एकम् (आचरणं भवति)॥

अनुवाद- दुर्जनों के मन में कुछ, वचन में और काम में कुछ और सज्जनों के हृदय में वाणी में और काम में एक ही बात होती है॥

तद्भवतु भवतोऽभिमतमेव।' इत्युक्त्वा हिरण्यको मैत्र्यं विधाय भोजनविशेषैर्वायसं संतोष्य विवरं प्रविष्टः। वायसोऽपि स्वस्थानं गतः। ततः प्रभृति तयोरन्योन्याहारप्रदानेन कुशलप्रश्नैर्विश्रम्भालापैश्च कालोऽतिवर्तते।

अनुवाद- इसलिए तेरा ही मनोरथ हो।' यह कह कर हिरण्यक मित्रता करके विविध प्रकार के भोजन से कौवे को संतुष्ट करके बिल में घुस गया और कौवा भी अपने स्थान को चला गया। उस दिन से उन दोनों का आपस में भोजन के देने-लेने से, कुशल पूछने से और विश्वास युक्त बातचीत से समय कटने लगा।

एकता लघुपतनको हिरण्यकमाह–'सखे! कष्टतरलभ्याहारमिदं स्थानं परित्यज्य स्थानान्तरं गन्तुमिच्छामि।' हिरण्यको ब्रूते-'मित्र! क्व गन्तव्यम्?

अनुवाद- एक दिन लघुपतनक ने हिरण्यक से कहा-'मित्र! इस स्थान में बड़ी कठिनाई से भोजन मिलता है, इसलिए इस स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान में जाना चाहता हूं'। हिरण्यक ने कहा-'मित्र! कहां जाओगे?'

तथा चोक्तम्,–

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्।
नाऽसमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्'॥103॥

(संख्यात्मक विशेषण-विशेष्य व विधिलिङ् लकार प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- बुद्धिमान् एकेन पादेन चलति (च) एकेन (पादेन) तिष्ठति (अतः) परं स्थानम् असमीक्ष्य पूर्वम् आयतनं न त्यजेत्॥

अनुवाद- ऐसा कहा है कि-

बुद्धिमान् एक पैर से चलता है और दूसरे से ठहरता है। इसलिए दूसरा स्थान निश्चय किए बिना पहला स्थान नहीं छोड़ना चाहिए॥

वायसो ब्रूते-'अस्ति सुनिरूपितस्थानम्।' हिरण्यकोऽवदत्-'किं तत?'। वायसो ब्रूते-'अस्ति दण्डकारण्ये कर्पूरगौराभिधानं सरः। तत्र चिरकालोपार्जितः प्रियसुहृन्मे मन्थराभिधानः कच्छपो धार्मिकः प्रतिवसति।

अनुवाद- कौवा बोला-'एक अच्छी भांति देखा भाला स्थान है'। हिरण्यक बोला- 'कौन सा है?' कौआ कहने लगा- 'दण्डकवन में कर्पूरगौर नामक एक सरोवर है, उसमें मन्थर नाम का एक धर्मशील कछुआ मेरा बड़ा पुराना और प्यारा मित्र रहता है।

यतः,–

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः।।104।।

(सर्वनाम शब्द षष्ठी विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अनुवाद- क्योंकि-

दूसरों को उपदेश करना सब मनुष्यों को सरल है, परंतु स्वयं का धर्म पर चलना किसी दुर्लभ ही महात्मा से होता है।।

स च भोजनविशेषैर्मां संवर्धयिष्यति।' हिरण्यकोऽप्याह–'तत्किमत्रावस्थाय मया कर्तव्यम्?

अनुवाद- 'और वह विविध प्रकार के भोजनों से मेरा सत्कार करेगा'। हिरण्यक भी बोला- 'तो मैं यहां रह कर क्या करूंगा?'

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत्।।105।।

(आत्मने पद लट् लकार प्रथम पु. बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- दन्ताः, केशाः, नखाः (च) नराः स्थानभ्रष्टाः न शोभन्ते इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत्।।

अनुवाद- हिरण्यक ने कहा- दांत, केश, नाखून और मनुष्य अपने स्थान से भ्रष्ट (अलग) हो जाने पर शोभा नहीं पाते, इसे भली-भांति जानकर बुद्धिमान को अपनी जगह नहीं छोड़नी चाहिए।

काको ब्रूते मित्र! कापुरुषस्य वचनम् एतत्। यतः-

स्थानम् उत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः।
तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषा मृगाः।।106।।

(लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्यच्च

अन्वयः- सिंहाः, सत्पुरुषाः (च) गजाः स्थानम् उत्सृज्य गच्छन्ति, (परं) काकाः, कापुरुषाः (च) मृगाः तत्र एव निधनं यान्ति।।

अनुवाद- कौआ बोला, "मित्र! यह (किसी) कायर का कथन है। क्योंकि- शेर, सज्जन और हाथी (आवश्यकता पड़ने पर) स्थान को छोड़कर जाते हैं, (किंतु) कौए, कायर पुरुष और (दूसरे) पशु वहीं मर जाते हैं।

अन्यच्च

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशः स्मृतः
यं देशं श्रयते तम् एव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्।

टिप्पणी

यद् दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन् एव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिन्नत्त्यात्मनः॥107॥

(इन्नन्त षष्ठी प्रयोग तथा छिद् धातु लट् लकार प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- वीरस्य मनस्विनः कः स्वविषयः वा कः विदेशः स्मृत (सः तु) यं देशं श्रयते तम् एव बहुप्रतापार्जितं कुरुते। (यथा) दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः सिंह यद् वनं गाहते, तस्मिन् एव (वने) आत्मनः तृष्णां हतद्विपेन्द्ररुधिरैः छिन्नत्ति॥

अनुवाद- और भी (सुनिए)-

वीर और मनस्वी (विचारशील) व्यक्ति के लिए कौन सा अपना विषय या कौन सा (स्थान) विदेश होता है, वह तो जिस भी देश को अपना निवास बनाता है उसी को अपनी भुजाओं की ताकत से अपना बना लेता है, ठीक वैसे ही, जैसे तीखे दांतों, नाखूनों और पूँछ से प्रहार करने वाला शेर जिस भी वन में प्रवेश करता है, उसी वन में अपनी प्यास को (अपने बल से) मारे गए गजराज के रक्त से बुझा लेता है।

हिरण्यको ब्रूते, मित्र क्व गन्तव्यम्, तथा चोक्तम्-

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्।
नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वम् आयतनं त्यजेत्॥108॥

(तकारान्त शब्द कर्तृ प्रयोग विधिलिङ् लकार प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- बुद्धिमान् एकेन पादेन चलति (च) एकेन पादेन तिष्ठति। (यतः) परं स्थानम् असमीक्ष्य पूर्वम् आयतनं न त्यजेत्॥

अनुवाद- हिरण्यक ने कहा, मित्र कहाँ जाना चाहिए, कहा भी गया है कि-

बुद्धिमान् व्यक्ति एक पैर से चलता है और दूसरे से रुकता (भी) है, क्योंकि बाद वाले स्थान को परखे बिना पहले वाला निवास स्थान नहीं छोड़ना चाहिए।

वायसो ब्रूते मित्र! अस्ति सुनिरूपितं स्थानम्। हिरण्यकोवदत्किं तत्
वायसः कथयति अस्ति दण्डकारण्ये कर्पूरगौराभिधानं सरः। तत्र चिरकालोपार्जितः प्रियसुहृन् मे मन्थराभिधानः कूर्मः सहजधार्मिकः प्रतिवसति। पश्य मित्र!

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वीयम् अनुष्ठानं कस्यचित् तु महात्मनः॥109॥

(विषयार्थक सप्तमी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- सर्वेषां नृणां (कृते) परोपदेशे पाण्डित्यं सुकरम् (अस्ति), कस्यचित् महात्मनः (कृते) तु धर्मे स्वीयम् अनुष्ठानम् एव (सुकरं भवति)।

अनुवाद- कौए ने कहा, "मित्र अच्छी तरह से देखा भाला गया (एक) स्थान है।" हिरण्यक ने कहा, "वह कौन सा (स्थान) है।" कौए ने कहा, "दण्डकारण्य में कर्पूरगौर नामक एक सरोवर है। वहाँ बहुत समय के संग से बना हुआ मेरा मित्र स्वभाव से ही धार्मिक मंथर नाम वाला कछुआ रहता है। देखो मित्र! दूसरों को उपदेश देने के मामले में विद्वत्ता तो सब के लिए आसान होती है, किंतु किसी विरले ही महात्मा को अपने धर्म (कर्तव्य) का पालन करना ज़्यादा सरल लगता है।

स च भोजनविशेषैर्मां संवर्धयिष्यति। हिरण्यकोप्याह तत् किम् अत्रावस्थाय मया कर्तव्यम् यतः-

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्॥110॥

(परि-वर्ज् योगे द्वितीया विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

टिप्पणी

अन्वयः- यस्मिन् देशे न सम्मानः, न वृत्तिः च न बान्धवः च न कश्चित् विद्यागमः तं देशं परिवर्जयेत्।।

अनुवाद- "और वह विशेष भोजन-पदार्थों से मेरा पालन करेगा।" हिरण्यक ने भी कहा, "जिस देश (स्थान) में न सम्मान हो, न जीविका का साधन हो न रिश्तेदार हो और न ही कोई विशेष विद्या की प्राप्ति हो रही हो उस स्थान से दूर ही रहना चाहिए।"

अपरं च

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पंचमः।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत्॥111॥

(विद् सत्तायाम्-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- धनिकः, श्रोत्रियः, राजा, नदी, पञ्चमः वैद्यः (एते) तु यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत्।

अनुवाद- कहा भी गया है-

धनी, वेदज्ञ ब्राह्मण, राजा, नदी और पाँचवाँ वैद्य; ये (पाँच) जहाँ न हों वहाँ निवास नहीं करना चाहिए।

अपरं च

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात् तत्र संस्थितिम्॥112॥

(विद् सत्तायाम्-प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्यच्च

अन्वयः- लोकयात्रा, भयं, लज्जा, दाक्षिण्यं त्यागशीलता यत्र (एतानि) पञ्च न (सन्ति) तत्र संस्थितिं न कुर्यात्।

अनुवाद- यह भी कहा गया है-

जीवननिर्वाह, भय, शर्म, उदारता और त्याग का स्वभाव जहाँ ये पाँच न हो वहाँ नहीं टिकना चाहिए।

तत्र मित्र! न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम्।
ऋणदाता च वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी॥113॥

(वस् + तव्य-प्रत्यय प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- मित्र! तत्र न वस्तव्यम् यत्र (एतत्) चतुष्टयं न भवेत्-ऋणदाता वैद्यः च श्रोत्रियः च सजला नदी।

अनुवाद- मित्र! वहाँ नहीं रहना चाहिए जहाँ ये चारों न हों – कर्ज़ देने वाला, वैद्य, वेदज्ञ ब्राह्मण और जल से भरी नदी।

टिप्पणी

अतो माम् अपि तत्र नय। वायसोदऽवदत् एवम् अस्तु।

अथ वायसस्तेन मित्रेण सह विचित्रालापसुखेन तस्य सरसः समीपं ययौ। ततो मन्थरो दूराद् एव लघुपतनकम् अवलोक्य उत्थाय यथोचितम् आतिथ्यं विधाय मूषिकस्याप्यतिथिसत्कारं चकार। यतः-

बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहम् आगतः।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वत्राभ्यागतो गुरुः॥114॥

(कर्मवाच्ये 'तव्य' प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- बालः वा यदि वा वृद्धः वा युवा गृहम् आगतः (भवेत्) तस्य पूजा विधातव्या (यतः) अभ्यागतः सर्वत्र गुरुः (भवति)।

अनुवाद- इसलिए मुझे भी वहाँ ले जाओ। कौए ने कहा- ऐसा ही होना चाहिए। इसके बाद कौआ उस मित्र के साथ विचित्र बातचीत के सुख के साथ उस सरोवर के पास जा पहुँचा। तब मन्थर ने दूर से ही लघुपतनक को देखकर और उठकर उसका ठीक प्रकार से अतिथि सत्कार करके चूहे का भी अतिथि सत्कार किया, क्योंकि-

बालक हो या वृद्ध हो या युवक हो, घर में उसके आने पर उसकी पूजा की जानी चाहिए क्योंकि सब प्रसंगों में अतिथि/अभ्यागत महान् होता है।

तथा

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राभ्यागतो गुरुः॥115॥

(षष्ठी बहुवचन उभयलिङ्गी प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- द्विजातीनाम् अग्निः गुरुः (भवति) वर्णानां ब्राह्मणः गुरुः (भवति) स्त्रीणां पतिः (एव) एकः गुरुः (भवति) सर्वत्र अभ्यागतः गुरुः भवति।

अनुवाद- इसी प्रकार- द्विजों का गुरु अग्नि होता है, सभी वर्णों का गुरु ब्राह्मण होता है, स्त्रियों का एक ही गुरु उनका पति होता है और सब जगह अभ्यागत गुरु होता है।

अपरं च

उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहम् आगतः।
पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः॥116॥

(अनीयर् प्रत्यय-योगे षष्ठी विभक्ति प्रयोग द्रष्टव्य)

अन्वयः- उत्तमस्य वर्णस्य नीचः अपि (यदि) गृहम् आगतः भवेत् (तदा सः) यथा योग्यं पूजनीयः (भवति यतः) अतिथि सर्वदेवमयः (उच्यते)।

अनुवाद- और यह भी कहा गया है

उत्तम वर्ण वाले के घर में यदि कोई नीचे के वर्ण वाला भी आया हो तो वह यथायोग्य पूजनीय होता है क्योंकि अतिथि सब देवताओं के रूप से युक्त कहा जाता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

8. संस्कृत साहित्य को मुख्यतः कितने भागों में बाँटा जा सकता है-
   (क) दो (ख) तीन
   (ग) चार (घ) पाँच
9. संस्कृत से हिन्दी अनुवाद करते समय श्लोकों का विवेचन सर्वप्रथम कैसे किया जाता है?
   (क) समास विग्रह से (ख) सन्धिविच्छेद से
   (ग) अन्वय से (घ) प्रत्याहार से

5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (क)
3. (ख)
4. (घ)
5. (घ)
6. (ख)
7. (घ)
8. (क)
9. (ग)

5.6 सारांश

अनुवाद कार्य के कर्ता के अनुसार क्रियाओं का प्रयोग करना होता है। आवश्यक धातु रूपों का ज्ञान भी होना चाहिए। इसके साथ ही विराम चिह्नों के शुद्ध प्रयोग के अभाव में भी अर्थ का अनर्थ हो सकता है। संस्कृत से हिन्दी अनुवाद करते हुए विभक्ति एवं उपपद विभक्ति के नियमों का अनुसरण अनिवार्य है। तथापि श्लोकों का अनुवाद करते समय अन्वय का ज्ञान भी होना चाहिए। सन्धि-समास के विच्छेद-विग्रह का अभ्यास भी इसमें सहायक होता है। शब्दकोष का भी बुद्धिमत्तापूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए।

5.7 मुख्य शब्दावली

- **उभयतः** - दोनों ओर।
- **निकषा** - समीप।
- **बिभेति** - डरता है
- **कुप्यति** - क्रोध करता है
- **अलम्** - मत करो/ पर्याप्त
- **सार्धम्** - साथ
- **श्रेष्ठ** - सर्वोत्तम

टिप्पणी

5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. कर्तृवाच्य में धातु का रूप किस पर आश्रित होता है?
2. दो या दो से अधिक कर्ता हों तो क्रिया का वचन किसके अनुसार होता है?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. पांच प्रमुख लकारों का प्रयोग किस-किस अर्थ से होता है, सोदाहरण लिखिए।
2. भावे सप्तमी की विवेचना सोदाहरण कीजिए।

5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. *प्रारंभिक रचनानुवाद कौमुदी* (लेखक- कपिलदेव द्विवेदी); विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. *रचनानुवाद कौमुदी* (लेखक- कपिलदेव द्विवेदी); विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. *प्रौढरचनानुवाद कौमुदी* (लेखक- कपिलदेव द्विवेदी); विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
4. *संस्कृतनिबन्धदर्शिका* (लेखक- वामन शिवराम आप्टे); मोतीलाल बनारसी दास, बैंग्लो रोड- दिल्ली-110007।